भारत सरकार

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग

सातवीं रिपोर्ट

विवाद समाधान हेतु क्षमता निर्माण

मनमुटाव से संयोजन तक

फरवरी 2008

भूमिका

"हजारों निरर्थक शब्द कहने की बजाए एक शब्द कहना बेहतर है जिससे शान्ति कायम हो"

भगवान बुद्ध

संघर्ष, मानव जीवन का एक अपरिहार्य पहलू है। यह, मनुष्य के मस्तिष्क द्वारा किसी निर्णय के गुणावगुणों की जाँच-पडताल करने की एक उतनी ही आन्तरिक प्रक्रिया है जितनी कि किसी व्यक्ति द्वारा समाज में अन्यों के साथ उसकी दैनिक अन्योन्यक्रिया का एक भाग है। कुछ दार्शनिकों ने सभी प्रगति का कारण संघर्ष और संघर्ष समाधान की सतत प्रक्रिया का होना बताया है। संघर्ष की अनुपस्थिति पहुँच की एक असम्भव स्थिति हो सकती है तथा प्राय: इसका अर्थ एक निर्दयी उत्पीड़न अथवा किसी व्यक्ति द्वारा शेष की तुलना में बेदर्द अवहेलना हो सकती है। इस प्रकार समाज की परिपक्वता संघर्ष के अभाव द्वारा इतनी नहीं मापी जाती जितनी कि उसका समाधान करने की उसकी परम्पराओं और प्रक्रियाओं की क्षमता । यह पद्धति जितनी अधिक व्यापक आधारित और निष्पक्ष होगी उतनी ही इसमें असंतोष और कटुता की भावना होगी। अपनी व्यवस्थित न्यायपालिका के साथ राज्य सभी विवादों का अन्तिम निपटानकर्ता होता है तथापि परिवार और समुदाय स्तर पर मामलों का निपटारा करने की एक सतत पारम्परिक प्रणाली विद्यमान रहती है तथा इन स्तरों पर अधिकांश मुद्दों का समाधान नहीं होता।

हम भारत में अत्यंत भाग्यशाली हैं कि हमारी एक समृद्ध और विविध परम्परा है जिसने एक लचीली संस्कृति और राष्ट्र का निर्माण करने में अपार योगदान किया है। हमें, अपने समाज की कोटि में सुधार करने के लिए प्रजातान्त्रिक संवाद की प्रक्रिया को हर तरीके से बनाए रखने के महत्व को समझना चाहिए।

वस्तुत:, प्रजातन्त्र संघर्ष समाधान और राष्ट्र निर्माण के लिए, विशेष रूप से एकाधिक राज्यों के मामलों में, एक अनिवार्यता है। एक प्रजातान्त्रिक संरचना के अन्दर ही सभी संघटक इकाइयों की आकांक्षाओं की पूर्ति हो सकती है। केवल पारस्परिक समझ-बूझ, परस्पर सम्मान और संवाद की प्रक्रिया के जरिए ही वास्तविक कठिनाइयों को दूर किया जा सकता है तथा गलतफहमियों की विषाक्तता को कम किया जा सकता है। विवादों और मतभेदों को सरकारी डिक्रियों के जरिए दूर नहीं किया जा सकता और न ही विभिन्न तत्वों की ऊर्जा का उपयोग राष्ट्र निर्माण के लिए किया जा सकता है सिवाय एक प्रजातान्त्रिक पद्धति के अन्दर उपलब्ध साधनों और विधियों के।

भारत अनेक भाषाओं, संस्कृतियों और नैतिकताओं से भरपूर था और अब भी है जो न केवल एक दूसरे को बर्दाश्त करता है बल्कि एक मिली-जुली संस्कृति के भाग के रूप में उसे स्वीकार करता है और सभी विविधताओं के बीच एक सामन्जस्य कायम करता है। संविधान का निर्माण करते समय

डा0 अम्बेडकर की चेतावनी एक खुद ही समस्या समाधान दस्तावेज है जिसमें भारतीयों से आग्रह किया गया है कि वे उनके कथनानुसार "मात्र राजनीतिक प्रजातन्त्र" से सन्तुष्ट न रहें। भारत ने विदेशी शासन से मुक्ति पाई किन्तु उसमें अनेक असमानताएं और पदक्रम विद्यमान थे। इस प्रकार, देश के 26 जनवरी 1950 को औपचारिक रूप से एक गणतन्त्र बन जाने के बाद इसने विरोधाभासों के एक युग में प्रवेश किया। *"राजनीति में समानता होगी किन्तु सामाजिक और आर्थिक जीवन में हमारे सामने असमानता होगी। राजनीति में हम एक व्यक्ति एक वोट और एक वोट एक मूल्य को स्वीकारेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में हम अपनी सामाजिक और आर्थिक प्रणाली के नाते एक मनुष्य एक मूल्य के सिद्धान्त को नकारते रहेंगे। हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे ? हम कब तक इस विरोधाभासी जीवन में जीते रहेंगे ? यदि हम लम्बे समय तक इसे नकारते रहेंगे तो हम ऐसा केवल अपने राजनीतिक प्रजातन्त्र को खतरे में डालकर कर सकते हैं।"*

आजादी के बाद, भारत के नेताओं ने इस बात पर गम्भीरता से ध्यान दिया कि जनजातियों के साथ, विशेष रूप से पूर्वोत्तर में, कैसे डील किया जाए। उन्हें, भारतीय संविधान की शिथिलनीय और विवाद समाधान क्षमता का उपयोग करते हुए संविधान की छठी अनुसूची के तहत अनेक क्षेत्रों में स्वायत्तता प्रदान की गई। पन्डित जवाहरलाल नेहरू ने एक बार कहा था "जनजातियों को उनकी अपनी प्रतिभा के अनुसार विकास करने दो"। यह भारत सरकार की मूल नीतिगत रूपरेखा थी। जब श्रीमती इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री बनी तब वह एक कदम और आगे बढ़ गईं और उन्होंने कहा कि लोगों की प्रजातान्त्रिक आकांक्षाओं को समझा जाना चाहिए और इस तथ्य के बावजूद कि यदि उन्हें राज्य का दर्जा प्रदान किया गया तो आर्थिक क्षमता कायम नहीं हो सकती, अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, त्रिपुरा, मणिपुर और मिजोरम की स्थापना की गई, जो सभी छोट-छोटे राज्य थे।

यह सच है कि जनजातियों और गैर-जनजातियों के बीच समझबूझ कायम करने की जिम्मेदारी क्षेत्र में स्थानीय नेतृत्व की है। ऐसे नेतृत्व को अपनी नीति के बारे में स्पष्ट होना चाहिए। प्रायः इस मुद्दे का लाभ उठाने की कोशिश की जाती है, विशेष रूप से चुनावों के दौरान, और अन्य राजनीतिक दलों से प्रतिस्पर्धा करते हुए वे अपने आपको जनजातीय हितों का बेहतर हितेषी प्रस्तुत करते हैं।

जवाहर लाल नेहरू के साथ एक स्मरणीय चर्चा के दौरान एन्द्रे मालरोक्स ने प. नेहरू से पूछा था कि उनका मुख्य कार्य क्या है, और प. नेहरू ने उत्तर दिया था *" मेरा पहला काम एक प्राचीन सभ्यता के आधार पर एक नया आधुनिक राज्य कायम करना है और मेरा दूसरा काम एक अत्यंत धार्मिक समाज के आधार पर एक धर्मनिरपेक्ष राज्य कायम करना है।"* नेहरू जी ने ये विचार सरदार पटेल को और विभिन्न प्रान्तों के मुख्य मंत्रियों को लिखे अपने पत्रों में व्यक्त किए। विभाजन के तीन महीने बाद उन्होंने उन्हें स्मरण कराया कि :

"हमारे यहाँ मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं जिनकी संख्या इतनी अधिक है कि वे चाहने पर भी कहीं और नहीं जा सकते। यह एक बुनियादी सच है जिसके बारे में कोई दलील नहीं दी जा सकती । पाकिस्तान से

कुछ भी उत्तेजना हो और वहाँ गैर-मुस्लिमों के साथ कितने ही अत्याचार और अनादर किया गया हो, हमें एक सभ्य तरीके से इन अल्पसंख्यकों के साथ डील करना है। हमें उन्हें सुरक्षा और एक प्रजातान्त्रिक राज्य में नागरिकों के अधिकार प्रदान करने चाहिए। यदि हम ऐसा करने में असमर्थ रहें तो हमारे अन्दर एक ऐसी कटुता पैदा हो जाएगी जो अन्ततः पूरे राजतन्त्र को विषाक्त बना देगी और सम्भवतः इसे नष्ट कर सकती है।" पन्डित जी ने धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा निम्नलिखित शब्दो में की :

"इसका अर्थ धर्म और विवेक की आजादी है, जिसमें उन लोगों की भी आजादी शामिल है जिनका कोई धर्म नहीं है। इसका अर्थ सभी धर्मों के लिए आजादी से कार्य करना है, केवल इस शर्त के साथ कि वे एक-दूसरे के अथवा हमारे राज्य की बुनियादी अवधारणाओं में दखल न दें। इसका अर्थ है कि अल्पसंख्यक समुदायों को धार्मिक दृष्टि से इस स्थिति को स्वीकारना चाहिए। इसका यह भी अर्थ है कि बहुसंख्यक समुदाय को इस दृष्टि से इसे पूर्णतः समझना चाहिए। क्योंकि संख्या के नाते तथा अन्य प्रकार से भी, यह प्रभावशाली समुदाय है और यह इसकी जिम्मेदारी है कि यह अपनी स्थिति का उपयोग इस तरीके से न करे जिससे हमारे धर्मनिरपेक्ष आदर्श को आघात पहुंचे ।" उन्होंने यह भी कहा कि : "यह एक ऐसे देश में एक धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था कायम करने का प्रश्न है जहाँ तीव्र धार्मिक आस्थाएं हैं, और यह भी बात है कि धार्मिक आस्थाओं, रीति-रिवाजों, आध्यात्मिकता और संस्कृति को आसानी से अलग नहीं किया जा सकता । यह बुनियादी तौर पर इस्लाम के बारे में सच है और अन्य समुदायों के बारे में भी काफी हद तक सच है जो हिन्दू धर्म के समग्र छत्र के अन्तर्गत आते हैं।"

विवादों और असहमति के बारे में, सामान्य तौर पर, पण्डित जी ने कहा था :

"काफी समय पहले, भारत के एक महान पुत्र बुद्ध ने कहा था कि वास्तविक जीत केवल वही है जिसमें सभी की समान रूप से जीत हो और किसी की भी हार न हो। आज के विश्व में केवल यही व्यावहारिक जीत है। किसी अन्य तरीके से विपत्ति आएगी"।

संविधान सभा (विधायी) में, एम. अनन्तसायनम आयंगर ने सभी साम्प्रदायिक दलों पर रोक लगाने के लिए, 3 अप्रैल 1948 को एक प्रस्ताव पेश किया था। आयंगर को कहना था कि समय आ गया है जबकि धर्म को राजनीति से अलग रखा जाए, कि प्रजातन्त्र के सुचारू कामकाज तथा राष्ट्रीय एकता और एकीकरण के लिए यह जरूरी है कि साम्प्रदायिकता को भारत के पूरे राजतन्त्र से उखाड़ फैंका जाए। किसी भी राजनीतिक दल को, जिसकी सदस्यता धर्म, जाति आदि पर आधारित हो, कोई कार्यकलाप आयोजित करने की इजाजत नहीं दी जा सकती, सिवाय जो समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और शैक्षिक जरूरतों से जुड़ी हों। लगभग पैंतालीस वर्षों के बाद, संविधान (अस्सीवां) संशोधन विधेयक 1993 पेश करके, जिसे 29 जुलाई 1993 को पेश किया गया था, धर्म और राजनीति को अलग करने के संबंध में गम्भीर प्रयास किए गए।

जैसाकि राजीव गांधी ने कहा था, *"धर्मनिरपेक्षता हमारी एकता का आधार है और कोई भी साम्प्रदायिक ताकत, कोई भी धार्मिक ताकत और कोई भी राजनीतिक ताकत जो धर्मनिरपेक्षता के खिलाफ हो, जो साम्प्रदायिकता अथवा धार्मिक हितों पर निर्भर हो, उस राष्ट्र को कमजोर बनाने के लिए अपने हितों का इस्तेमाल करने की इजाजत नहीं दी जानी चाहिए ......साम्प्रदायिकता एक ऐसा खतरा हे जो भारत में सभी के लिए एकसमान है। हमारी ताकत का इस्तेमाल इसे बढ़ने से रोकने के लिए नहीं बल्कि यह देखने के लिए किया जाना चाहिए कि साम्प्रदायिकता को कम करके हर आदमी के हित की सुरक्षा की जाए"।*

एक बी बी सी साक्षात्कार में, राजीव जी का विचार जो उन्होंने सिख मिलिटेंसी के बारे में व्यक्त किया, उल्लेखनीय है :

"जब से सिख धर्म का उदय हुआ तभी से इसने भारत की एकता और एकीकरण के लिए संघर्ष किया। सिखों ने भारत का निर्माण करने में एक भूमिका अदा की है और वे आज भी भारत को आगे बढ़ाने में अपनी भूमिका निभा रहे हैं। "

हमारे अनेक राज्यों और इलाकों में वास्तविक समस्या आर्थिक है; विवाद संसाधनों के बारे में है किन्तु यह धर्म, जाति, इलाके, नृवंश, भाषा पर और कभी-कभी वैचारिक मतभेदों पर आधारित अभिज्ञान राजनीति के भिन्न-भिन्न रूपों से ढका हुआ है। उदाहरणार्थ, पूर्वोत्तर क्षेत्र की शुरू से ही उपेक्षा की गई। ब्रिटिश शासन के दौरान अनेक कारणवश कुछ नहीं किया गया क्योंकि यह अंशतः संलग्न इलाका था और इसमें जनजातियों ने सहयोग नहीं किया। आजादी के बाद असम एक मिला-जुला राज्य था । जनजातीय लोगों पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया। आजादी के बाद वास्तविक विकास कार्य केवल 1970 के दशक के दौरान शुरू हुआ जबकि नए राज्यों की स्थापना हुई।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में आर्थिक विकास, बड़े पूंजीगत निवेशों के अभाव के कारण, देश के शेष भाग से पीछे रहा। निजी क्षेत्र द्वारा अथवा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के रूप में इस इलाके में बहुत कम निवेश किया गया। देश में केन्द्रीय सरकारी क्षेत्रक में पूरे पूर्वोत्तर का हिस्सा भी अत्यंत कम है। केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की गई केवल बजटीय सहायता ही अवसंरचनात्मक विकास, सड़कों, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च की जाती है, इस प्रकार उत्पादक रोजगार सृजन क्षेत्रकों पर खर्च करने के लिए लगभग कुछ नहीं बचता।

हम चन्द्रमा तक गए और वापस आ गए किन्तु नए पड़ोसी से मिलने के लिए हम सड़क पार करने की कठिनाई का सामना नहीं कर पाते (महामहिम, दलाई लामा, "दि पेराडाक्स आफ अवर एज")।

सभी भारतीयों को मिलाकर जिन प्रश्नों का उत्तर खोजना है, वे हैं: हम कैसा देश चाहते हैं ? इस राष्ट्र की क्या अनिवार्य विशेषताएं हैं जिनकी हम उम्मीद करते हैं ? हम, राष्ट्रों के समुदाय में क्या स्थान प्राप्त करना चाहते हैं ? यह एक मिला-जुला दृष्टिकोण होना चाहिए जिससे कि लोगों को इसे प्राप्त करने के लिए अपने प्रयासों से तालमेल कायम करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। आंकड़े प्रस्तुत करके और बौद्धिक संवाद आयोजित करके भागीदारीपूर्ण दृष्टिकोण कायम नहीं किया जा सकता और

न ही इनका निर्माण राजनीतिक बातचीत के जरिए किया जा सकता है। इन सभी के लिए गहनतापूर्वक विचार-विमर्श किए जाने की जरूरत है। इसके अलावा, इन पर गहराई से विचार-विमर्श किए जाने की जरूरत है। इसके अलावा, इन विचार विमर्शों के दौरान देश के भविष्य में अनेक विविध पणधारियों की जरूरतों पर भी विचार किया जाना चाहिए। भागीदारीपूर्ण दृष्टिकोण कायम करना पहला कदम है, किन्तु यह पर्याप्त नहीं है। इस पहले गिअर से हमें दूसरे गिअर की ओर बढ़ना है, जिसके अन्तर्गत इस परिवर्तन को हम किस प्रकार अपने दृष्टिकोण को आगे बढ़ाने में अन्तर्निहित सिद्धान्तों की चुनौती देना शामिल है।

पूर्व विधान (पुरोहितों की पुस्तक) में एक कहावत है कि दृष्टिकोणरहित राष्ट्र बरबाद हो जाएंगे। एक अन्य इतनी ही महत्पूर्ण कहावत यह है कि यदि लोगों का कोई दृष्टिकोण न हो तो राष्ट्रों और संगठनों का कोई दृष्टिकोण नहीं हो सकता।

ऐसा दृष्टिकोण अन्दर से एक आकांक्षा से, किसी हित की चिन्ता करने से, किसी संगठन अथवा राष्ट्र की स्थिति में बदलाव की तीव्र इच्छा से - उत्पन्न होता है। गांधी की बात लीजिए। उनका ऐसा दृष्टिकोण था, ऐसा ही टाटा व्यवसाय साम्राज्य कायम करने वाले - जमशेद जी टाटा ने किया, जिनके बारे में गांधी जी ने कहा था कि वह भारत की राजनीतिक आजादी के लिए लड़ाई लड रहे हैं तो टाटा इनकी आर्थिक आजादी के लड़ाई लड रहे हैं। ये दूरदृष्टा वही जवाब खोजते हैं जो अमरीकी धर्मविज्ञानी रेनहोल्ड नायबुहर ने अपनी प्रार्थना में चाहा था, *"हे प्रभु, मुझे वह धैर्य दो जिससे कि मैं उन बातों को स्वीकार कर सकूं, जिन्हें मैं बदल नहीं सकता, जिन चीजों को मैं बदल सकता हूँ उसके लिए साहस दो और भेद को समझने की बुद्धि दो।"*

हमारे देश के संबंध में हमारी भागीदारीपूर्ण आकांक्षा क्या है ? हम कैसा देश चाहते हैं और निर्माण के लिए प्रतिबद्ध होंगे ? हाल ही में जयपुर में एक बैठक में विविध पणधारियों ने निम्नलिखित विचार व्यक्त किए :

- अधिशासन की कहीं अधिक प्रभावी और जवाबदेह पद्धति। एक विचार जो उभरा, वह था, "अपना पैसा, अपना हिसाब (हमारा धन, हमारा हिसाब)", और इसका एक पूरक स्वरूप, "अपनी मेहनत, अपना हिसाब (हमारा प्रयास, हमारा हिसाब)।"
- सभी स्तरों पर उद्यमशीलता और नेतृत्व, केवल जेब की दृष्टि से नहीं और केवल शीर्ष की दृष्टि से नहीं।
- परिणाम प्राप्त करने के लिए सामूहिक कार्रवाई।
- भारतीय मूल्यों पर निर्मित, विकास का एक भारतीय माडल।
- भारत का विश्व में शीर्ष स्थान हो, इसकी उपलब्धियों के लिए इसे मान्यता प्राप्त हो।
- समावेशी विकास तथा गरीबी को तेजी से दूर करना।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास
- एक सहिष्णु सोसायटी, जो विविध प्रकार के लोगों की जरूरतों और भावनाओं के प्रति संवेदी हो।

इन लक्ष्यों में कोई भी विवादास्पद नहीं है, क्या हम लक्ष्यों की ऐसी न्यूनतम पद्धति और इन्हें प्राप्त करने के लिए हाथ से हाथ मिलाकर चलने के लिए असहमत हो सकते हैं ?

हमने अपने लक्ष्य को देख लिया है और यदि हमें मिलकर चलना है तो उसके बारे में निर्णय लेने की जरूरत है

कुछ भी प्राप्त करना कठिन नहीं है

*हमें प्रत्येक को विशेष बनना है तथापि हमें अपनी शक्ति को एकजुट करना है क्योंकि हम एक ऐसा देश चाहते हैं जो अव्वल हो **

इसी भावना से, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ए आर सी) ने "संघर्ष समाधान हेतु क्षमता निर्माण" पर अपनी रिपोर्ट में भारत में विद्यमान अनेक विवादों की पृष्ठभूमि और उभरते पहलुओं की जाँच करने का प्रयास किया है। इनका ब्यौरा अलग-अलग अध्यायों में दिया गया है जो वाम उग्रवाद से लेकर भूमि और जल सम्बद्ध विवादों, धर्म, क्षेत्रीय असमानताओं और समाजिम विभाजनों पर आधारित विवादों (अनु. जातियों, अनु. जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों पर विशेष बल के साथ) और साथ ही राजनीतिक पहचान और जातिगत पर आधारित विवादों से भी संबंधित हैं जैसे कि पूर्वोत्तर में मिलिटेंसी। इसके पश्चात रिपोर्ट में विवाद प्रबंधन हेतु वर्तमान प्रचालनात्मक व संस्थागत व्यवस्था पर और इस बात पर विचार किया गया है कि किस प्रकार इन पद्धतियों को सुदृढ़ किया जाए ताकि देश में विवादों का किस प्रकार बेहतर ढंग से प्रबंध और समाधान किया जा सके। हमारी यह उम्मीद और प्रार्थना है कि इस रिपोर्ट में दिए गए सुझावों से राष्ट्र निर्माण के हमारे साझे लक्ष्य की दिशा में कुछ थोड़ा सा योगदान मिल सके।

मैं, असम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा और छत्तीसगढ़ के महामहिम राज्यपालों और असम, मेघालय, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैण्ड और छत्तीसगढ़ के माननीय मुख्य मंत्रियों के प्रति भी अपना गहरा आभार प्रकट करना चाहूंगा जिन्होंने आयोग द्वारा किए गए उनके राज्यों के दौरे के दौरान अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

M. Veerappa Moily

नई दिल्ली

6 फरवरी 2008

(एम. वीरप्पा मोइली)

अध्यक्ष

*"डिस्कोर्डेन्ट डेमोक्रेटस" से उद्धरित, अरूण मैत्रा द्वारा (स्कूल के एक प्रिंसिपल द्वारा दिल्ली में एक बैठक में व्यक्त)।

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 31 **अगस्त**, 2005

सं. के-11022/9/2004 - आर सी, - राष्ट्रपति, लोक प्रशासन पद्धति की पुनर्संरचना के संबंध में एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करने के लिए एक जाँच आयोग, जिसे द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (ए.आर.सी) कहा जाएगा, सहर्ष गठित करते हैं।

2. आयोग में निम्नलिखित सम्मिलित होंगे :

(i)	श्री वीरप्पा मोइली	-	अध्यक्ष
(ii)	श्री वी. रामचन्द्रन	-	सदस्य
(iii)	डा. ए.पी. मुखर्जी	-	सदस्य
(iv)	डा. ए.एच. कालरो	-	सदस्य
(v)	डा. जयप्रकाश नारायण	-	सदस्य *
(vi)	श्रीमती विनीता राय	-	सदस्य-सचिव

3. आयोग, सरकार के सभी स्तरों पर, देश के लिए एक सक्रिय, प्रतिक्रियाशील, जवाबदेह, संधारणीय और कुशल प्रशासन प्राप्त करने के संबंध में उपायों का सुझाव देगा। अन्य बातों के साथ-साथ आयोग निम्नलिखित पर विचार करेगा:

(i) भारत सरकार का संगठनात्मक ढांचा
(ii) शासन में नैतिकता
(iii) कार्मिक प्रशासन की पुनर्संरचना
(iv) वित्तीय प्रबंधन प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण
(v) राज्य स्तर पर प्रभावी प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
(vi) प्रभावी जिला प्रशासन सुनिश्चित करने के लिए उपाय
(vii) स्थानीय स्व:शासन/पंचायती राज संस्थान
(viii) सामाजिक पूँजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सरकारी सेवा प्रदान करना
(ix) नागरिक-केन्द्रिक प्रशासन
(x) ई-अधिशासन प्रोत्साहित करना
(xi) संघीय राजतंत्र के मुद्दे
(xii) संकट प्रबंन्धन
(xiii) सार्वजनिक व्यवस्था

प्रत्येक शीर्ष के अन्तर्गत जिन मुद्दों की जाँच की जाएगी उनमें से कुछेक का उल्लेख विचारार्थ विषयों में किया गया है जो इस संकल्प की अनुसूची के रूप में संलग्न हैं।

4. आयोग, रक्षा, रेलवे, विदेश कार्य, सुरक्षा और आसूचना के प्रशासन की और साथ ही केन्द्र-राज्य संबंधों, न्यायिक सुधारों आदि जैसे विषयों को भी अपनी विस्तृत जाँच से अलग रख सकता है, जिनकी पहले ही अन्य निकायों द्वारा जाँच की जा रही है। तथापि, आयोग, सरकार अथवा इसकी किसी सेवा एजेन्सी के तंत्र के पुनर्गठन की सिफारिशें करते समय, इन क्षेत्रकों की समस्याओं को ध्यान में रखने में स्वतंत्र होगा।

5. आयोग, राज्य सरकारों के साथ परामर्श करने की जरूरत पर समुचित रूप से ध्यान देगा।

6. आयोग, अपनी स्वयं की प्रक्रियाएं तय करेगा (राज्य सरकारों के साथ परामर्श सहित, जो आयोग द्वारा उपयुक्त समझी जाएं) तथा अपनी सहायतार्थ समितियाँ, परामर्शदाता/सलाहकार नियुक्त कर सकता है। आयोग, इस विषय पर उपलब्ध विद्यमान सामग्री और रिपोर्टों को ध्यान में रख सकता है और सभी मुद्दों पर प्रारंभ से विचार करने के प्रयास की बजाए, उन्हीं पर अपनी राय आधारित कर सकता है।

7. भारत सरकार के सभी मंत्रालय और विभाग आयोग को ऐसी जानकारी और दस्तावेज तथा अन्य सहायता उपलब्ध कराएंगे जो आयोग द्वारा अपेक्षित हों! भारत सरकार को भरोसा है कि राज्य सरकारें व सभी अन्य संबंधित लोग/संगठन आयोग को अपना पूर्ण सहयोग और सहायता प्रदान करेंगे।

8. आयोग, अपनी रिपोर्ट/रिपोर्टें अपने गठन के एक वर्ष के अन्दर कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय, भारत सरकार को प्रस्तुत करेगा।

ह/–
(पी.आई. सुवराथन)
अपर सचिव, भारत सरकार

---

* डा. जयप्रकाश नारायण, सदस्य ने 1 सितम्बर, 2007 से त्याग पत्र दे दिया (संकल्प सं. के.11022/26/2007-एआर, दिनांक 17.8.2007)

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 24 जुलाई, 2006

सं. के-11022/9/2004-आरसी (खण्ड-II) - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि एक वर्ष के लिए 31.8.2007 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(राहुल सरीन)
अपर सचिव, भारत सरकार

भारत सरकार
कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय
प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग

संकल्प

नई दिल्ली, 17 जुलाई, 2007

सं. के-11022/26/2007-ए आर - राष्ट्रपति, द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा सरकार को अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आयोग की कार्यावधि सात महीने के लिए 31.3.2008 तक सहर्ष बढ़ाते हैं।

ह/-
(शशि कान्त शर्मा)
अपर सचिव, भारत सरकार

विषय सूची

	पृष्ठ संख्या
अध्याय 1 – प्रस्तावना	1
अध्याय 2 – विवाद समाधान – एक वैचारिक रूपरेखा	3
अध्याय 3 – वाम उग्रवाद	17
अध्याय 4 – भू–सम्बद्ध मुद्दे	37
अध्याय 5 – जल सम्बद्ध मुद्दे	57
अध्याय 6 – अनु. जातियों से सम्बद्ध मुद्दे	72
अध्याय 7 – अनु.जनजातियों से सम्बद्ध मुद्दे	95
अध्याय 8 – अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बद्ध मुद्दे	105
अध्याय 9 – धार्मिक संघर्ष	111
अध्याय 10– राजनीति और संघर्ष	139
अध्याय 11– क्षेत्रीय असमानताएं	144
अध्याय 12– पूर्वोत्तर में संघर्ष	155
अध्याय 13– संघर्ष प्रबंधन के लिए प्रचालनात्मक व्यवस्था	199
अध्याय 14– संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था	205
निष्कर्ष	225
सिफारिशों का सारांश	227

तालिकाओं की सूची

तालिका सं.	**शीर्षक**	
2.1	विवाद और मानव जीवन	5
3.1	नक्सली हिंसा की राज्य-वार सीमा: 2003-06	17
6.1	अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपाय	77

7.1	अनु.जनजातियों के विरूद्ध किए गए अपराधों के लिए 2006 के दौरान न्यायालयों द्वारा मामलों का निपटान	96
9.1	साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005 का विश्लेषण	122
9.2	राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 और साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005 में राहत और पुनर्वास से सम्बद्ध प्रावधानों की तुलना	136
11.1	प्रति व्यक्ति एन एस डी पी	144
12.1	पूर्वोत्तर में हिंसा की घटनाएं	156
12.2	असम में "जनजाति विशिष्ट" स्वायत्त परिषदों की सारांश सूचना	177

चित्रों की सूची

चित्र सं.	**शीर्षक**	
2.1	विवाद की स्थितियां	6
6.1	नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अन्तर्गत पंजीकृत मामलों की संख्या	76
6.2	अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत पंजीकृत मामलों की संख्या	76
7.1	गरीबी अनुपात (ग्रामीण)	95
7.3	शिशु मृत्यु दर	97
8.1	गरीबी अनुपात (शहरी)	106
8.2	पाँच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर	107
8.3	सामान्य सिद्धान्त स्थिति के अनुसार बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या/1000 सामान्य स्थिति के अनुसार - ग्रामीण	107
8.4	बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या/1000 सामान्य स्थिति के अनुसार - शहरी	107
8.5	परिसम्पत्ति मिलिकियत	108
8.6	ऋणग्रस्तता	108

बाक्सों की सूची

बाक्स सं.	शीर्षक	
2.1	चिन्तन बनाम गोलियां	15
3.1	गोडावरमन मामला	21
3.2	पावगडा, कर्नाटक में नक्सलवाद	23
3.3	नक्सली उत्पात से निपटने के लिए सरकारी नीति	26
4.1	विगत अल्प-अदायगियों का समाधान करने के लिए वित्तीय अदायगियां	46
5.1	दक्षिण अफ्रीका उदाहरण - राष्ट्रीय जल अधिनियम, 1998	64
5.2	फ्रेंच उदाहरण - एकीकृत बेसिन प्रबंधन	65
5.3	चीनी उदाहरण - नदी बेसिन आयोग	66
14.1	ग्राम स्तर पर विवाद निपटान	223

संलग्नकों की सूची

संलग्नक -I (1) अध्यक्ष, प्रशासनिक सुधार आयोग का भाषण, संघर्ष प्रबंधन पर राष्ट्रीय कार्यशाला

संलग्नक -I (2) संघर्ष प्रबंधन पर राष्ट्रीय कार्यशाला में पेनलकारों और प्रतिभागियों की सूची

संलग्नक -I (3) संघर्ष प्रबंधन पर राष्ट्रीय कार्यशाला में की गई सिफारिशों का संक्षिप्त सारांश

संकेताक्षरों की सूची

संकेताक्षर	पूर्ण फोर्म
ए सी	स्वायत्त परिषद
ए आर सी	प्रशासनिक सुधार आयोग
बी बी सी	ब्रिटिश प्रसारण निगम
बी आर जी एफ	पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि

सी ए बी इ	केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड
सी ए डी पी	व्यापक क्षेत्र विकास कार्यक्रम
सी एम पी	सांझा न्यूनतम कार्यक्रम
सी पी आई (एम एल - पी डब्ल्यु जी)	साम्यवादी पार्टी मार्क्स - पीपिल्स वार ग्रुप
सी पी आर	नीति अनुसंधान केन्द्र
सी आर पी सी	दण्ड प्रक्रिया संहिता
सी एस ओ	केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन
डी डी पी	मरूस्थल विकास कार्यक्रम
डी ओ एन ई आर	पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास विभाग
एफ डी एस टी	वन वासी अनुसूचित जनजातियां
एफ आई आर	प्रथम सूचना रिपोर्ट (प्राथमिकी)
जी डी पी	सकल घरेलू उत्पाद
जी एन एल एफ	गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा
एच ए	हेक्टेयर्स
आई सी एस एस आर	भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद
आई सी टी	सूचना और संचार प्रौद्योगिकी
आई एफ ए एस	भारतीय सीमावर्ती प्रशासनिक सेवा
आई आई पी ए	भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
आई पी सी	भारतीय दण्ड संहिता
आई टी आई	औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान
जे एन यू	जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
एल ए एम पी	वृहद क्षेत्र बहुप्रयोजन सहकारी समितियां
एम सी सी -I	माओवादी साम्यवादी केन्द्र - भारत
एम एच ए	गृह मंत्रालय
एम एन आई सी	बहु-प्रयोजन राष्ट्रीय पहचान कार्ड
एन बी ए	नर्मदा बचाओ आन्दोलन
एन सी एम सी	संकट प्रबंधन समिति
एन सी आर बी	राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो
एन डी सी	राष्ट्रीय विकास परिषद
एन ई	पूर्वोत्तर

एन ई सी	पूर्वोत्तर परिषद
एन ई डी एफ सी	पूर्वोत्तर विकास और वित्त निगम लि0
एन ई ई पी सी ओ	पूर्वोत्तर क्षेत्रीय विद्युत परियोजना निगम
एन ई आई जी आर आई एच एम एस	पूर्वोत्तर इन्दिरा गांधी स्वास्थ्य और आयुर्विज्ञान संस्थान
एन ई एच एच डी सी	पूर्वोत्तर हथकर्घा और हस्तशिल्प विकास निगम
एन ई एच यू	पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्विविद्यालय
एन ई पी ए	पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी
एन ई आर ए एम ए सी	पूर्वोत्तर क्षेत्रीय कृषि विपणन निगम
एन जी ओ	गैर-सरकारी संगठन
एन एच आर सी	राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग
एन आई सी	राष्ट्रीय एकता परिषद
एन एल सी पी आर	अ-व्यपगत केन्द्रीय संसाधन समूह (पूल)
एन पी सी	राष्ट्रीय जन कांग्रेस
एन आर सी आर	राष्ट्रीय पुनः स्थापन अनुसंधान केन्द्र
एन आर ई जी ए	राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम
एन एस सी एन	राष्ट्रीय नागालेण्ड समाजवादी परिषद
एन एस डी पी	निवल राज्य घरेलू उत्पाद
एन एस एस ओ	राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण संगठन
ओ बी सी	अन्य पिछड़े वर्ग
पी ए एफ	परियोजना प्रभावित परिवार
पी सी आर	नागरिक अधिकार संरक्षण
पी ई एस ए	पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों का विस्तार) अधिनियम 1996
पी ओ ए	अत्याचारों की रोकथाम
पी ओ एल एन ई टी	पुलिस नेटवर्क
आर एण्ड आर	राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनः स्थापन नीति
आर बी ओ	नदी बेसिन संगठन
एस सी एस	अनुसूचित जातियां
एस सी एस पी	अनु. जाति उप-योजना
एस ई जेड	विशेष आर्थिक क्षेत्र
एस एच जी	स्वंय सेवी समूह

एस एम आर	आत्महत्या मृत्यु दर
एस पी ओ	पुलिस अधिकारी
एस टी एस	अनुसूचित जनजातियां
एस वाई एल	सतलुज -यमुना संयोजन
टी एन वी	त्रिपुरा राष्ट्रीय स्वयंसेवक
टी आर आई एफ ई डी	भारतीय जनजातीय सहकारी विपणन विकास संघ लिमिटेड
यू के	यूनाइटिड किंगडम
यू एल एफ ए	असम का संयुक्त मुक्ति मोर्चा
यू पी एस	सामान्य सिद्धान्त स्थिति
यू एस ए	संयुक्त राज्य अमरीका
यू टी	संघ क्षेत्र
वी ए टी	वर्धित कर
डब्ल्यु डब्ल्यु एफ	विश्व वन्य जीवन निधि

प्रस्तावना

1

1.1 सार्वजनिक व्यवस्था से संबंधित द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग के विचारार्थ विषयों में दो विशिष्ट मुद्दे सम्मिलित हैं; नामत:

(i) सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रशासनिक तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए एक रूपरेखा का सुझाव देना जो सामाजिक सामन्जस्य और आर्थिक विकास के लिए प्रेरक हो।

(ii) संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण।

सार्वजनिक व्यवस्था के संबंध में अपनी पांचवीं रिपोर्ट में वर्णित कारणों को देखते हुए आयोग ने उपरोक्त दो मुद्दों पर दो अलग-अलग रिपोर्टों में विचार करने का निर्णय किया। संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्धारण के संबंध में यह रिपोर्ट सार्वजनिक व्यवस्था संबंधी रिपोर्ट का परिणाम है।

1.2 पिछले कुछ दशकों के दौरान हमारे देश में अनेक कारणों से विवाद उत्पन्न हुए हैं, जैसे कि जाति और जनजातीय मुददे, धर्म, क्षेत्रीय असमानताएं, गरीबी, भूमि और जल, कुछेक मुददे हैं। विवाद क्यों उत्पन्न होते हैं और उनका किस प्रकार समाधान किया जाए इस संबंध में काफी अनुसंधान कार्य किया गया है। तथापि, ऐसे अनुसंधान से विषय की केवल एक सामान्य जानकारी मिलती है और जड़ें छिपी रहती हैं। इस बात को समझते हुए, आयोग ने संघर्ष समाधान की समस्या का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया है जिसमें भारत में विशिष्ट विवादों के संबंध में विचार-विमर्श हेतु कार्यशालाओं का आयोजन करना सम्मिलित है, तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से बड़ी संख्या में व्यक्तियों के साथ चर्चाएं आयोजित की हैं जिन्हें विवादों का निपटान करने का अनुभव प्राप्त था।

1.3 अन्य बातों के साथ-साथ रिपोर्ट में,जन आकांक्षाओं की प्रकृति पर तथा विवाद निपटान तंत्रों को और अधिक प्रतिक्रियाशील बनाने के लिए जरूरी सुधारों की किस्मों पर विचार-विमर्श करने के लिए आयोग के तत्वावधान में आयोजित विवाद निपटान पर एक कार्यशाला में हुई चर्चाओं में निचोड़ प्रस्तुत किया गया है। कार्यशाला में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों द्वारा उपलब्ध कराई गई प्रचुर जानकारी से हमें यह रिपोर्ट तैयार करने में बहुमूल्य इनपुट प्राप्त हुए। इस कार्यशाला का समन्वय कार्य नीति अनुसंधान केन्द्र (सी पी आर), नई दिल्ली और कन्नड विश्वविद्यालय, हाम्पी ने किया था और इसका आयोजन 4 और 5 फरवरी 2006 को सी पी आर में किया गया था।

1.4 रिपोर्ट चार भागों में विभाजित है। इस पहले भाग में संक्षिप्त परिचय दिया गया है। द्वितीय भाग में एक वैचारिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। तीसरे भाग में जाति, श्रेणी, धर्म और इलाके तथा साथ ही भूमि और जल सम्बद्ध मुद्दों से भी जुड़े मुद्दो के कारण उत्पन्न विवादों पर विचार किया गया है। चौथे और अन्तिम भाग में संघर्ष समाधान के लिए संस्थागत संरचना पर विचार किया गया है।[1]

1.5 आयोग, इस रिपोर्ट का मसौदा तैयार करने में श्री एस.के. दास, परामर्शदाता और श्री नावेद मसूद द्वारा प्रदान की गई सहायता के प्रति अपना आभार व्यक्त करता है।

1.6 आयोग, "नागालैण्ड पर प्रमुख रूप से बल देते हुए पूर्वोत्तर में संघर्ष समाधान और सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए श्री के. असुंगबा संगतम (पूर्व सांसद) का आभारी है जिसका उपयोग आयोग ने यह रिपोर्ट तैयार करने के लिए किया था। आयोग, श्री पी.के.एच. थरकन का भी, उनके बहुमूल्य आधान के लिए, आभारी है।

i जम्मू और काशमीर में आतंकवाद से सम्बद्ध मुद्दों पर "आतंकवाद पर रिपोर्ट" में विचार किया गया है।

2

विवाद समाधान – एक वैचारिक रूपरेखा

2.1 विवाद समाधान –परिदृश्य

2.1.1 विवाद की परिभाषा दो अथवा अधिक पक्षकारों के बीच एक ऐसी स्थिति के रूप में की गई है जो अपने परिदृश्य को असंयोज्य समझते हैं।[1] विवादों का एक नकारात्मक लाभप्रद अर्थअभिधान है किन्तु कुछ विवाद वांछनीय हैं क्योंकि उनसे परिवर्तन आता है।

2.1.2 सोलहवीं शताब्दी के एक कवि जॉन डोने ने लिखा था, ‘‘कोई भी व्यक्ति अपने आप में एक द्वीप नहीं हैं। ‘‘व्यक्ति अपने आपको अनेक समूहों के सदस्य समझते हैं जो अपने अनेक हितों पर बल देते हैं। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति की भौगोलिक उत्पत्ति, लिंग, जाति, श्रेणी, भाषा, राजनीति, वांशिक प्रथा, व्यवसाय और सामाजिक प्रतिबद्धताएं उसे विभिन्न समूहों का सदस्य बनाती हैं। इनमें से प्रत्येक समूह, जिससे व्यक्ति संबंधित है, उसे एक विशेष पहचान प्रदान करते हैं,[2] किन्तु सभी को मिलाकर उसकी अनेक पहचान है।

2.1.3 पहचान की खोज एक सशक्त मनोवैज्ञानिक अभिप्रेरक ताकत है जिसने मानव सभ्यता को बढ़ावा दिया है।[3] पहचान प्राय:एक आह्वान है। यह एक भ्रम अथवा कल्पित समुदाय से संबंधित है जिसमें राजनीतिक अभिप्रेरण के लिए आवश्यक सभी शक्ति और क्षमता मौजूद है। पहचान की भावना, किसी व्यक्ति के अन्यों के साथ, जैसे कि उसके पड़ोसी, उसके समुदाय के सदस्यों, साथी नागरिकों अथवा एक ही धर्म का पालन करने वाले लोगों के साथ, संबंधों में ताकत और उकसाहट पैदा करने में अपार योगदान कर सकती है।[4] राबर्ट पुटनम द्वारा समर्थित सामाजिक पूंजी की अवधारणा से हमें पता चलता है कि किसी प्रकार एक ही सामाजिक समुदाय में अन्यों के साथ भागीदारीपूर्ण पहचान से उस समुदाय में रहने वाले सभी लोगों का जीवन और अधिक सामन्जस्यपूर्ण और सार्थक बन सकता है। उस सीमा तक सामाजिक समुदाय से संबंधित होने की भावना एक मूल्यवान स्त्रोत बन जाती है; लगभग पूंजी के समान।[5]

[1] "कनफिलक्ट रेजोल्युशन एण्ड वायलेंस प्रीवेन्शन: फ्राम मिसअन्डरस्टेन्डिंग टू अन्डरस्टेन्डिंग, लोरी कोहेन, एम एस डब्ल्यु, रचेल उविस, एम एस डब्ल्यु और मनल अबोएलाटा"
[2] अमृतया सेन, "आइडेन्टिटी एण्ड वायलेंस: दि इलुजन्स आफ डेस्टिनी" (2006), एलेन लेन
[3] कुमार रूपसिंघे, "गवर्नेन्स एण्ड कनफि्लक्ट रेजोल्युशन इन मल्टी-एथनिक सोसायटीज"
[4] अमृतया सेन, "आईडेन्टिटी एण्ड वायलेंस : दि इलुजन्स आफ डेस्टिनी " (2006)
[5] राबर्ट पुटनम, "बावलिंग अलोन : दि कोलेटस एण्ड दि रिवाइवल आफ अमेरिकन कम्युनिटी "

2.1.4 और फिर भी पहचान से आघात भी पहुंच सकता है और परित्याग के साथ आघात [6] । बहुत से मामलों में किसी एक समूह से संबंधित होने की एक मजबूत तथा अनन्य भावना से विवाद उत्पन्न हो सकता है। आजकल अनेक विवाद एक अनूठी और पंसदहीन पहचान के भ्रम के जरिए बने हुए हैं। ऐसे मामलों में, घृणा पैदा करने की कला कुछ कथित प्रभावशाली पहचान की कल्पित शक्ति प्राप्त करने का रूप ले लेती है जो अन्यों पर बिल्कुल हावी हो जाती है। उपयुक्त उकसाहट के साथ, एक समूह के लोगों के साथ पहचान की एक थोपी गई भावना प्राय: अन्यों पर अत्याचार करने का एक सशक्त साधन बन जाता है तथा उसका नतीजा घृणा और हिंसा होता है। ऐसी घृणा और हिंसा की तीव्रता समाज के ताने-बाने के लिए एक वास्तविक खतरा पैदा करती है। [7]

2.1.5 हम आजकल एक बढ़ती हुई हिंसा के विश्व में रह रहे हैं जिसका कारण हमारे द्वारा पैदा किए जाने वाले विवाद हैं। कुल मिलाकर बीसवीं शताब्दी सर्वाधिक हिंसक युग था जिसमें मनुष्यों ने जीवन बिताया। बीसवीं शताब्दी के दौरान पिछली चार शताब्दियों को मिलाकर भी संघर्षों में तीन गुणा लोग मारे गए।

2.1.6 वस्तुत: भारत में भी, पिछली शताब्दी के अन्त तक असहिष्णुता की लगभग प्रवृत्तियां कायम हो गईं तथा भिन्न-भिन्न समूहों ने प्राय थोड़ी सी भी उकसाहट पर हिंसा का सहारा लेने की बढ़ती प्रवृत्ति प्रदर्शित की।

2.1.7 जीवन की हानि संघर्षों का केवल एक सहायक परिणाम है। अन्य परिणाम हैं: खाद्य प्रणालियों की बरबादी, सार्वजनिक सेवाओं में व्यवधान, आय की हानि, विस्थापन, असुरक्षा और अपराधों में वृद्धि। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि संघर्षों के कारण होने वाली तात्कालिक लागत, यद्यपि विशाल है, किन्तु कीमत का केवल एक थोड़ा सा अंश प्रदर्शित करती है जिसे प्रभावित लोगों को अदा करना पड़ता है। विशेष रूप से संघर्ष की संस्थागत लागत के समाज के दीर्घावधिक विकास के लिए विध्वंसक परिणाम हो सकते हैं। संघर्षों के दौरान नष्ट हुई सड़कों और इमारतों की भौतिक अवस्थापना की मरम्मत की जा सकती है अथवा उनका पुनर्निर्माण किया जा सकता है, हालांकि भारी लागत पर, किन्तु संस्थानों में पहुंचा व्यवधान, पारस्परिक विश्वास और समझबूझ को पहुंची ठेस और आघात, जो कमजोर लोगों को पहुंचता है, दुर्भावनाओं को जन्म दे सकता है और संघर्ष व हिंसा पुन: घटित हो सकती है। इनसे पूरी आबादी हिंसा के कुचक्र से गुजरती है और यही वजह है कि प्रारम्भिक स्तरों पर ही संघर्षों को रोकना अथवा उनका समाधान करना एक बाध्यकर चुनौती बन जाती है।

[6] अमृतया सेन, "आइडेन्टिटी एण्ड वायलेंस : दि इलुजन्स आफ डेस्टिनी " (2006)

[7] हर्ष सेठी, मल्टीपिल क्राइसिस इन साउथ एशिया; एक्सप्लोरिंग पासिबिलिटीज", इन पार्टिसिपेटरी डवलपमेंट, लर्निंग फ्राम साउथ एशिया, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस।

तालिका 2.1 : विवाद और मानव जीवन

अवधि	संघर्ष सम्बद्ध मौतें (मिलियन)	विश्व आबादी,मध्य शताब्दी(मिलियन)	विश्व आबादी के हिस्से के रूप में संघर्ष सम्बद्ध मौतें (%)
सोलहवीं शताब्दी	1.6	493.3	0.32
सत्रहवीं शताब्दी	6.1	579.1	1.05
अठारहवीं शताब्दी	7.0	579.1	1.05
उन्नीसवीं शताब्दी	19.4	1,172.9	1.65
बीसवीं शताब्दी	109.7	2,519.5	4.35

स्त्रोत: "कनफ्लिक्ट डेथ्स डाटा, "सिवर्ड, 1991, 1996; टवैन्टियथ सेन्चरी पापुलेशन डाटा, यू.एन. 2005; अदर पापुलेशन डाटा, ह्युमन डवलमेंट रिपोर्ट आफिस इन्टरपोलेशन बेस्ड आन साइकेस, 2004

2.2 संघर्ष के स्तर–एक जीवन चक्र दृष्टिकोण

2.2.1 कोई संघर्ष एकल घटना लक्षण नहीं है बल्कि एक गतिशील प्रक्रिया है जिसके भिन्न-भिन्न चरण हैं। सम्मिलित पार्टियों के उद्‌देश्य, उनके दृष्टिकोण, तीव्रता स्तर, सम्भावित क्षति आदि सभी से संघर्ष के जीवन चक्र के विभिन्न चरणों के बीच बदलाव आता है। इसलिए, कोई इष्टतम संघर्ष प्रबंधन नीति प्रत्येक स्तर पर भिन्न-भिन्न होती है। इससे यह आवश्यक हो जाता है कि संघर्ष निवारण और प्रबंधन कार्यनीतियों को लागू करने के लिए पूरे जीवन चक्र के दौरान संघर्ष की गति को बारीकी से समझा जाए।

2.2.2 भिन्न-भिन्न लोकाचारों, हितों, समाजार्थिक स्थितियों और जरूरतों वाले समाज में सदस्यों के बीच सदा ही तनाव की क्षमता बनी रहती है। इस प्रकार, किसी भी समाज में, अनेक कारणवश समूहों अथवा साम्प्रदायिक हितों को नुकसान पहुंचने अथवा उनसे किसी प्रकार वंचित होने की बात बनी रहती है। यदि इन्हें बढ़ावा दिया जाए तो ये राज्य अथवा अन्य सामाजिक समूहों अथवा समुदायों के विरूद्ध असंतोष की अभिव्यक्ति का कारण बन सकती है। यदि ऐसे असंतोष पर प्राथमिक स्तर पर ध्यान नहीं दिया गया अथवा इस ढंग से डील नहीं किया गया जिससे किसी समूह/समुदाय के साथ किए गए अन्याय की पहले से मौजूद भावना गम्भीर हो सकती है, तो एक बड़े संघर्ष की स्थिति पैदान हो सकती है। इस प्रकार, एक संघर्षमय स्थिति के विभिन्न चरणों की कल्पना की जा सकती है जो समय पर न की गई कार्रवाई अथवा स्थिति की अनुचित ढंग से हेण्डलिंग की वजह से हो सकती है और प्रत्येक उचित उपायों के अपने मिश्रण का प्रयास करेगा। इन्हें चित्र 2.1 में प्रस्तुत किया गया है।

चित्र 2.1 संघर्ष के चरण

2.2.3 चित्र 2.1 में तनाव का प्रस्तुतीकरण किया गया है जिसे संक्षेप में निम्न प्रकार बताया जा सकता है:

1. *वैयक्तिक अथवा सामाजिक तनाव*: ऐसे तनाव तब उत्पन्न होते हैं जब कोई व्यक्ति या समूह यह महसूस करे कि उसके साथ गलती हुई है अथवा उसे उसका उचित हक प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसा तनाव ऐतिहासिक समाजार्थिक असमानताओं के कारण भी उत्पन्न हो सकता है। व्यक्तियों और समाज के बीच तनाव का एक मुख्य कारण घटिया शासन होता है।

2. *अन्तर्निहित विवाद:* तनाव की वजह से अन्याय की भावना पनपती है और धीरे-धीरे असंतोष पनपता है। तथापि, इस स्तर पर, इन तनावों में अधिकारियों आदि के साथ अनुरोध का रूप शामिल हो सकता है। प्रशासन की दृष्टि से, किसी संघर्ष पर काबू पाने, बल्कि किसी संघर्ष को रोकने का यही उपयुक्त समय होता है। तथापि, प्रशासन "अग्नि-शमन" उपायों में व्यस्त रहता है, अन्तर्निहित तनाव के प्रारम्भिक लक्षण प्राय: अनदेखे रह जाते हैं।

3. *तनावों में वृद्धि*: प्रशासन द्वारा अनसुनी शिकायतें, उपेक्षित चिन्ताएं और तनावों की वजह से असंतोष में और वृद्धि होती है। विरोधी पक्षों द्वारा अपनाया गया रूख कठोर हो जाता है। इस स्तर पर अधूरे प्रयास बहुत कम सहायक होते हैं। सम्मिलित पक्षकार अपनी भावनाओं को और आक्रामक ढंग से व्यक्त करते हैं जैसे कि प्रदर्शन, जुलुस, हड़ताल, "बंध" और ऐसी ही अन्य बातें।

4. *विस्फोट:* यदि तनावों का उपयुक्त रूप से समाधान न किया गया तो थोड़ी सी "चिंगारी" से हिंसा भड़क सकती है। "चिंगारी" अथवा खटका अपने आप में कोई बड़ी घटना नहीं हो सकती परन्तु इससे उसमें सम्मिलित लोगों का ध्रुवीकरण हो सकता है और वह हिंसा भड़कने का एक बहाना हो सकता है। सामान्यत: प्रशासन उस समय हरकत में आता है और हिंसा को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। देखा गया है कि हिंसा पर काबू पाने के बाद भी तनाव के मूल कारणों को दूर करने के प्राय : प्रयास नही किए जाते।

5. *ठहराव:* यह स्थिति "अन्तर्निहित तनाव " जैसी है और नियंत्रित अन्तरालों पर फूट पड़ने की सम्भावना रहती है।

2.2.4 इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि प्रत्येक स्तर पर शासी मुद्दे सम्मिलित होंगे। यद्यपि सरकारी उपायों की कमी अथवा स्थिति की असावधानीपूर्ण हेण्डलिंग से उभरी हुई स्थिति संघर्ष का अगला रूप ले सकती है, तथापि, उपयुक्त और सामायिक उपायों से अधिकांश मामलों में तनावपूर्ण स्थिति का समाधान हो सकता है। उपरोक्त संदर्भ में यह समझना महत्वपूर्ण है कि एक बार ठहराव की स्थिति से निपटने के लिए और अधिक जटिला व बहु-आयामीय दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत होगी जिसमें बातचीत और समझौते का मार्ग अपनाना जिसके फलस्वरूप तनाव में कमी आ सकती है और तनाव पश्चात विश्वास निर्माण शान्ति प्रक्रिया शुरू करना सम्मिलित है।

2.2.5 "ट्रानसेण्ड" के निदेशक तथा "राइट लिवलीहुड अवार्ड" के विजेता जोहन गलतुंग ने "कनाफ्लिक्ट ट्रांसफोर्मेशन बाई पीसफुल मीन्स (दि ट्रानसेण्ड मेथड)" [8] नामक एक मैनुअल प्रकाशित किया गया है।

[8] स्त्रोत: http://www.transcend.orgpctrcluj2004/TRANSCEND_manual.pdf

इन उपायों के पीछे मूलाधार विश्व के छ: प्रमुख धर्मों की विचारधाराओं पर आधारित है। इस प्रकार इसमें कहा गया है कि :

- तनाव हिंसा के एक स्त्रोत के रूप में एक विध्वंसक है; यह विकास के एक स्त्रोत के रूप में एक सृजनकर्ता है; हिंसा से बचकर और विकास को प्रोत्साहित करके, तनाव को बदलकर परिरक्षक की भूमिका प्राप्त की जा सकती है।
- तनाव की कोई शुरूआत और कोई अन्त नहीं होता; प्रत्येक तनाव परस्पर कारणवश साथ-साथ पैदा होता है; कोई भी एकल कारण सभी के लिए जिम्मेदार नहीं होता तथा कोई भी एकल कारण सभी दोषों के लिए जिम्मेदार नहीं होता।
- अन्तत: विवाद बदलाव की जिम्मेदारी व्यक्तियों की होती है; शान्ति के साथ कार्य करने और आशा के सिद्धान्त के आधार पर उनके निर्णयों पर।
- प्रत्येक बात अच्छी अथवा बुरी होती है; ऐसी काफी सम्भावना है कि चुनी गई कार्रवाई के भी नकारात्मक परिणाम हो सकते हैं और चुनी न गई कार्रवाई के सकारात्मक परिणाम हो सकते हैं; प्रत्यावर्तन और केवल ऐसा कार्य करने की जरूरत है जिसे वापस किया जा सकता है।
- कोई सांझा लक्ष्य एक साथ प्रस्तुत करने से शक्ति प्राप्त करना, सभी के कल्याण के लिए जिम्मेदारी सहित।
- सच्चाई, किसी सूत्र तक पहुँचने के लिए संवाद की तुलना में मौखिक सूत्र में कम अन्तर्निहित है तथा संवाद की कोई शुरूआत और कोई अन्त नहीं होता।

2.2.6 उपरोक्त के आधार पर, मैनुअल में एक प्रक्रिया का प्रस्ताव किया गया है जबकि विवाद निर्माण का, सभी पक्षकारों, सभी लक्ष्यों और सभी मुद्दों के संबंध में समग्रता में मानचित्रण किया जाता है; विवाद में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले भूले गए पक्षों को इकट्ठा लाया जाता है; सभी पक्षों के साथ अलग-अलग जोरदार ढंग से संवाद आयोजित किए जाते हैं; सभी पक्षों के लिए स्वीकार्य लक्ष्यों का विनिर्धारण किया जाता है; भुलाए गए लक्ष्यों पर विचार किया जाए जिनसे नए परिदृश्य कायम हो सकते हैं; तथा सभी पक्षों को स्वीकार्य दूरदर्शी लक्ष्य तय किए जाएं।

2.2.7 दीर्घावधि से मानवाधिकारों के उल्लघनों और अत्याचारों से उभरने वाले समाज में यह आवश्यक होगा कि ऐसे उत्पीड़न से बाहर निकलने वालों के विवादों का समाधान करने के लिए एक दीर्घकालिक महत्वपूर्ण कार्रवाई योजना तैयार की जाए। इसके लिए यह जरूरी है कि सच्चाई बताई जाए, न्याय किया जाए और कि ऐसी ज्यादतियों के शिकार लोगों को राहत प्रदान की जाए। ऐसी ही स्थितियों में

दक्षिण अफ्रीका, पेरू, इन्डोनेशिया और फिलिपीन्स आदि जैसे देशों अस्थाई रूप से "सच्चाई आयोगों" का गठन किया किन्तु पीड़ित-केन्द्रित दृष्टिकोण अपनाकर विगत मानवाधिकार उल्लंघनों और अत्याचारों की जाँच-पड़ताल करने के लिए अत्यंत प्रभावशाली तथ्य निर्धारण निकायों की स्थापना की ताकि न्याय और मेल-मिलाप दोनों को प्रोत्साहित किया जा सके। कुछ सच्चाई आयोगों ने अपनी सुनवाई इस प्रकार की कि अत्याचारों के पीड़ितों और उनके कर्ताओं, दोनों के लिए एक मंच उपलब्ध हो सके।

2.3 विवाद समाधान और संविधान

2.3.1 भारत में, विभाजन के पश्चात हिंसा के बाद, शाही राज्यों के एकीकरण के बाद से विवाद समाधान की प्रक्रिया शुरू हुई, जो समस्या की विशालता और आकार को देखते हुए उल्लेखनीय शान्तिपूर्ण उपायों के माध्यम से प्राप्त हुई। उसके पश्चात संविधान तैयार करने का काम, तथा जिस प्रकार से उस पर बहस हुई, उसका मसौदा तैयार किया गया व उसे अन्तिम रूप दिया गया, विवाद समाधान का एक सर्वोत्तम उदाहरण है। इसके अनेक कारण हैं। संविधान में प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया और प्रौढ़ मताधिकार का मार्ग चुना गया। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने ठीक ही कहा था कि यह सर्वोत्तम संभव चयन था क्योंकि विश्व भर में अनेक बहु-जातीय राज्यों के अनुभव से पता चला कि प्रजातंत्र विवाद को नियंत्रित व शान्त करने का एक सर्वाधिक सक्षम साधन है।[9] इसके अलावा, भारत के संविधान में, एक मजबूत संध के साथ बहुवाद, संधवाद की व्यवस्था करके समाज के अल्प सुविधा प्राप्त वर्गो के आर्थिक और सामाजिक उत्थान के लिए, देश में विविध समूहों के लिए माहौल तैयार किया गया जिससे कि राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भागीदारी कायम हो सके। उस सीमा तक उम्मीद की गई थी कि प्रजातन्त्र और विकास के संदर्भ में देश के विभिन्न भागों में रहने वाले विविध समूह, परस्पर समझ-बूझ के माध्यम से पूरे भारतीय राष्ट्र के विकास के लिए आवश्यक निर्माण ब्लॉक बन जाएंगें।

2.3.2 यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 30 में, सामान्य रूप से अपने शैक्षिक संस्थान स्थापित और संचालित करने के लिए धर्म के आधार पर अल्पसंख्यक के अधिकार को समाहित किया गया है, तथापि विवेक और मुक्त व्यवसाय, धर्म का पालन और प्रचार की आजादी (अनुच्छेद 25), धार्मिक मामलों का प्रबंध करने की आजादी (अनुच्छेद 26) अपनी भाषा, लिपि अथवा संस्कृति संरक्षित करने के लिए प्रत्येक वर्ग के नागरिकों को प्रदत्त अधिकारों के साथ मिलाकर (अनुच्छेद 29), संविधान के निर्माताओं के मानवीय दृष्टिकोण को प्रदर्शित करता है। जैसाकि भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने टिप्पणी की थी, देश में धार्मिक अल्पसंख्यकों को विशेष संरक्षण प्रदान करते हुए संविधान में उन्हें देश के अन्य नागरिकों की तरह आवश्यक सुविधा भी प्रदान की गई है ताकि वे अपने सम्मान और अधिकारों को पूरा आनंद ले सकें।[10]

[9] श्री पी.वी. नरसिम्हा राव द्वारा "राजीव गांधीज इण्डिया : ए गोल्डन जुबली रिट्रोस्पेक्टिव" 20 अगस्त 1994 को उद्घाटन भाषण।

[10] राजीव गांधी "ए कन्टेम्पोरेरी पर्सपेक्टिव आन जवाहरलाल नेहरू विजन आफ इण्डिया," 21वां जवाहरलाल नेहरू स्मारक व्याख्यान, 13 नवम्बर 1989

संविधान में एक अन्य विवाद निपटान उपाय, बदलते समय और समाज के परम्परागत असुविधा-प्राप्त वर्गों के अनुकूल सकारात्मक कार्रवाई करने के उल्लेख को ध्यान में रखते हुए संशोधन करने की व्यवस्था करना है। संविधान में प्रावधान इस अवधारणा पर आधारित थे कि असुविधा-प्राप्त वर्गों के विरूद्ध भेदभाव को समाप्त करना न केवल आवश्यक है बल्कि असुविधा-प्राप्त वर्गों को विधायी, शैक्षिक अवसरों और सार्वजनिक रोजगार विशेष रूप से सुलभ कराकर सशक्त बनाना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

2.3.3 संविधान के प्रवर्तकों को इस बात का पूरा ज्ञान था कि एक असमान आर्थिक पद्धति वाला प्रजातान्त्रिक राजतन्त्र तीव्र विवादों का एक यही वजह है कि राज्य को असमानताओं को कम और समाप्त करने की जिम्मेदारी सौंपते हुए संविधान में अनेक प्रावधान किए गए हैं। आर्थिक रूप से असुविधा-प्राप्त लोगों के हितों को प्रोत्साहित करने के लिए अर्थव्यवस्था में दखल देने के वास्ते राज्य को सशक्त बनाते हुए संविधान में यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया कि प्रजातान्त्रिक राजतन्त्र का उपयोग आर्थिक असमानताओं को बढ़ाने, कायम करने अथवा उन्हें तीव्र बनाने के एक साधन के रूप में नहीं किया जाए।

2.3.4 संविधान के निर्माता इस बात से भी अवगत थे कि यथास्थिति में परिवर्तन करने के लिए किए जाने वाले उपायों से विवाद उत्पन्न होंगे, विशेष रूप से एक पारम्परिक, असमान समाज को एक आधुनिक प्रजातान्त्रिक समाज में बदलने के संदर्भ में। समानता के अधिकार के तहत संविधान द्वारा प्रदत्त विभिन्न अधिकारों द्वारा आवश्यक यथास्थिति में परिवर्तन इसके उदाहरण हैं। विभिन्न अल्पसुविधाप्राप्त समुदायों के लिए आरक्षण संबंधी प्रावधान इसी श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। संविधान के महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की स्पष्ट रूप से रक्षा करना और इसके अधिदेश के कार्यान्वयन में उत्पन्न होने वाले किसी विवाद पर नियंत्रण करना राज्य का कर्त्तव्य है। तथापि, सामाजिक सुधारों और समाज के आधुनिकीकरण के संबंध में और कानून बनाते समय, राज्य को प्रचुर सावधानी बरतनी होगी तथा यह सुनिश्चित करना होगा कि ऐसे मुद्दों पर व्यापक रूप से चर्चा हो ताकि तनावों को कम से कम किया जा सके।

2.3.5 एक सशक्त और स्वतन्त्र न्यायपालिका की व्यवस्था करने के अलावा, संविधान में विवादों के निपटान के लिए संस्थानों के सृजन की भी व्यवस्था की गई है, जैसे कि जल विवाद, राज्यों के बीच विवाद आदि।

2.4 विवाद समाधान का इतिहास

2.4.1 स्वतन्त्र भारत में विवाद समाधान का इतिहास सफलताओं और असफलताओं दोनों की एक कहानी है। भाषाई विवादों का समाधान आजादी के बाद की एक बड़ी उपलब्धि थी। प्रसिद्ध लेखक, जैसे

कि रामचन्द्र गुहा ने टिप्पणी की है कि भाषाई राज्यों के निर्माण और त्रि-भाषा सूत्र के विकास से देश की एकता को मजबूत और समेकित बनाने में सफलता मिली। [11] "एकसमान भाषा को जारी रखने से राज्य के अन्दर प्रशासनिक एकता और कार्यकुशलता कायम करने का एक आधार प्राप्त हुआ। रूचिकर बात है कि स्वतन्त्र भारत में अलगाव के तीन बड़े आन्दोलन, नामतः नागालैण्ड में, 1980 में दशक में पंजाब में और काशमीर में ऐतिहासिक जातीयता, धर्म और इलाके पर आधारित थे और न कि भाषा पर ।

2.4.2 जातीय और अलगाववादी विवादों में मिजोरम मुद्दे का समाधान एक उल्लेखनीय सफलता थी। मिजोरम में दो दशकों से भी अधिक समय तक सशस्त्र विद्रोह चला। मिजोरम राष्ट्रीय मोर्चे द्वारा चलाया गया आन्दोलन जातीय और धार्मिक भावनाओं पर आधारित था तथा इसका एक घोषित उद्देश्य मिजोरम को भारतीय संघ से अलग करना था। 1966 में एक सशक्त उथल-पुथल हुई तथा हिंसक संघर्ष 1980 के दशक तक जारी रहा। जून 1986 का मिजोरम समझौता, पिछले दशकों के हिंसक संघर्ष का एक संतोषजनक समाधान कायम करने में सफल रहा। इस ऐतिहासिक संघर्ष समाधान के तीन कारक बताए जा सकते हैं : प्रथमतः, प्रधान मंत्री राजीव गांधी के ईमानदारीपूर्ण और ठोस प्रयासों को मिजोरम के लोगों और उनक नेताओं ने अत्यंत सराहा जिसने बातचीत के लिए प्रारम्भिक नीवं रखी ; दूसरे, तत्कालीन दो मिजो राजनीतिक हस्तियों नामतः अविवादित विद्रोह नेता पु लालडेंगा और तत्कालीन मुख्यमंत्री पु लाल थनहावला द्वारा मुख्य मंत्री के रूप में लालडेंगा के पक्ष में कुर्सी छोड़ने की एक पक्षीय पेशकश और अन्ततः मिजो सिविल सोसायटी का, विशेष रूप से महिलाओं का संतुलनकारी प्रभाव और दबाव, हिंसा के दौर के सर्वाधिक पीड़ित और प्रभावित रहा।

2.4.3 दार्जिलिंग पहाड़ियों में सघर्ष समाधान सफलता की एक अन्य कहानी है। गोरखा राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा (जी एन एल एफ) ने, जिसने भारत में रहने वाले सभी गोरखाओं के लिए भारतीय नागरिकता की मांग की थी, प. बंगाल सरकार की ओर से भेदभाव की शिकायत की और तदनुसार राज्य से अलग होने की मांग की। इसने देश के अन्य भागों में, जैसेकि मेघालय में गोरखाओं के हित का भी सवाल उठाया, जहाँ गोरखा निवासियों और स्थानीय लोगों के बीच कुछ विवाद था। आन्दोलन के कुछ समय के दौरान अधिकाधिक हिंसा का रूप ले लिया। अन्त में, संघ सरकार, जी एन एल एफ और राज्य सरकार के बीच एक त्रिपक्षीय समझौता सम्पन्न हुआ (1998) समझौते में तीन मुख्य बातें सम्मिलित थी :

1) सर्वोपरि राष्ट्रीय हित में और प्रधानमंत्री के आह्वान के परिणामस्वरूप, जी एन एल एफ ने गोरखालेण्ड के एक अलग राज्य की मांग छोड़ दी।

[11] रामचन्द्र गुहा, "इण्डिया आफटर गांधी; दि हिस्ट्री आफ दि वर्ल्डस लार्जेस्ट डेमोक्रेसी", पिकाडोर

2) दार्जिलिंग जिले के पर्वतीय क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए, दार्जिलिंग गोरखा पर्वतीय परिषद के नाम से एक स्वायत्त परिषद गठित करने पर सहमति हुई।

3) परिषद के गठन और कार्यकारी शक्तियों का, संघीय और राज्य कानूनों के प्रावधानों के अध्यधीन, विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया।

2.4.4 इसके परिणामस्वरूप लगभग पाँच वर्ष से चला आ रहा विवाद रूक गया और शान्ति कायम हुई। वर्तमान में, क्षेत्र को संविधान की छठी अनुसूची में शामिल करने का एक प्रस्ताव है, जिस पर चर्चा चल रही है।

2.4.5 आजादी के बाद पृथक सिख पहचान की मांग में भारत में एक पृथक राज्य की मांग सम्मिलित थी। एक पृथक पंजाब राज्य का गठन हो जाने के बाद भी, कुछ सम्बद्ध मुद्दे बकाया रह गए जिनका समाधान नहीं हुआ जिनमें अन्य बातों के साथ-साथ राज्य की राजधानी के रूप में चन्डीगढ़ की मांग, नदियों के पानी का बटवारा आदि। स्थिति और भी गम्भीर हो गई जब आतंकी तत्वों ने "खालिस्तान" के रूप में अलग होने की मांग की। यद्यपि आतंकवाद को दबा दिया गया तथापि पंजाब की हिंसा से निकटत: जुड़े और देश के अन्य भागों में इसके प्रभाव के कारण विवाद का समाधान करने के लिए एक स्थायी आधार खोजने के वास्ते, दिसम्बर 1984 के चुनावों के शीघ्र बाद, दृढ़तापूर्वक प्रयास किए गए। जुलाई 1985 में राजीव गांधी लोंगोवाल समझौते से यह अशान्ति अस्थायी तौर पर समाप्त हो गई। एक मास बाद संत लोंगोवाल की हत्या और समझौते का कार्यान्वयन, पंजाब के एक भाग के रूप में चन्डीगढ़ का प्रश्न तथा नदियों के जल का बटवारा खटाई में पड़ जाने से हिंसा फिर से पैदा हो गई। अन्त में, एक नीति अपनाकर सरकार द्वारा विवाद का समाधान किया गया जो चार प्राचलों पर आधारित थी: आतंकवाद को नियंत्रित और समाप्त करने के लिए सुरक्षा कार्रवाई; मिलिटेंटों को हिंसा छोड़ने और बातचीत में भाग लेने के लिए समझाने बुझाने के वास्ते उनके साथ कूटनीतिक सम्पर्क; उन असहमत तत्वों के साथ आमने-सामने चर्चा करना जो देश की प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया के साथ पूर्णत: जुड़ने और प्रभावित लोगों की धार्मिक, सांस्कृतिक और जातीय भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता के बदले में संविधान के बुनियादी तत्वों को स्वीकार करने के लिए तैयार थे।[12]

2.4.6 ऐसे बहुत से विवाद हैं जिनका समाधान होना है। इनमें अन्य बातों के साथ-साथ, जल सम्बद्ध मुद्दे, असमानताओं और सामाजिक तनावों के कारण उत्पन्न विवाद, गरीबी के कारण विवाद और क्षेत्रीय असंतुलनों के कारण विवाद सम्मिलित हैं। कुछ मामलों में, एक विवाद के समाधान से अन्य विवाद

[12] मणिशंकर अय्यर, "राजीव गांधीज इण्डिया : ए गोल्डन जुबली रिट्रोस्पेक्टिव", यू बी एस पी डी

उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ मामलों में समझौतों और कटाक्षों को ईमानदारीपूर्वक और इस भावना से कार्यान्वित करने में भी असफलता रही है, जिससे उन्हें निष्पादित किया गया था। इन सभी के अलावा, एक न्यूनतमवादी, प्रतीक्षा और देखने के दृष्टिकोण की प्रवृत्ति है जिसके फलस्वरूप हिंसा के मार्ग द्वारा ही सरकारों का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। एक अन्य परिणाम प्रत्येक मुद्दे के संबंध में न्यायालयों का सहारा लेने की जरूरत पैदा हुई है और लगभग प्रत्येक स्तर पर तथा न्यायालयों की बैठकें बुलाने तक के लिए निर्देश जारी करने पड़ते हैं।

2.4.7 आयोग ने, अपने विचार-विमर्श के दौरान, उन क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित किया है जहाँ विवाद बने हुए हैं तथा यह सुझाने का प्रयास किया है कि इन विवादों के संबंध में क्या किया जाना चाहिए। ऐसा करते समय, आयोग ने इन विवादों की उत्पत्ति, आवश्यक उपाय और शीघ्र उपाय करके उन्हें न्यूनतम करने में सहायता प्रदान करने के लिए क्षमता निर्माण उपायों पर विशेष ध्यान दिया है।

2.4.8 इस रिपोर्ट में उन अन्य मुद्दों पर भी चर्चा की गई है जो विवाद के स्त्रोत हैं तथा उनका समाधान करने के लिए एक सम्भावित उपाय का सुझाव दिया गया है। उदाहरण के लिए अनुसूचित जातियों, अनु. जनजातियों व अन्य पिछड़े वर्गों से संबंधित मुद्दे इसलिए उत्पन्न हुए हैं क्योंकि इन असुविधाप्राप्त समूहों के साथ अत्याचार, शोषण, भेदभाव और वंचना की गई है तथा इन्हें उनके उचित अधिकारों का लाभ उठाने से तथा एक सम्मानपूर्वक जीवन बिताने व अपने मूल्य की भावना को समझने से रोका गया है। परिणामतः असंतोष मुख्यतः सुलगता रहा है तथा हिंसा की छुट-पुट घटनाएं होती हैं जिनसे उग्रवादी आन्दोलनों का प्रसार और विकास होता है।

2.4.9 भूमि, विवाद का एक अन्य ाोत है। भू-वितरण में असमानता के मुद्दे से जुड़े मुद्दे कब्जा खारिज करने, वंचना और विस्थापन से संबंधित हैं अत्यंत भावात्मक मुद्दे, जो भावनाओं को भड़काते हैं तथा विवाद को जन्म देते हैं, विशेष रूप से तीव्र आर्थिक विकास के संदर्भ में। ऋणग्रस्तता जैसे मुद्दे भी जिनके फलस्वरूप किसान आत्महत्याएं करते हैं, विवाद के स्त्रोत रहे हैं।

2.4.10 जब विवादों के कारण हमारे समाज के घटकों, राजनीतिक दलों, राज्यों, क्षेत्रों और राज्यों के अन्दर उप-क्षेत्रों, जिलों, जातियों और समूहों तथा अलग-अलग किसानों के बीच मतभेद उत्पन्न होते हैं। ये विवाद जल की हकदारी उपयोग से लेकर जल की गुणवत्तता के मुद्दों और आवंटनों के संबंध में अन्तर-राज्य विवादों तक फैले हैं जो देश भर में विद्यमान हैं। विवेकपूर्ण और समझदारी के साथ उनका निपटान न किए जाने तक ये देश के आर्थिक विकास, सामाजिक स्थिरता और यहाँ तक की राष्ट्रीय एकता के लिए भी एक बड़ा खतरा बने हुए हैं।

2.4.11 वाम उग्रवादी आन्दोलन, जिसने अभी तक हजारों जीवन समाप्त कर दिए हैं, पिछले वर्षों के दौरान धीरे-धीरे बढ़ा है तथा देश के अनेक भागों में फैल गया है। देश की जनजातीय भूमि में जो अब इस

आन्दोलन का गढ़ है, गरीबी और वंचना की समस्या, पूरे समुदाय को आर्थिक मुख्य धारा से अलग-थलग करने और वन वासियों को वनों से तथा आजीविका के ा्रोतों से विस्थापित करना, इन सभी ने मिलकर इस आन्दोलन के प्रसार के लिए उर्वरक भूमि का निर्माण किया है जो समानता, न्याय और आजीविका का वायदा करते हैं। आन्दोलन के जरिए हिंसा ने, हालाँकि बड़ी कीमत अदा की है क्योंकि उग्रवादी आन्दोलन के प्रमुखों ने विकास हेतु पहलों का भी विरोध किया है और उन्हें बाधा पहुँचाई है जिसे वे अपने राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति में एक बाधा समझते हैं। दुर्भाग्यवश, प्रभावित क्षेत्र, कहने के लिए देश में कम विकसित क्षेत्रों में हैं।

2.4.12 धार्मिक समूहों और सम्प्रदायों के बीच संघर्ष काफी सामान्य रहे हैं और धार्मिक-साम्प्रदायिक मतभेद के अनिष्ट ने हमारे सामाजिक ताने बाने को इस प्रकार से खतरा पैदा कर दिया है जितना कि किसी अन्य सामाजिक-राजनीतिक मुद्दे ने नहीं किया है। यह मतभेद विवादों का स्त्रोत रहा है जिसने हिंसक घटनाओं और अत्याचारों को जन्म दिया जिससे लाखों जीवन समाप्त हो गए तथा सारी आबादी हिंसा के कुचक्र में फंस गई तथा पिछले अनेक वर्षों के दौरान कायम हुआ विश्वास नष्ट हो गया।

2.4.13 भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में, पिछले दशकों के दौरान समूहों के बीच चले संघर्षों में बहुत से लोग मारे गए हैं। देश का यह संवेदनशील इलाका विवादों से भरा है जो इस इलाके के भूगोल और इतिहास, इसकी आबादी की बहु-जातीयता और इसकी राजनीतिक व आर्थिक स्थिति में अन्तर्निहित है जो अत्यंत तीव्र असंतोष और विवादों के लिए एक पोषक स्थल बन गया है। संघर्ष की गति की, अलगाव के लिए विद्रोह , विद्रोह से लेकर स्वायत्ता के लिए बगावत, प्रायोजित आतंकवाद से लेकर जातीय दंगों तक तथा सीमा पार से व देश के अन्य मार्गों से प्रवासियों के सतत आप्रवाह के परिणामस्वरूप उत्पन्न संघर्षों तक फैले हैं। तदर्थ समाधानों से इलाके में संघर्षों के चक्र में योगदान किया है।

2.4.14 क्षेत्रीय असमानताएं विवाद का एक अन्य स्त्रोत हैं। पिछले अनेक दशकों के दौरान क्षेत्रीय असंतुलनों में वृद्धि हुई है तथा अन्तर-राज्य असमानताएं और शहरी-ग्रामीण मतभेद की समस्याएं और तीव्र हो गई हैं। ऐसा, विभिन्न योजनाओं/कार्यक्रमों की साम्यता प्रोत्साहन भूमिका के बावजूद हुआ है तथा बुनियादी सेवाएं और आधारिक ढाँचा प्रदान करने में अन्तरालों को दूर करने के लिए अधिक प्रयासों की जरूरत की ओर संकेत करता है जिससे कि कोई भी इलाका अथवा उप-क्षेत्र और कोई भी समूह विकास और संवृद्धि के लाभों से वंचित न रहे।

2.4.15 इस समय, भारत की 1/6 आबादी हिंसक संघर्षों के छाये में रहती है। इनमें से कुछेक संघर्ष, विशेष रूप से पूर्वोत्तर और जम्मू और काश्मीर के संघर्ष 1947 से चल रहे हैं। आधुनिक वाम उग्रवाद आन्दोलन बाद में आया। जैसा कि पहले कहा गया है, इन संघर्षों के संबंध में राज्य की प्रतिक्रिया हाल ही के दशकों में मुख्यत: प्रतिक्रियाशील रही है। राज्य तथा उनके तंत्र इन संघर्षों को कानून और व्यवस्था भंग

होने की दृष्टि से देखते हैं जो वस्तुत: यह एक दृष्टि से है और समाजार्थिक, राजनीतिक, अधिशासन और विकास नीतियां की असफलता की दृष्टि से कम। इस तथ्य को पर्याप्त रूप से नहीं समझा गया है और कार्रवाई नहीं की गई है कि प्रतिक्रियाशील व सु-शासन का अभाव प्राय: हिंसक संघर्षों के लिए जिम्मेदार होता है।

2.4.16 विवादों का निपटान करने के लिए राज्य को क्या करना चाहिए ? आदर्शत: राज्य को विवाद की जड़ पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए तथा उससे पहले कि समस्याएं बड़ी बन जाएं और संघर्ष में बदल जाएं, उनका समाधान खोजा जाना चाहिए। एक बार उनका पता लग जाने पर, उपयुक्त प्रशासनिक व संस्थागत उपाय खोजे जाने और ऐसे संघर्षों की सम्भावना को न्यूनतम करने में मदद देने के लिए उनका उत्साहपूर्वक पालन किया जाना चाहिए। समस्या के बढ़ने के प्राथमिक चरण होते हैं जबकि पूर्व चेतावनी, सामयिक विश्लेषण और समुचित प्रतिक्रिया जैसे उपायों के जरिए समस्या को हिंसा द्वारा संघर्षों का रूप लेने से रोका जा सकता है।

2.1 : **चिन्तन बनाम गोलियां**

भविष्य में, लम्बी लड़ाई, शक्ति के साथ विद्रोह का मुकाबला करने के युद्धों से कोई स्पष्ट जीत हासिल नहीं होगी। अमरीका में, बगावत रोधी एक नए मैनुअल में कहा गया है कि बगावत-रोध एक ''सशस्त्र सामाजिक कार्य'' है। इसके लिए बाहुबल की बजाए अधिक सोचने, आक्रामकता की बजाए अधिक धैर्य की जरूरत है तथा एक माडल सैनिक को इतिहास और मानवविज्ञान की भावना के साथ, अधिक बुद्धिजीवी, सम्भवत: एक भाषाविद, होने की जरूरत है।

''एक चाकू के साथ सूप खाना सीखना'' नामक अपनी पुस्तक में (2002) जोह्न नागी, एक अमरीकी लेफिटनेंट कर्नल ने 1950 के दशक में मलय में क्रान्तिकारियों के विरूद्ध ब्रिटिश की सफलता का उल्लेख किया है। जैसा कि मलय में ब्रिटिश उच्चायुक्त जनरल सर गेराल्ड टेम्पलर ने दलील दी थी। समाधान ''जंगलों में और अधिक सेना भेजने में नहीं है बल्कि लोगों के दिल और दिमाग में है''।

स्त्रोत: ''दि इकोनोमिस्ट'' में रिपोर्टों पर आधारित (अक्तूबर 27-नवम्बर 2, 2007 अंक, पृष्ठ 15 और 33-35)

2.4.17 यही वजह है कि विवाद की मूल जड़ की समझ विकसित करना तथा ऐसी दीर्घावधिक कार्यनीतियां तैयार करना महत्वपूर्ण है जिनसे न केवल तात्कालिक मांगों की पूर्ति हो बल्कि उनमें अन्तर्निहित मुद्दों पर ध्यान देना भी सम्मिलित है जैसे कि गरीबी का उपशमन, सामाजिक न्याय और सशक्तीकरण तथा आधारभूत स्तर पर भ्रष्टाचार मुक्त विकास। राज्य को, संघर्षों को मात्र कानून और व्यवस्था का उल्लंघन नहीं समझना चाहिए और ऐसे उल्लंघनों का समाधान करने के लिए अग्निशमन तकनीकें नहीं अपनानी चाहिए। यदि जनजातियों, जातियों, इलाके और धर्मों में कोई त्रुटि अन्तर्निहित हो तो राज्य को इन विविध समूहों के विवादों में दखल देने के लिए राजनीतिक स्थितियां और पद्धतियां कायम करनी चाहिए और उन्हें एकीकृत करना चाहिए ताकि सभी समूह सामूहिक रूप से और सामन्जस्यपूर्ण ढंग से काम कर

सकें। यह समझने की जरूरत है कि ऐसे विवाद विकास और वृद्धि की प्रक्रिया से लाभों के असमान वितरण की वजह से गहन रूप से जुड़ी शिकायतों के ढेर हैं। तथापि, यह सौभाग्य की बात है कि समूहों और क्षेत्रों के बीच ऐसे विवादों का समाधान किया जा सकता है। सबसे पक्का तरीका बहु-पणधारी संवाद की प्रक्रिया के जरिए विश्वास बहाली का है। शुरूआत इस सरल सिद्धान्त से की जानी चाहिए कि विवादों का निपटान शान्तिपूर्ण ढंग तथा एक सतत आधार पर केवल विश्वास व सतत तथा समावेशी संवाद के जरिए से हो सकता है। जरूरत बहु-पणधारी मंच अथवा ऐसी ही भागीदारीपूर्ण प्रक्रिया कायम करने की है जिनसे पणधारी इकट्ठे हो सकें। संस्थागत और प्रशासनिक दोनों प्रकार की समावेशी संरचनाओं की जरूरत है जिसके अन्दर विविध हितों और आकांक्षाओं वाले व्यक्ति चर्चा कर सकें तथा अपने कार्यों को समन्वित व उनमें सहयोग देने के लिए सहमत हो सकें।

2.4.18 यह भी समझने की जरूरत है कि राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रतिद्वन्दिता विकास प्रक्रिया का एक अपरिहार्य भाग है - किसे क्या, कब और कैसे प्राप्त होता है । क्या ये प्रतिद्वन्दिताएं ऐसे विवादों का रूप ले लेती हैं जो समय के दौरान असाध्य सिद्ध होते हैं, विभिन्न समूहों के हितों और आकांक्षाओं को समझने और अनुमान लगाने की राज्य के संस्थानों की क्षमता, उनके बीच मध्यस्था करने और वैमनस्य को दूर करने पर निर्भर करता है। ये सभी बातें सभी स्तरों पर ऐसे संस्थान कायम करने पर निर्भर करती हैं जो जिन्हें वैध, प्रभावी, भागीदारीपूर्ण, विश्वसनीय और जवाबदेह समझा जाए और न कि सांकेतिक अथवा ऐसी पद्धति के रूप में समझा जाए जिनसे संकीर्ण विहित हितों को प्रोत्साहन और बढ़ावा मिले। उसके बाद उपयुक्त क्षमता का निर्माण करने और इन पद्धतियों की कारगरता की बात रह जाती है।

3

वाम उग्रवाद

3.1 वाम उग्रवाद : प्रसार और तीव्रता

3.1.1 वाम उग्रवाद प्रकोप, जिसे बाद में नक्सली आन्दोलन के नाम से जाना जाने लगा, प. बंगाल में दार्जिलिंग जिले के तीन पुलिस स्टेशन इलाकों (नक्सलबाड़ी, खोरीबाड़ी और फांसीदेवा) में मार्च 1967 शुरू हुआ। आन्दोलन का "नक्सलबाड़ी चरण" (1967-68) ने मई-जून 1967 के दौरान तेजी पकडी किन्तु जुलाई -अगस्त 1967 तक उस पर नियंत्रण पा लिया गया । आजकल, वाम उग्रवाद आन्दोलन एक जटिल कड़ी है जो बहुत से राज्यों में फैली है। गृह मंत्रालय के अनुसार इस समय नौ राज्यों, यथा आन्ध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और प. बंगाल में 76 जिले चरमपन्थी वाम उग्रवाद से प्रभावित हैं जिन्होंने एक लगभग सतत नक्सल गलियारा बना लिया है। सी पी आई (एम एल) - पी. डब्ल्यु जी और माओवादी साम्यवादी केन्द्र - भारत (एम सी सी - आई) अन्य राज्यों, नामतः तमिलनाडु, कर्नाटक और केरल के कुछ भागों और पहले से प्रभावित कुछ राज्यों में कुछ नए इलाकों में अपने प्रभाव और प्रचालनों में वृद्धि करने का प्रयास कर रहे हैं।[13] 2004 में सी पी आई (एम एल) - पी डब्ल्यु जी और एम सी सी के विलयन से उनकी लड़ाकू क्षमता में वृद्धि हो गई है। अनुमान है कि इन उग्रवादी दलों में अब 9000-10000 सशस्त्र लड़ाकू हैं जिनके पास लगभग 6,500 आग्नेयास्त्र हैं। सम्भवतः 40,000 अन्य पूर्णकालिक संवर्ग हैं।[14]

3.1.2 तालिका 3.1 से 2003-06 अवधि के दौरान वाम उग्रवादी हिंसा की तीव्रता और प्रसार का पता चलता है।

तालिका 3.1 नक्सली हिंसा की राज्य–वार सीमा : 2003–06

राज्यों का नाम	2003		2004		2005		2006	
	घटनाए	मौत	घटनाएं	मौत	घटनाएं	मौत	घटनाएं	मौत
आन्ध्र प्रदेश	577	140	10	74	535	208	183	46
बिहार	250	128	323	171	186	96	107	42
छतीसगढ	256	74	352	83	385	168	715	388
झारखंण्ड	342	117	379	169	312	119	310	124

[13] वार्षिक रिपोर्ट, गृह मंत्रालय, (2004-05)
[14] पी.सी. रामन, आब्जरवर रीसर्च फाउन्डेशन

तालिका 3.1 जारी

राज्यों का नाम	2003		2004		2005		2006	
	घटनाए	मौत	घटनाएं	मौत	घटनाएं	मौत	घटनाएं	मौत
आन्ध्र प्रदेश	13	1	13	4	20	3	6	1
महाराष्ट्र	75	31	84	15	94	53	98	42
उड़ीसा	49	15	35	8	42	14	44	9
उत्तर प्रदेश	13	8	15	26	10	1	11	5
वैस्ट बंगाल	6	1	11	15	14	7	23	17
केरल	12	-	5	-	5	-	2	-
कर्नाटक	4	-	6	1	8	8	10	-
हरियाण	-	-	-	-	-	-	-	-
योग	1597	515	1533	566	1608	677	1509	678

स्त्रोत : गृह मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07

तालिका 3.1 में दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है कि उग्रवादी हिंसा में वृद्धि और उसका विस्तार हो रहा है। तथापि, इन आंकड़ों में इस तथ्य पर प्रकाश नहीं डाला गया है कि हिंसक घटनाओं की गम्भीरता अधिक तीव्र हो गई है जैसाकि कुछ हाल ही की हिंसक घटनाओं से विशेष रूप से स्पष्ट है जबकि छत्तीसगढ़ में भारी जानें गईं। तालिका 3.1 में इस तथ्य को भी पर्याप्त रूप से प्रदर्शित नहीं किया गया है कि अधिकांश प्रभावित इलाके प्रमुख रूप से आदिम जातियों द्वारा बसे वन क्षेत्र हैं।

3.2 आन्दोलन की "प्रकृति"

3.2.1 परवर्ती 1960 के दशक और 1970 के दशक की शुरूआत के एक चरण के छोड़कर, वाम उग्रवादी आन्दोलन मुख्यत: इस दृष्टि से कृषि संबंधी रहा है कि इसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में असंतोष और कुशासन को अभिप्रेरित करना है। वाम उग्रवादी आन्दोलन की कुछ प्रमुख विशेषताओं में निम्नलिखित शामिल हैं :

- यह आन्तरिक सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरा है।
- इसने लोगों का विश्वास प्राप्त कर लिया है, इसकी शक्ति में, विशेष रूप से बेदखल किए गए और सीमान्तिक वर्गों को जुटाकर विशेष रूप से वन और जनजातीय क्षेत्रों में, वृद्धि हुई है।

- यह सरकार के लिए कामकाज न करने की स्थितियां पैदा करता है और "नियंत्रण पाने" के अपने उद्देश्य प्राप्त करने के लिए एक साधन के रूप में विकास कार्यकलापों में सक्रिय रूप से बाधा पहुंचाता है।
- यह कानून पालनकर्ता नागरिकों के बीच डर पैदा करता है।

3.2.2 यद्यपि ये बातें भी सभी आतंकवादी संगठनों के कार्यकलापों का भी भाग हैं, तथापि, इसके व्यापक "भौगोलिक कवरेज" के कारण वाम उग्रवाद ने देश के "संघर्ष परिदृश्य" पर गहरा प्रभाव कायम किया है।

3.3 वाम उग्रवाद के प्रसार के कारण

3.3.1 यद्यपि वाम उग्रवादियों का लक्ष्य वस्तुत: "क्रान्ति" के जरिए राज्य की अपनी ही तस्वीर पेश करना है, तथापि, उन्होंने इस क्रान्ति को, समाज के वंचित और शोषित वर्गों की सहायता हासिल करके, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ ऐसे वर्गों का आबादी में बहुत बड़ा हिस्सा है, पैदा करना पसंद किया। इसलिए ऐसी वंचना और परिणामी असंतोष के कारणों का पता लगाना जरूरी है। आयोग अपनी रिपोर्ट में, योजना आयोग के "विकास और असंतोष, बेचेनी और उग्रवाद के संबंध में विशेषज्ञ दल"द्वारा विस्तृत रूप से विनिर्धारित कारणों का उल्लेख करना चाहेगा। उस रिपोर्ट से उद्धरित कारणों का एक सारांश निम्न प्रकार है:

भू-सम्बद्ध कारक

- भू-सीमा कानूनों का उल्लंघन
- विशेष भू काश्तकारी की विद्यमानता (अधिकतम सीमा संबंधी कानूनों के अन्तर्गत छूटों का लाभ उठाना)।
- समाज के सशक्त वर्गों द्वारा सरकारी और सामुदायिक जमीनों पर अनधिकृत कब्जा (जल स्थलों पर भी)।
- भूमिहीन गरीबों द्वारा जोती जाने वाली सरकारी भूमि पर हकदारी का अभाव।
- पाँचवी अनुसूची क्षेत्रों में जनजातीय भूमि को गैर-जनजातियों को हस्तान्तरित करने की मनाही करने वाले कानूनों का घटिया अनुपालन।
- पारम्परिक भू-अधिकारों को नियमित न करना।

विस्थापन और जबरदस्ती बेदखली

- जनजातियों द्वारा पारम्परिक रूप से प्रयुक्त भूमियों से बेदखली।
- पुनर्वास हेतु पर्याप्त व्यवस्था किए बिना सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं के कारण विस्थापन ।

- समुचित हर्जाने और पुनर्वास के बिना "सार्वजनिक प्रयोजनार्थ" बड़े पैमाने पर भू-अधिग्रहण ।

आजीविका–सम्बद्ध कारण

- खाद्य सुरक्षा का अभाव - सार्वजनिक वितरण प्रणाली (जो प्राय: कार्यात्मक नहीं है) में भ्रष्टाचार।
- पारम्परिक व्यवसायों में बाधा और वैकल्पिक कार्य अवसरों का अभाव।
- सांझे सम्पत्ति संसाधनों में पारम्परिक अधिकारों से वंचना।

सामाजिक बहिष्कार

- सम्मान न दिया जाना
- कुछ क्षेत्रों में, विभिन्न रूपों में अस्पर्श्यता प्रथा का जारी रहना।
- अत्याचारों को रोकने, नागरिक अधिकारों के संरक्षण और बंधुआ मजदूरी आदि संबंधी विशेष कानूनों का घटिया अनुपालन।

सरकार सम्बद्ध कारक

- अनिवार्य सार्वजनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार और असंतोषजनक ढंग से प्रदान किया जाना/प्रदान न किया जाना, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल और शिक्षा सहित।
- अक्षम, कु-प्रशिक्षित और असंतोषजनक प्रेरणा वाले सरकारी कार्मिक जो अपनी तैनाती के स्थान से अधिकांशत: अनुपस्थित रहते हैं।
- पुलिस द्वारा शक्तियों का दुरूपयोग और कानून के मानदण्डों का उल्लंघन।
- मतदान राजनीति की विकृति और स्थानीय शासन संस्थानों का असंतोषजनक कामकाज।

यह पुन: उल्लेखनीय है कि ये कारण वन क्षेत्रों में अत्यंत उग्र हैं जहाँ प्रमुख रूप से जनजातीय लोग बसते हैं, जो इस प्रकार वाम उग्रवादी हिंसा के मुख्य साधन और शिकार बन जाते हैं।

3.3.2 यद्यपि विशेषज्ञ दल द्वारा बताए गए कारणों की व्याख्या करने की जरूरत नहीं है तथापि इनमें से कुछेक पर विस्तारपूर्वक ध्यान दिए जाने की जरूरत है। पहली विडम्बना यह है कि सरकार और वाम उग्रवादियों द्वारा समस्या का निदान एकसमान है। दोनों "पक्ष" इस बात से सहमत हैं कि बहुत से स्थानों पर छद्म काश्तकारी जोत संबंधी असुरक्षा, न्यून मजदूरी दरें और सामंतशाही प्रथाओं को बनाए रखने की वजह से ग्रामीण गरीबों के बीच असंतोष पैदा हुआ है- एक ऐसा असंतोष जिसने उनमें से अनेकों को

राजनीतिक रूप से प्रेरित किया है। समस्त भू-सम्बद्ध मुद्दों का समाधान करने के लिए अधिनियमित अनेक विधानों के बावजूद, जैसे कि भू-परिसीमन लागू करना, अधिशेष भूमि का वितरण, जोतों की चकबन्दी, भूमि के बिखराव को रोकना, काश्तकारों के अधिकारों का संरक्षण और परती भूमियों का निपटान आदि, तथापि, ढुलमुल कार्यान्वयन की वजह से आधार स्तर पर उनका प्रभाव सीमान्तिक है। इससे, लाभार्थियों को, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहाँ भूमिहीन श्रमिकों और बटाई पर खेती करने वालों की संख्या बहुत अधिक है, किए गए वायदों की निराशा का लाभ उठाने में वाम उग्रवादियों को मदद मिली है । उदाहरण के लिए, आन्ध्र प्रदेश में यह एक आम बात है कि जिन जमीनों के पट्टे भूमिहीनों को जारी किए गए हैं, वे जमीन वस्तुतः सम्पन्न और सशक्त लोगों के कब्जे में हैं और कि जनजातीय नेता भी ऐसी भूमियों में कृषि श्रमिकों के रूप में कार्य कर रहे हैं।

3.1 गोडावरमन मामला

उच्चतम न्यायालय ने, 1995 के उब्ल्यु पी सं. 202 और 1995 के डब्ल्यु पी सं. 337 में, वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम 1972 के कार्यान्वयन के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय पारित किए हैं। "वन" शब्द के कार्यक्षेत्र का विस्तार कर दिया गया है। यह भी निर्देश दिया गया हे कि किसी भी वन, राष्ट्रीय उद्यान अथवा आश्रयस्थल को उच्चतम न्यायालय की अनुमति के बिना अनारक्षित नहीं किया जा सकता तथा साथ ही इन क्षेत्रों में कोई वन-भिन्न कार्यकलाप भी आयोजित नहीं किया जा सकता। इसके अलावा, नए प्राधिकरणों, समितियों और एजेन्सियों की स्थापना की गई है जैसे कि केन्द्रीय अधिकार प्राप्त समिति (सी ई सी) और क्षतिपूर्ति वनारोपण प्रबंधन तथा योजना एजेन्सी।

टी.एन. गोडावरमन तिरूमुल्कपड बनाम भारत संघ व अन्य, (1995 का डब्ल्यु पी संख्या 202), वन संरक्षण अधिनियम, 1980 के कार्यान्वयन से संबंधित।

पर्यावरणीय विधि केन्द्र (सी ई एल), डब्ल्यु डब्ल्यु एफ बनाम भारत संघ व अन्य (1995 का डब्ल्यु पी सं 337), राष्ट्रीय उद्यानों और अन्य आश्रय स्थलों में अधिकारों के निपटारे व वन्य जीवन (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अन्तर्गत अन्य मुद्दों से संबंधित।

3.3.3. एक अन्य "कारण" जिसे नोट किए जाने की जरूरत है, सदियों पुरानी जनजातीय वन संबंधों में बाधा पहुंचना है। ऐतिहासिक रूप से, जनजातीय जीवन वनों के साथ उत्तम रूप से जुड़ा था, किन्तु विगत शताब्दी के दौरान विधानों और शासन ने, इस संबंध को बदल दिया। वन अधिनियम, 1927 और वन संरक्षण अधिनियम 1980 और साथ ही कठोर उच्चतम न्यायालय आदेशों की वजह से जनजातियों के लिए वन निषिद्ध क्षेत्र बन गए हैं। इससे जनजातियां वन प्रबंधन की सरकार की विधियों और धीरे-धीरे सरकार के ही विरूद्ध हो गए हैं। इस असंतोष ने, वन क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियों के बीच वाम उग्रवाद के प्रसार में सहायता की है। जनजातियों के भू-अधिकारों को गैर-जनजातियों को प्रचलित हस्तान्तरण व विधानों के जरिए, जैसे कि आन्ध्र प्रदेश भू-हस्तान्तरण विनियमन अधिनियम, 1970 केवल कागज पर है और इससे जनजातीय असंतोष में और वृद्धि हुई है । वस्तुतः आन्ध्र प्रदेश में यह धारणा

है कि राज्य सरकार और नक्सलियों के बीच हुई वार्ता भी प्रमुख रूप से इसलिए असफल रही क्योंकि नक्सलियों की मांग के अनुसार जनजातियों के बीच वन भूमि का बटवारा नहीं हो सका।

3.4 वाम उग्रवादी संघर्षों का समाधान – सफलताएं और असफलताएं

3.4.1 बहुत से वाम उग्रवादी आन्दोलनों का, विशेष रूप से नक्सलवादी के उत्थान का, सफलतापूर्वक समाधान हो सकता है। ऐसे क्षेत्रों में, विशेष रूप से नक्सलबाड़ी में वस्तुत: क्या हुआ इसके विश्लेषण से वाम उग्रवाद की वर्तमान समस्या का समाधान करने में आवश्यक जानकारी प्राप्त हो सकती है।[15]

3.4.2 1972 के बाद से, प. बंगाल सरकार ने नक्सल प्रभावित जिलों में अनेक सुधारात्मक उपाय किए। छोटे किसानों को इनपुट और ऋण मुहैय्या कराने के लिए एक विस्तृत क्षेत्र विकास कार्यक्रम (सी ए डी पी) प्रारंभ किया गया तथा सरकार ने उनके उत्पाद के विपणन की जिम्मेदारी सम्भाली। इस कार्यक्रम के लिए नक्सलवाडी और डाबरा को चुना गया जो सर्वाधिक नक्सल प्रभावित क्षेत्र थे। उसी समय, आन्ध्र प्रदेश में श्रीकाकुलम में और उड़ीसा में गंजाम में सरकारी अधिकारियों को यह सुनिश्चित करने के लिए निर्देश जारी किए गए कि गरीब जनजातियों द्वारा लिए गए ऋणों को रद्द कर दिया जाए और उसकी बजाए उन्हें कृषि सुधार के लिए बैंकों व अन्य स्त्रोतों से ऋण दिए गए । प. बंगाल में, 1977 में वाम मोर्चे की सरकार शासन में आने के बाद, बटाइकर्ताओं के अधिकार सुनिश्चित करने के लिए "आपरेशन बर्गा" शुरू किया गया। इसके साथ-साथ न्यूनतम मजदूरी में पर्याप्त वृद्धि की गई जिससे बड़ी संख्या में ग्रामीण गरीबों को लाभ पहुंचा। परिणामस्वरूप, इन सरकारी कार्यक्रमों से लाभान्वित व्यक्ति नक्सलवाद से दूर होने लगे तथा इस प्रक्रिया से इन क्षेत्रों में नक्सलवाद के अन्त की शुरूआत हो गई।

3.4.3 कर्नाटक के वाम उग्रवाद प्रभावित पावगडा तालुक का एक मामला अध्ययन बाक्स 3.2 में दिया गया है। अध्ययन से पता चलता है कि प्रशासन के एक बार शिथिल पड़ जाने तथा अपनी सक्रिय भूमिका से पीछे हटना प्रारंभ करने से वाम उग्रवाद उस क्षेत्र में फिर से उभरने लगा। इस अनुभव से महत्त्वपूर्ण पाठ सीखे जा सकते हैं - संघर्षमय स्थितियों का कोई "स्थायी उपचार" नहीं है तथा राहत प्रदान करने वाले उपायों में किसी ढील से संघर्ष पुन: कायम हो सकते हैं।

3.4.4 ऊपर बताई गई अपेक्षाकृत सफल कहानियों के विपरीत, वर्तमान छत्तीसगढ़ में स्थिति गम्भीर चिन्ता का विषय बनी हुई है। राज्य के बस्तर क्षेत्र में, जहा 12 ब्लाक गम्भीर रूप से प्रभावित हैं, इस बात का उदाहरण हैं कि किस प्रकार वाम उग्रवाद ने जड़ें जमा ली, क्योंकि अन्य बातों के साथ-साथ क्षेत्र की जनजातियों को वन आधारित रोजगार से वंचित कर दिया गया। प्रारंभ में, बस्तर के वनों का उपयोग आन्ध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के उग्रवादियों द्वारा एक अस्थाई आश्रय के रूप में किया जाना था,

[15] ऐसा एक विश्लेषण सुमन्त बनर्जी के "बियोण्ड नक्सलबाडी" में किया गया है।

बाद में स्थायी प्रशिक्षण शिविर स्थापित हो गए। स्थानीय जनजातियों की सक्रिय भागीदारी बहुत बाद में शुरू हुई जबकि उनकी आजीविका पर दबाव और जोर पड़ा। खाद्य असुरक्षा में उनमें निराशा बढ़ गई। स्थानीय प्रतिरोध दलों, नामतः "सलवा जुडुम" शुरू किया गया था और जिसका अब छत्तीसगढ़ के ग्यारह ब्लाकों में विस्तार कर दिया गया है, को कायम करने से भी मदद नहीं मिली है। यद्यपि, "सलवा जुडुम" को उग्रवादियों के विरूद्ध जनसमूह की तुरत जाग्रति के रूप में बताया जाता है तथापि वर्तमान में हजारों जनजातीय लोगों को किलेबन्द शिविर में संरक्षण प्रदान किया जा रहा है जो उस अव्यवस्थित जीवन का संकेत है जिसे बिताने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ रहा है। इन शिविरों पर उग्रवादियों द्वारा हमले किए गए हैं जिनकी वजह से बहुत सी मौंते हुई हैं। इस प्रक्रिया में, गरीब जनजातीय लोग राज्य की वैध प्रभुता-सम्पन्न शक्ति और उग्रवादियों की अवैध दमनकारी शक्ति के बीच फंस गए हैं जो जन अदालतों व अन्य अनौपचारिक साधनों के जरिए तुरंत न्याय प्रदान करते हैं।

3.2 पावगडा, कर्नाटक में नक्सलवाद

एक मामला अध्ययन

पावगडा, कर्नाटक में एक पिछड़ा क्षेत्र है। इस क्षेत्र की आबादी 2,46,255 है। चार होबलियों में से (एक तालुका को अनेक होबलियों में विभाजित किया जाता है) केवल एक नागलामडिके होबली नक्सली आन्दोलन से प्रभावित है। पावगडा में नक्सली संघर्ष 1969 से चल रहे हैं। मार्क्सवादी लेनिनवादी पार्टी के उत्थान के साथ यह आन्दोलन शुरू हुआ जिसे कृषक वर्ग के शोषण के कारण राजनीतिक महत्त्व मिला।

तनाव बढ़ने के साथ-साथ, कर्नाटक सरकार ने किसानों, विशेष रूप से अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के कल्याण के लिए अनेक उपाय कार्यान्वित किए। तथापि, इसके बावजूद, स्थानीय निवासियों ने अनुभव किया कि क्षेत्र के विकास के लिए आवंटित राशि को कुछ राजनीतिक नेताओं द्वारा हड़प लिया जाता है। परिणामस्वरूप, नक्सली दर्शन ने गति पकड़ ली तथा नक्सली नेता वस्तुतः एक समानान्तर सरकार चलाने लगे। सरकार ने कर्नाटक राज्य रिजर्व पुलिस तैनात करके सुरक्षा उपायों को भी और मजबूत किया। होने वाली हिंसा में राज्य पुलिस के कुछेक सदस्य मारे गए। नक्सलियों ने दावा किया कि ये हत्याएं उनके एक नेता की हत्या का बदला था।

अगले चरण में, विश्वास किया जाता है कि नक्सली नेताओं ने धन उगाहना और आधुनिकतम शस्त्रों के उपयोग के जरिए लोगों को डराना धमकाना शुरू कर दिया। बाद में, सरकार ने और अधिक विकास कार्यकलाप आयोजित करने का प्रयास किया, जैसे कि गरीबों के लिए मकान बनाना। किन्तु स्थानीय लोगों ने शिकायत कि कि ठेका देने में भाई-भतीजावाद शामिल था और इस प्रकार कार्यों को रोक दिया गया।

इस समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए जाते हैं :

1) क्षेत्र की समस्याओं को समझने के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण के साथ उपयुक्त अधिकारियों की नियुक्ति।
2) कानून की व्यवस्था को पुनः कायम करना।
3) स्थानीय कृषि-आधारित उद्योगों का विकास।
4) आन्दोलन का परित्याग करने वालों के लिए समुचित पुनर्वास नीति।

(मामला अध्ययन, कर्नाटक विश्वविद्यालय, हाम्पी द्वारा आयोजित किया गया था)

3.4.5 प. बंगाल माडल लागू करते हुए तथा पावगडा में किए गए प्रयोग को इस समय वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित क्षेत्रों में, जैसे कि छत्तीसगढ़ में लागू करने का एक ऐसा मामला है जिस पर सावधानीपूर्वक विचार करने की जरूरत है। यह स्पष्ट है कि विकास और कल्याण उपायों के एक विवेकपूर्ण मिश्रण और साथ ही भू-सुधारों व सुनियोजित विद्रोह-रोधी प्रचालनों की जरूरत है जिससे विश्वास बहाल हो सके। इसलिए यह एक संतोष की बात है कि इस दृष्टिकोण को अब व्यापक रूप से समर्थन मिल रहा है। उदाहरण के लिए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू पी ए) के "साझा न्यूनतम कार्यक्रम" (सी एम पी) में इस समस्या की बहु-आयामीय प्रकृति को समझा गया। "सी एम पी" में स्वीकार की गई स्थिति के आधार पर, इस स्थिति से निपटने के लिए एक "14 सूत्री नीति" केन्द्रीय गृह मंत्री द्वारा 13 मार्च 2006 को संसद में प्रस्तुत की गई थी। इस नीति में, इस मुद्दे से राजनीतिक, सामाजिक, विकासात्मक और प्रशासनिक स्तरों पर निपटने के लिए किए जाने वाले उपायों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार, हिंसक वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित राज्यों के मुख्य मंत्रियों की 13 अप्रैल 2006 को एक बैठक को सम्बोधित करते हुए प्रधान मंत्री ने जोर दिया था कि, *"तथापि, हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि नक्सलवाद मात्र एक कानून और व्यवस्था का मुद्दा नहीं है। बहुत से क्षेत्रों में नक्सलवाद का लक्षण सीधे ही अल्प विकास से जुड़ा है। यह एक संयोग नहीं है कि जनजातीय क्षेत्र आज वाम मार्ग उग्रवाद की मुख्य युद्ध भूमि है। जनजातीय क्षेत्र का एक बहुत बड़ा भाग वाम मार्ग उग्रवादियों का गढ़ बना गया है। शोषण, कृत्रिम रूप से संकुचित मजदूरी, विकृत सामाजिक-राजनीतिक हालात, अपर्याप्त रोजगार अवसर, संसाधनों तक पहुंच का अभाव, अल्प विकसित कृषि, भौगोलिक पृथक्करण, भू-सुधारों का अभाव - ये सभी नक्सलवादी आन्दोलन के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देते हैं। नक्सलवाद की चुनौती का सामना करने के लिए तैयार किए जाने वाले समाधानों में इन सभी कारकों को ध्यान में रखना होगा।"*[16] आयोग को यह नोट करते हुए संतोष है कि अब एक आम सहमति बनी है कि हिंसक वाम उग्रवाद को केवल कानून और व्यवस्था की समस्या के रूप में न समझा जाए बल्कि एक बहु-कारक विकृति समझा जाए तथा कानून और व्यवस्था के उल्लंघन को इसका "श्रेणी" (रैंकिंग) लक्षण समझा जाए। संक्षेप में, वाम उग्रवादी हिंसा के प्रबंधन के लिए सरकार तथा सिविल सोसायटी के सभी घटकों की क्षमता का उपयोग करने की जरूरत होगी, जैसा कि इस अध्याय में आगे चर्चा की गई है।

3.5 वाम उग्रवाद का प्रबंधन –राजनीति प्रतिमान

3.5.1 पिछले पैराग्राफ में उल्लिखित "14 सूत्री नीति" में ठीक ही वाम उग्रवाद को एक ऐसे परिप्रेक्ष्य में संदर्भित करने पर बल दिया गया है जो पारम्परिक बुद्धि से कहीं ज्यादा व्यापक है, जिसके अन्तर्गत मिलिटेंट उग्रवाद के स्थान पर, विशेष रूप से वाम किस्म के स्थान पर सर्वरोगहर के रूप में "पुलिस कठोरता और विकास छड़ी" के एक मिश्रण पर बल दिया गया है। इस बात पर बल देने की जरूरत है कि

[16] नक्सलवाद पर मुख्य मंत्रियों की 13 अप्रैल 2006 को नई दिल्ली में बैठक में प्रधान मंत्री का भाषण

यद्यपि वाम उग्रवाद आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य राज्य में शासन में आना है तथापि इसका तात्कालिक मार्ग सामाजिक न्याय, .. समानता, सम्मान और सार्वजनिक सेवाओं में ईमानदारी के लिए संघर्ष करने के रूप में है। इस दृष्टि से देखने पर विस्तृत क्षेत्र में आन्दोलन के फैलने से यह तथ्य उजागर होता है कि उन स्थितियों को हल करने से प्रयास जिनकी वजह से हिंसक वाम उग्रवाद की विचारधारा को मान्यता मिलती है, विशेष रूप से सफल नहीं हुए हैं। ऐसी स्थितियों में इस आन्दोलन को राज्य की सुरक्षा के लिए एक खतरे के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए बल्कि राज्य के अन्दर ही उस संघर्ष के रूप में देखा जाना चाहिए कि पद्धति के अन्तर्गत जो वायदा किया गया था वह पूरा नहीं हुआ। उस दृष्टि से ऐसे समूहों के साथ बातचीत करने के लिए हमेशा ही दरवाजा खुला रहना चाहिए तथा हथियार डालने की पूर्व शर्त पर बल नहीं दिया जाना चाहिए। इसलिए यह उचित ही होगा कि ऐसा रूख अपनाया जाए कि यद्यपि आन्दोलन के बड़े कानूनी और व्यवस्था संबंधी आयाम हैं तथापि यह विशुद्धतः कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं है। "पाद सैनिकों" की हिंसक गतिविधियां, वैचारिक दृष्टि से अड़ियल रूख वालों के विपरीत, इस तथ्य के कारण हो सकती हैं कि अपनी कठिनाईयों को अ-हिंसक, प्रजातान्त्रिक विधियों से दूर कराने के उनके प्रयासों पर समुचित रूप से ध्यान नहीं दिया गया हो। पुलिस बलों का उपयोग करने का आकर्षण अत्यधिक हो सकता है किन्तु यह याद रखा जाना चाहिए कि गैर-जवाबदेह पुलिस कार्रवाई और पुलिस शक्ति का दुरूपयोग हिंसा को उन लोगों के बीच भी वैध बना देता है जो अब तक इनमें सम्मिलित नहीं थे।

3.5.2 संक्षेप में, वाम उग्रवाद, सामान्य और विकास प्रशासन की सतत और गम्भीर कमियों पर फलता-फूलता है, जिसके फलस्वरूप भूमि, खाद्य, पानी और वैयक्तिक सुरक्षा, साम्यता, जातिगत/सांस्कृतिक पहचान आदि से संबंधित क्षेत्रों में गरीबों की जरूरतों को पूरा करने में सरकार की असफलता प्रदर्शित होती है। यदि इस निदान को स्वीकार कर लिया जाए तो समाधान को "नियंत्रित" करने के अन्तर्गत निम्नलिखितों पर विचार किए जाने की जरूरत है:

- वाम उग्रवाद संगठनों के झण्डे तले की जाने वाली हिंसा में अधिकतर "प्रतिभागी" समाज से दूर रहने वाले वर्गों से संबंधित होते हैं न कि "राजद्रोह" में सम्मिलित लोग -उन्हें ऐसा ही समझा जाना चाहिए।
- लम्बी अवधि तक एक लगातार पुलिस कार्रवाई का उलटा प्रभाव हो सकता है, सम्भव है कि इसका प्रभाव उग्रवादियों की बजाए अबोध लोगों पर अधिक पड़े।
- इन हालातों में बातचीत की निश्चय ही एक समाधानजनक भूमिका हो सकती है, विश्व भर का यही अनुभव है।
- सामाजिक न्याय के लिए कानूनों और कार्यक्रमों का निष्पक्ष, ईमानदारीपूर्वक और न्यायोचित कार्यान्वयन, समाज के प्रभावित लोगों के बीच नाराजगी के मूल कारणों को दूर करने में काफी सहायक होगा।

- स्थानीय स्थितियों के लिए उपयुक्त संधारणीय, व्यावसायिक रूप से सुदृढ और ईमानदारीपूर्ण विकास उपाय और साथ ही विवाद समाधान की प्रजातान्त्रिक पद्धतियाँ अधिक सफल सिद्ध हो सकती हैं।

3.5.3 "नियंत्रण" की ऐसी कार्यनीति को वास्तविक रूप देने के लिए राज्य तथा सिविल सोसायटी के तंत्र के अन्दर चहुंमुखी क्षमता निर्माण, प्रयासों में ईमानदारी व कर्मठता और एक जवाबदेह व पारदर्शी प्रशासन की जरूरत होगी जैसाकि आगामी खण्डों में चर्चा की गई है।

3.6 हिंसक वाम उग्रवाद से निपटने के लिए क्षमता निर्माण

3.6.1 वाम उग्रवाद द्वारा उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए विभिन्न साधनों और राज्य व सिविल सोसायटी के घटकों का इस्तेमाल करने की जरूरत है। इसे प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे साधनों और घटकों की क्षमताओं में उपयुक्त रूप से वृद्धि की जाए। इन पर निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत विचार किया जा सकता है:

i) सुरक्षा बल
ii) प्रशासनिक संस्थान
iii) सरकारी कार्मिक
iv) स्थानीय निकाय
v) सिविल सोसायटी संगठन

3.6.2 सुरक्षा बलों (पुलिस सहित) का क्षमता निर्माण

3.6.2.1 "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवी रिपोर्ट में आयोग ने, पुलिस सुधारों के संबंध में संगत विभिन्न मुद्दों पर विस्तारपूर्वक

3.3 नक्सली उत्पात से निपटने के लिए सरकारी नीति

i) सरकार, हिंसा में लिप्त होने वाले नक्सलियों के साथ कठोरता से निपटेगी।

ii) इस बात को देखते हुए कि नक्सलवाद एक कानून और व्यवस्था समस्या नहीं है, सरकार की नीति इस समस्या से निपटने के लिए एक व्यापक ढंग से राजनीतिक सुरक्षा, विकास और सार्वजनिक बोध प्रबंधन मोर्चों पर भी साथ-साथ कार्रवाई करने की होगी।

iii) नक्सलवाद एक अन्तर-राज्य समस्या होने के नाते, राज्य एक सामूहिक दृष्टिकोण अपनाएगें तथा इसका मुकाबला करने के लिए एक समन्वित कार्रवाई करेंगे।

iv) राज्यों द्वारा, पुलिस प्रतिक्रिया में और सुधार करने तथा नक्सलवादियों और उनके आधारिक ढाँचे के खिलाफ अलग-अलग व संयुक्त रूप से एक प्रभावी और लगातार पुलिस कार्रवाई करने की जरूरत है।

v) प्रभावित राज्यों द्वारा नक्सली समूहों के साथ कोई शान्ति वार्ता नहीं की जाएगी जब तक कि वे हिंसा और शस्त्र का त्याग न करें।

vi) राजनीतिक दलों द्वारा नक्सली प्रभावित इलाकों में अपने संवर्ग आधार को मजबूत बनाना चाहिए जिससे कि सक्षम युवाओं को नक्सली विचारधारा के मार्ग से अलग किया जा सके।

vii) उन राज्यों द्वारा, जहाँ से नक्सली गतिविधि/प्रभाव की, और न कि, नक्सली हिंसा की, रिपोर्ट प्राप्त हो, पिछड़े क्षेत्रों के त्वरित समाजार्थिक विकास पर विशेष बल के साथ एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए तथा एन जी ओ, बुद्धिजीवियों, नागरिक आजादी समूहों आदि के साथ नियमित रूप से अन्योन्यक्रिया की जानी चाहिए ताकि नक्सली विचारधारा और गतिविधि के लिए आधारीय सहायता कम से कम हो सके।

viii) नक्सलियों के विरूद्ध स्थानीय प्रतिरोध समूहों को प्रोत्साहित करने के लिए प्रयास जारी रहेंगे किन्तु ऐसे ढंग से ग्राम जातियों को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाए और क्षेत्र में सुरक्षा बलों का प्रभावी प्रमुत्त्व कायम किया जाए।

ix) नक्सली हिंसा की व्यर्थता और इसके कारण जान व माल के नुकसान तथा प्रभावित क्षेत्रों में सरकार की विकास

विचार किया है तथा इस विषय पर बड़ी संख्या में विशिष्ट सिफारिशें की हैं इसलिए, आयोग इस विषय पर केवल संक्षेप में विचार करेगा और निम्नलिखित पहलुओं की ओर ध्यान आकर्षित करता है:

(क) जहां हिंसा प्रत्यक्ष, बारम्बार हो, वहाँ उग्रवाद का समाधान केवल बातचीत के जरिए नहीं हो सकता। यद्यपि, स्थिति से निपटने के लिए राजनीतिक और अन्य पुलिस भिन्न पद्धतियों पर बाद में विचार किया जाएगा, तथापि यह स्पष्ट है कि "वार्ता" और "समायोजन" को, सरकार के इरादे उत्तम होने पर आसानी से स्वीकार किया जा सकता है और इससे सम्वर्ती रूप से दृश्य व्यवस्था बहाल हो सकती है। इस प्रकार, पुलिस पद्धतियों की सीमाओं के अध्यधीन सुरक्षा बलों की स्थिति से निपटने में एक समर्थनकारी किन्तु अनिवार्य भूमिका है। इसके लिए उपयुक्त कानूनी और अभिप्रेरक सहायता और सुरक्षा बलों की प्रभावी तैनाती की जरूरत होगी।

स्कीमों के बारे में जन संचार साधनों का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि सरकारी तंत्र में लोगों का भरोसा और विश्वास बहाल हो सके।

x) राज्यों को नक्सल प्रभावित जिलों के लिए एक उपयुक्त अन्तरण नीति घोषित करनी चाहिए। नक्सल प्रभावित जिलों में एक स्थिर कार्यावधि के साथ, इच्छुक, प्रतिबद्ध और सक्षम अधिकारी तैनात किए जाने की जरूरत है। इन अधिकारियों को बेहतर ढंग से प्रदर्शन करने तथा इन क्षेत्रों में सरकार की उपस्थिति में वृद्धि करने के लिए अधिक अधिकार और ढील दिए जाने की जरूरत है।

xi) आन्ध्र प्रदेश सरकार की नक्सलियों के लिए एक प्रभावी समर्पण व पुनर्वास नीति है और पिछले वर्षों के दौरान इसके अच्छे परिणाम रहे हैं। अन्य राज्यों को भी ऐसी ही नीति अपनानी चाहिए।

xii) राज्य सरकारों द्वारा अपनी वार्षिक योजनाओं में उच्च प्राथमिकता प्रदान किए जाने की जरूरत है ताकि नक्सल प्रभावित क्षेत्रों का तीव्र समाजार्थिक विकास निश्चित हो सके। इन क्षेत्रों में भू-सुधारों के तीव्र कार्यान्वयन के एक भाग के रूप में भूमिहीन किसानों को भूमि वितरित करने, सड़कों, संचार, बिजली आदि जैसी भौतिक अवस्थापना का विकास सुनिश्चित करने और युवाओं को रोजगार अवसर प्रदान करने पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए।

xiii) एक अन्य सम्बद्ध मुद्दा यह है कि कुछेक नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में मुख्यत: नक्सली काडरों द्वारा जबरन वसूली, भय अथवा धमकी के कारण विकास कार्यकलाप आयोजित नहीं किए जाते हैं। इन क्षेत्रों में ठेकेदार भी विकास कार्य करने के लिए तैयार नहीं होते। नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में अबाध विकास कार्यकलाप सुकर बनाने के वास्ते पर्याप्त सुरक्षा व अन्य उपाय किए जाने की जरूरत है।

xiv) केन्द्रीय सरकार, सुरक्षा और विकास दोनों मोर्चों पर प्रभावित राज्यों के प्रयासों और संसाधनों को पूरक बनाना जारी रखेगी तथा समस्या का समाधान करने के लिए राज्यों के बीच अधिक समन्वय कायम करेगी।

स्त्रोत: गृह मंत्रालय की वेबसाइट http://www.mha.nic.in/Security/N.M.Division.pdf

(ख) एक संतोषजनक कानून और व्यवस्था भी विकास के लिए एक अनिवार्य पूर्व-शर्त है। विकास के साथ-साथ अशांत क्षेत्रों में शान्ति बनाए रखने के लिए अनिवार्य होने के बावजूद, सुरक्षा बलों द्वारा कठोर कार्रवाई की जानी चाहिए, जिसमें विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार कार्मिकों को संरक्षण प्रदान भी करना भी शामिल है। गम्भीर रूप से अशांत

क्षेत्रों में, जहां विकास कार्य में लगी एजेन्सियों के लिए काम करना कठिन हो, वहाँ कुछ विकास कार्यों को अस्थाई रूप से सुरक्षा बलों को सौंपने पर विचार किया जा सकता है। इस साधन का प. बंगाल में सफलतापूर्वक प्रशिक्षण किया गया जहाँ स्थानीय पुलिस ने यह सुनिश्चित करने में मदद की कि स्वास्थ्य संस्थान और स्कूल प्रभावी ढंग से कार्य करें।

(ग) यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि सर्वाधिक कठिन और कठोर स्थितियों में भी सुरक्षा बलों का प्रचालन कठोरत: कानून के ढाँचे के अन्तर्गत होना चाहिए। प्रभावी ढंग से और पक्की तौर पर, किन्तु संवैधानिक सीमाओं के अन्दर कार्य करने के लिए सुरक्षा बलों की क्षमता में वृद्धि करने के लिए यह आवश्यक है कि विशिष्ट रूप में और विस्तारपूर्वक मानक प्रचालनात्मक प्रक्रियाएं और प्रोटोकोल निर्धारित किए जाएं।

(घ) पुलिस और अर्ध सैनिक बलों को, जिस असंतोष पर काबू पाने के लिए उन्हें तैनात किया जा रहा है, उसके प्रति उन्हें संवेदी बनाने के साथ-साथ, उनके प्रशिक्षण और अनुस्थापन पर और अधिक विस्तारपूर्वक बताने की जरूरत नहीं है।

(ड.) आन्ध्र प्रदेश में "ग्रेहाउण्डों" की तरह विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित विशेष कार्य बलों का गठन करना भी, वाम उग्रवाद से निपटने के लिए पुलिस तंत्र में क्षमता निर्माण के लिए कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण तत्व है।

(च) प्रभावित क्षेत्रों के बाहर से बड़े पैमाने पर बलों की तैनाती के बावजूद, विभिन्न प्रकार की उग्रवादी हिंसा से निपटने के अनुभव से पता चलता है कि प्रमुख रूप से स्थानीय लोगों को मिलाकर पुलिस बल स्थिति से निपटने में अत्यत मूल्यवान होता है। स्थानीय लोगों के साथ अपनी सतत अन्योन्यक्रिया के कारण स्थानीय पुलिस बलों को आसूचना एकत्र करने की उनकी क्षमता में अपार लाभ होता है। लागत की दृष्टि से भी, केन्द्रीय बलों को तैनात करने की बजाए स्थानीय पुलिस स्टेशन को सुदृढ़ करना दीर्घावधि में अधिक किफायती और व्यवहार्य होता है। वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित क्षेत्रों में सामान्यत: अन्तर्निहित समूहों से - मुख्यत: जनजातियों से - प्रतिनिधित्व, अपर्याप्त है। संगत क्षेत्रों से निर्धारित आरक्षणों को स्पष्ट रूप से लागू करना, पुलिस और कानून तथा व्यवस्था एजेन्सियों में विद्यमान रिक्तियों को भरना, विशेष भर्ती अभियान आयोजित करके केन्द्रीय व राज्य पुलिस बलों में तैनाती करके तथा सशस्त्र पुलिस में जनजातीय बटालियनों का गठन करके रोजगार सृजन और स्थानीय युवाओं को विशेष पुलिस अधिकारियों (एस पी ओ) के रूप में भर्ती करना कुछ उपाय हैं जिनपर तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

3.6.3 प्रशासनिक पद्धतियों का क्षमता निर्माण

3.6.3.1 "सार्वजनिक व्यवस्था" और "स्थानीय अधिशासन" पर अपनी रिपोर्टों में आयोग ने, सेवाएं प्रदान करने की कोटि में सुधार करने के लिए, अलग-अलग के साथ-साथ, संस्थागत क्षमता का निर्माण करने

की जरूरत पर भी विस्तारपूर्वक चर्चा की है। वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित देश के क्षेत्रों में प्रशासनिक रिक्ति को भरना अत्यंत महत्वपूर्ण है। संस्थागत क्षमता के अन्तर्गत न केवल संगठन सम्मिलित हैं बल्कि वह कानूनी ढॉचा और मानदण्ड भी सम्मिलित है जिनके अन्तर्गत सेवाएं प्रदान की जानी हैं। वाम उग्रवाद के संदर्भ में जनजातियों के जीवन और आजीविका को प्रभावित करने वाले कानूनों का और अधिक सुचारू ढंग कार्यान्वयन तथा प्रदाय संस्थानों को और अधिक कारगरता के साथ सुदृढ़ करना व परानुभूति जैसे मामले विशेष प्रासंगिक मुद्दे हैं।

3.6.3.2 जनजातियों के जीवन में वनों के अत्यंत महत्व के बारे में तथा इस वर्ग के बीच असंतोष पैदा करने में उनके पारम्परिक अधिकारों की समाप्ति द्वारा निभाई गई भूमिका का ऊपर उल्लेख किया गया है जिसकी वजह से वाम उग्रवाद को समर्थन प्राप्त हुआ। हाल ही में अधिनियमित अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वन वासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006 एक स्वागत- योग्य कदम है जिसका उद्देश्य जनजातीय इलाकों में वाम उग्रवाद को समर्थन प्रदान करने के प्रमुख कारकों से निपटने के लिए संस्थागत क्षमता में वृद्धि करना है। इसके तहत प्रति वन वासी अनुसूचित जनजाति (एफ डी एस टी) न्युक्लीयर परिवार को चार हेक्टेयतर तक के भू-अधिकार प्रदान किए गए हैं बशर्तें कि वे चार पीढ़ियों तक अथवा "कट आफ" तारीख अर्थात 13 दिसम्बर 2005 से पहले 75 वर्षों तक वन भूमि के "उपभोक्ता" रहे हों । यह अधिकार दाययोग्य है किन्तु अन्य - संक्राम्य और हस्तान्तरणीय नहीं है। सौंपी गई भूमि का उपयोग केवल आजीविका प्रयोजनों हेतु किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत लघु वन उत्पाद तक पहुँच, बौद्धिक सम्पदा तक सामुदायिक अधिकार और वन जैव - विविधता व सांस्कृतिक विविधता से सम्बद्ध पारम्परिक ज्ञान भी सम्मिलित है। निवासियों का यह कर्त्तव्य है कि वे क्षेत्र के वनों, जैव-विविधता और वन्य जीवन की सुरक्षा करेंगे। अधिनियम के प्रावधानों पर कारगर ढंग से अमल किए जाने पर जनजातियों की समस्याओं का समाधान करने में बहुत मदद मिलेगी। यह भी आवश्यक है कि इसके कार्यान्वयन का मानीटरन करने के लिए एक "निगरानी समिति" गठित की जाए जिसमें जनजातीय लोग, वन संरक्षण और वन्य जीवन के प्रति प्रतिबद्ध व्यक्ति तथा वे लोग सम्मिलित हों जो इन कारकों के प्रति सामाजिक रूप से सही ढंग से प्रतिबद्ध हों।

3.6.3.3. संकुचित मजदूरी और अपर्याप्त रोजगार अवसरों का उल्लेख पहले ही जनजातीय असंतोष के लिए किया जा चुका है। प्रांरभ में देश के सर्वाधिक पिछड़े 200 जिलों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी स्कीम का लागू किया जाना इन कारणवाचक कारकों से निपटने के लिए एक बड़ी संस्थागत नूतनता है। इन 200 जिलों में से 64 जिले वाम उग्रवाद से गम्भीर रूप से प्रभावित हैं। इन 200 पिछड़े जिलों में विषमताओं और स्थानिक आयामों की बाधाओं को देखते हुए, स्कीम का कार्यान्वयन एक कठिन और चुनौतीपूर्ण कार्य है। आयोग ने, एन आर ई जी ए के कार्यान्वयन संबंधी अपनी रिपोर्ट में इन जिलों में

स्कीम का कारगर कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए पहले ही कुछेक उपायों की सिफारिश की है। इन उपायों से, यदि उन्हें कार्यान्वित किया जाए, अपर्याप्त रोजगार अवसरों और संकुचित मजदूरी दोनों ही समस्याओं का समाधान होगा।

3.6.3.4 इसी प्रकार संबंधित विभागों के अन्दर, विशेष रूप से मार्जिनकृत समूहों की विशिष्ट जरूरतों से निपटने के लिए उपयुक्त प्रबंधकीय पद्धतियाँ लागू करके जनजातीय क्षेत्रों में उनके क्षेत्र संरचनाओं के अन्दर संस्थागत क्षमता को मजबूत बनाने व क्षेत्र विशिष्ट जरूरतों को पूरा करने के लिए अर्हता-प्राप्त कार्मिकों की तैनाती करने की जरूरत है। राज्य स्तर पर, उपयुक्त संस्थागत प्रणालियां कायम करके वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित पिछड़े क्षेत्रों के लिए विकास कार्यक्रमों के अभिसरण की दिशा में एक समन्वित दृष्टिकोण पर विचार किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश में, प्रधान सचिव, दूरवर्ती और आन्तरिक क्षेत्र विकास (आर आई ए डी) विभाग, समस्याओं का पता लगाने तथा भेद्य समूहों और क्षेत्रों की विकास जरूरतों को एक समन्वित व व्यापक ढंग से पूरा करने के लिए उपाय सुझाने के वास्ते एक ऐसी पद्धति के प्रधान हैं। विकास स्कीमों के मानदण्ड लागू करने में, विशेष रूप से जहां ग्राम अथवा बस्ती, कार्यान्वयन की एक इकाई है, जनजातीय बस्तियों की बिखरी प्रकृति और प्रायः बहुत कम आबादी के कारण कठिनाइयाँ पैदा होती हैं। ऐसे क्षेत्रों में केन्द्र प्रायोजित व अन्य विकास स्कीमों के कार्यान्वयन में कहीं अधिक नम्यता प्रदान किए जाने का मामला बनता है जिसका उत्तर विकेन्द्रीयकरण प्रतीत होता है। खाद्य असुरक्षा और राज्य के साथ अविरक्ति के बीच गठजोड़ को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अ-कार्यरत सार्वजनिक वितरण पद्धति को, निजी मिल्कियत वाली उचित दर की दूकानों के स्थान पर एल ए एम पी (वृहद क्षेत्र बहुप्रयोजन सहकारी सोसायटियां) जैसे संगठनों को सुदृढ़ करके, पुनरूज्जीवित किया जाए तथा खाद्यान्नों आदि की वसूली व वितरण हेतु विकेन्द्रीकृत स्कीमों को कार्यान्वित करना आवश्यक है।

3.6.3.5 इसी प्रकार, प्रशासनिक और न्यायिक प्रणाली में नम्यता लागू की जानी चाहिए जिससे कि स्थानीय स्तर पर विवाद निपटान सामयिक और प्रभावी हो। स्थानीय मुद्दों से प्रभावी ढंग से निपटने के लिए स्थानीय न्यायालयों की व्यवस्था करने तथा राजस्व व विकास विभागों के अधिकारियों को न्यायिक व मजिस्टीरियल अधिकार प्रदान करने पर भी विचार किया जा सकता है।

3.6.3.6 उपरोक्त कुछेक सौदाहरण मामले हैं जिनके लिए संस्थागत क्षमता निर्माण, नूतनता व प्रबंधकीय युक्तिकरण की आवश्यकता है। वाम उग्रवाद तथा अन्य स्थानिक असंतोष को दूर करने के लिए, जो जनता के असंतोष की वजह से पनपता है, पुलिस, विकास और विनियामक एजेन्सियों द्वारा मिले-जुले प्रयासों की जरूरत है। वाम उग्रवाद के इतिहास का गहराई से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि संविधान के प्रावधानों और कानूनों व पहले से सरकार द्वारा अपनाई गई नीतियों को कारगर ढंग से

कार्यान्वित करने और साथ ही उग्रवादियों के समर्थन आधार को समाप्त करने के लिए सेवाएं सुचारू रूप से प्रदान किए जाने की जरूरत है।

3.6.4 सरकारी कार्मिकों के बीच क्षमता निर्माण

3.6.4.1 जनजातीय क्षेत्रों में कार्मिक प्रबंधन प्रशासन का एक उपेक्षित पहलू रहा है। ऐसे क्षेत्रों में नियुक्ति और तैनाती को अधिकारियों द्वारा एक सजा समझा जाता है जो आधे मन से काम करते हैं अथवा लम्बी अवधि तक अपने डयूटी के स्थान से अनुपस्थित रहते हैं। इससे इस जरूरत का पता चलता है कि राज्य में, तकनीकी सेवाओं सहित ऐसे अधिकारियों का पता लगाया जाए जो इन क्षेत्रों में तैनाती को एक चुनौतीपूर्ण तथा संतोषप्रदानकर्ता अनुभव समझे तथा इन क्षेत्रों के लोगों की समस्याओं को समझने में परानुभूति व संवेदनशीलता बरतें तथा उनका समाधान करने में भूमिका निभाने की प्रतिबद्धता महसूस करें। राज्य सरकारों द्वारा ऐसी अधिकारियों को, एल बी एस राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी जैसे राष्ट्र स्तरीय संस्थाओं में प्रशिक्षण प्राप्त करने का लाभ प्रदान किया जाना चाहिए ताकि उन्हें जनजातीय क्षेत्रों में सेवा करने के लिए व्यावसायिक रूप से सज्जित किया जा सके। उसके बाद ऐसे अधिकारी इन क्षेत्रों के विकास और वहाँ के नागरिकों के कल्याण के लिए सार्वजनिक नीतियाँ, कार्यनीतियाँ और स्कीमें तैयार करने में अपने प्रशिक्षण और अनूठे अनुभव का उपयोग कर सकते हैं। प्रोत्साहन के रूप में यह जरूरी होगा कि इन अधिकारियों को बेहतर परिलब्धियों, उनकी सेवाओं के सम्मान और रिहायशी आवास के प्रतिधारण व उनके बच्चों की राज्य मुख्यालय में शिक्षा, यदि ऐसी इच्छा व्यक्त की जाए, के माध्यम से पुरस्कृत किया जाए। एक ऐसी राष्ट्रीय नीति की जरूरत है जिससे अधिकारियों द्वारा ऐसे क्षेत्रों में कठिन स्थितियों में सेवा करने का स्वमेव चयन करने वाले अधिकारियों के लिए इसे आकर्षक बनाने के वास्ते अपेक्षित अतिरिक्त संसाधनों हेतु राज्य सरकारों की प्रतिपूर्ति की जा सके।

3.6.4.2 यद्यपि जनजातीय क्षेत्रों में गैर-जनजातीय कार्मिकों की प्रतिशतता के संबंध में पक्के आंकड़े तत्काल उपलब्ध नहीं हैं, तथापि प्रतीत होता है कि पर्यवेक्षी स्तर पर और तकनीकी कार्मिकों के बीच गैर-जनजातीय लोगों की बहुलता है। यह भी सर्वविदित है कि जनजातीय क्षेत्र में (गैर-जनजातीय द्वारा) सेवा एक बाध्यता है, अर्थात केवल ऐसे समय तक जब तक कि गैर-जनजातीय क्षेत्रों में तैनाती अथवा वैकल्पिक पद उपलब्ध न हो। ऐसी परिस्थितियों में यह आश्चर्यजनक नहीं है कि ऐसे क्षेत्रों में अनुपस्थिति, डयुटी की अवहेलना और घटिया कार्य मानक मानदण्ड होते हैं और इससे बदले में स्थानीय लोगों में विरक्ति की भावना पैदा होती है। असम सरकार द्वारा बोडोलेण्ड क्षेत्रीय परिषद के अन्तर्गत क्षेत्रों के लिए तकनीकी विभागों के क्षेत्रीय संवर्ग का गठन जैसे किए गए उपाय स्थिति से निपटने के लिए एक सकारात्मक कदम है किन्तु ऐसे संवर्गों में "बाहरी लोगों" की बहुलता के कारण इच्छुक कार्मिकों की अपर्याप्त उपलब्धता की समस्या का पूर्णतः समाधान नहीं होता। पूर्वोत्तर क्षेत्र में सक्षम कार्मिकों को

बनाए रखने के संबंध में आयोग द्वारा इस रिपोर्ट के अध्याय 12 में दिए गए सुझावों को वर्तमान मामले में भी लागू किया जा सकता है। सरकारी कार्मिकों के बीच, विशेष रूप से "समस्याग्रस्त क्षेत्रों" में कार्यरत कार्मिकों के बीच उच्च मात्रा में अभिप्रेरण बनाए रखने के बड़े मुददे पर, आयोग द्वारा "कार्मिक प्रशासन का पुनर्गठन" संबंधी अपनी रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

3.6.4.3 यह भी प्रतीत होता है कि कार्यों के निपटान में असहानुभूति, जिसके फलस्वरूप घटिया सेवाएं प्रदान की जाती हैं, प्रशासनिक और "संबंधित विभाग" के अधिकारियों द्वारा निगरानी कार्यों में ईमानदारी न बरतने का एक बड़ा कारण है। यद्यपि यह कुरीति बड़े पैमाने पर हो सकती है किन्तु वाम उग्रवाद से प्रभावित क्षेत्रों के संबंध में इसकी विशेष संगतता है। प्रशासनिक मानीटरन और पर्यवेक्षण के मामले में "बुनियादी सिद्धान्तों का पालन करने का" एक मजबूत मामला है। समय-समय पर अधिकारिक निरीक्षण करने और संगठनात्मक निष्पादन की समीक्षा करने की पद्धति को पुनरूज्जीवित करने की जरूरत है। यह समझा जाना चाहिए कि "अशान्त क्षेत्रों" में ऐसी प्रथाओं को त्याग दिए जाने का मुख्य कारण वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा डयुटी के समय उनकी वैयक्तिक सुरक्षा की आशंका का होना है। इसलिए सलाह है कि दौरे के समय वरिष्ठ प्रशासनिक और तकनीकी अधिकारियों की उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए और इस प्रकार गम्भीर हिंसा से प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस बलों की जरूरतों का आकलन करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

3.6.5 स्थानीय निकायों में क्षमता निर्माण

3.6.5.1 निचले स्तर पर अधिकारियों के अविश्वास और सेवाएं प्रदान करने में प्रशासनिक पद्धति की स्पष्ट अकार्यकुशलता के माहौल में एक प्रत्यक्ष समाधान, स्थानीय समस्याओं का निपटान सुकर बनाने के लिए स्थानीय स्व: शासी संस्थाओं को मजबूत बनाना है। इस प्रकार पंचायत(अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 के प्रावधानों का अधिनियमन, जिसे आमतौर पर "पेसा" के नाम से जाना जाता है, सामुदायिक मामलों का आधार स्तरीय प्रबंधन सुनिश्चित करने की एक स्वागत योग्य पहल है। यह अधिनियम, पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत क्षेत्रों पर लागू होता है जिसके अन्तर्गत संयोगवश हिंसक वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित बहुत से क्षेत्र सम्मिलित हैं। "पेसा" के अन्तर्गत गांव के "सामान्य निकाय" - ग्राम सभा- को ग्राम के मामलों के लिए केन्द्र-बिन्दु बनाया गया है। इसके अनुसार जल स्थलों, परती भूमियों और लघु वन उत्पाद आदि जैसी गांव की आम परिसम्पत्तियों को ग्राम समुदाय की सामूहिक मिल्कियत के अन्तर्गत लाया गया है जिसे विकास योजनाओं का कार्यान्वयन अनुमोदित करने व पंचायतों के निर्णयों का अनुसमर्थन करके अथवा अनुसमर्थन न करके उनके कार्यान्वयन का सत्यापन करने की शक्ति प्राप्त है। इसी प्रकार, समुदाय को गाँव की परम्पराओं, संस्कृति और पहचान का अभिरक्षक बनाया गया है और इस प्रकार यह ग्रामीण जीवन की विभिन्न पहलुओं के बारे में सर्वसम्मति कायम करने की स्थिति में

है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि "पेसा" के तहत प्रारंभ की गई नीतियों से ग्रामीण समुदाय के बीच भागीदारी और प्रयोजन की भावना पैदा करने में मदद मिलेगी - कोई ऐसी बात जिससे वे विध्वंसक गतिविधियों के प्रति कम आकर्षित होंगे। तथापि, समस्या यह है कि "पेसा" एक "संकेतात्मक विधान " है; इसमें कतिपय मार्गनिर्देश निर्धारित किए गए हैं जिनका कार्यान्वयन राज्यों द्वारा अपने पंचायती राज व अन्य अधिनियमों में विशिष्ट संशोधन (अथवा अनन्य विधान अधिनियमित करने) करने पर निर्भर करता है। यद्यपि बहुत से राज्यों ने "पेसा " में सुझाए अनुसार प्रारम्भिक कार्रवाई की है, तथापि एक सामान्य राय है कि इसका कार्यान्वयन कुल मिलाकर असंतोषजनक है। आयोग को उम्मीद है कि अपेक्षित विधायी कार्रवाई करने के अलावा राज्य सरकारों द्वारा इस बात का मानीटरन करने के लिए भी कि उसमें निर्धारित उद्देश्यों का पालन किया जाए, पद्धतियाँ कायम की जाएंगी। इस संबंध में निष्पादन को क्षेत्र विकास के लिए अबद्ध अनुदानों के आवंटन के साथ जोड़ना उपयोगी होगा।

3.6.5.2 यदि इस विचार से कि लोग अपने विकास में सक्रिय रूप से भाग लें, अधिक जन सन्तुष्टि कायम होती है और इस सन्तुष्टि को बनाए रखना है तो उन क्षेत्रों में सहकारी संस्थानों की मजबूती उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि एक जोरदार पंचायत पद्धति। अत्यंत रूप से नियंत्रित व अफसरशाही-सम्पन्न सहकारी संस्थानों में भ्रष्टाचार व अकार्यकुशलता, जनजातीय लोगों के बीच, विशेष रूप से लघु वन उत्पाद, हथकर्घा और हस्तशिल्प व मात्स्यिकी आदि से संबंधित आजीविका सम्बद्ध सोसायटियों में, असंतोष के बीज बोने के लिए नि:सन्देह रूप से जिम्मेदार है। बहुत से राज्यों द्वारा सहकारिताओं के संबंध में बाद में किए गए विधिक सुधारों से भी प्रभावित क्षेत्रों में सहकारिताओं की स्थिति बहाल करने में असफलता मिली क्योंकि जब तक सुधार लागू किए गए तब तक गम्भीर गड़बड़ियों ने इन संस्थानों को निष्क्रिय बना दिया था। "ट्राइफेड" जैसे शीर्ष स्तर संस्थान जनजातीय क्षेत्रों में सहकारिताओं को सही मार्गदर्शन और नेतृत्तव प्रदान करने में असफल रहे। अब समय है कि इन क्षेत्रों में सहकारी क्षेत्रक की जरूरतों पर "पेसा" की तरह ध्यान दिया जाए। आयोग, "सामाजिक पूंजी, विश्वास और भागीदारीपूर्ण सरकारी सेवा प्रदाय" पर अपनी रिपोर्ट में सहकारिताओं को मजबूत करने के लिए सिफारिशें करेगा।

3.6.6 सिविल सोसायटी संगठनों में क्षमता निर्माण

3.6.6.1 विवादास्पद स्थितियों में, विशेष रूप से वाम उग्रवाद के मामलों में, शान्ति कायम करने में सिविल सोसायटी संगठनों की भूमिका के बारे में भिन्न-भिन्न मत हैं क्योंकि बताया जाता है कि ऐसे बहुत से संगठन वाममार्गी वैचारिक अनुस्थापन वाले हैं (यह जरूरी नहीं कि वे उग्रवादियों के हिंसक उद्देश्यों से सहमत हों) और कुछ मामलों में "एन जी ओ" खुद उग्रवादियों के लिए एक "मोर्चा" हो सकते हैं। "कानून और व्यवस्था दृष्टिकोण" के समर्थकों का मत है कि ऐसी एसोसिएशनें मिलिटेंट उग्रवादियों की प्रोक्सियों के अलावा कुछ नहीं हैं जिनका प्रमुख उद्देश्य सुरक्षा बलों का मनोबल कम करना है और वे पुलिस उत्पीड़न का हव्वा बनाकर उग्रवादियों द्वारा हिंसा, हत्या और जबरन वसूली का मार्ग अपनाते

हैं। दूसरी ओर ऐसी एक बढ़ती भावना है कि एक वार्ताकार के रूप में ऐसे संगठनों को एक बढ़ी हुई भूमिका निभानी है तथा उनकी सतर्कता व जागरूकता पुलिस व अन्य राज्य कार्यकर्ताओं द्वारा शक्ति के दुरूपयोग के विरूद्ध एक कार्य करती है-दूसरे शब्दों में उनके कार्यकलापों से कानून का शासन मजबूत होता है। यद्यपि इन संगठनों में कुछ "काली भेड" हो सकती हैं, तथापि इसमें बहुत कम सन्देह है कि उनमें उग्रवादियों और सरकार के बीच एक सेतु का काम करने और लोगों को हिंसा की व्यर्थता की बात समझाने व कानूनी प्रजातान्त्रिक ढाँचे के अन्दर जन शिकायतें उजागर करके स्थिति को और गम्भीर बनने से रोकने में सक्षम हैं। ऐसे संगठनों को विवाद प्रबंधन में शामिल करने के उपायों और तरीकों के बारे में इस रिपोर्ट के अन्तिम अध्याय में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

3.7 नक्सलियों के धन के स्त्रोतों को समाप्त करना

3.7.1 अन्य उग्रवादी आन्दोलन की तरह नक्सली आन्दोलन भी धन जुटाता है जिससे उन्हें बने रहने में मदद मिलती है। ऐसा जुटाव, स्थानीय लोगों से और प्रभावित क्षेत्रों में विभिन्न परियोजनाएं निष्पादित करने वाले ठेकेदारों से भी जबरन वसूली के रूप में होता है। इसके अलावा, वन व खान प्रचालनों के माध्यम से भी धन जुटाया जाता है। यह सुनिश्चित करने का एक तरीका कि विकास निधियां उग्रवादियों तक न पहुंचे, इन कार्यों को अस्थाई तौर पर सीमा सड़क संगठन जैसे संगठन व अन्य सरकारी एजेन्सियों को सौंपा जा सकता है जो इन कार्यों को सीधे ही निष्पादित कर सकती हैं। इसकी सिफारिश विशुद्धत: एक अस्थाई उपाय के रूप में की गई है और न कि स्थानीय निजी उद्यमशीलता की अवमानना के तौर पर।

3.7.2 वाम उग्रवादियां के लिए धन के स्त्रोतों में कमी करना एक अन्य क्षेत्र है जिस पर तत्काल ध्यान दिए जाने की जरूरत है। बड़े पैमाने पर ठेकेदार परिहनकर्ता- उग्रवादी गठजोड़ और गैर-कानूनी खनन के साथ इसका संबंध व वाम उग्रवाद द्वारा प्रभावित पूरे क्षेत्र में वन उत्पाद के संग्रह से उग्रवादियों को बड़ी मात्रा में धन प्राप्त होता है। एक कारगर जबरन वसूली-रोधी व आर्थिक अपराध स्कंध कायम करने से यदि बिलकुल नहीं तो उग्रवादियों के लिए ऐसे निधियन के स्त्रोतों में कमी आ सकती है।

3.7.3 वंचना की भावना के दोहन और समुदाय के मार्जिनकृत वर्गों के बीच परिणामी असंतोष की वजह से वाम उग्रवाद देश के विभिन्न भागों में एक गम्भीर चुनौती है। निःसन्देह, भारतीय राज्य और सोसायटी ने इस कुरीति का बड़ी मात्रा में संवेदनशीलता के साथ और कानून व व्यवस्था की पारम्परिक पद्धतियों के साथ यदा-कदा कुछेक पुलिस-भिन्न पद्धतियों के साथ बहुत सी सोसायटियों की तुलना में, अधिक सफलता के साथ मुकाबला किया है। इसके साथ ही, यह तथ्य कि वाम उग्रवाद के लक्षण मौजूद हैं और वस्तुत: अनेक पाकेटों में फैले हैं, इस बात का संकेत है कि काफी कुछ किया जाना शेष है। यह आवश्यक है कि समस्या के प्रति दृष्टिकोण सन्तुलित और विकास, राजनीति व पुलिस क्रियाविधियों के

एक विवेकपूर्ण मिश्रण के साथ बहु-आयामीय हो, जैसाकि पैरा 3.4.5 में वर्णित "14 सूत्री नीति" में बताया गया है।

3.8 सिफारिशें

क– **केन्द्रीय सरकार द्वारा संबंधित राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके, संसद में घोषित "14 सूत्री कार्यनीति" के आधार पर कार्रवाई का एक दीर्घावधिक (10 वर्ष) और अल्पावधि (5 वर्ष) कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है जिससे कि "कार्यनीति" को कार्यान्वित करने के लिए राज्य विशिष्ट कार्रवाई विनिश्चित की जा सके।**

ख– **"14 सूत्री कार्यनीति" की भावना से सहमत होते हुए उग्रवादी दलों के साथ बातचीत विवाद निपटान की एक महत्त्वपूर्ण विधि होनी चाहिए।**

ग– **प्रशासनिक मानीटरन और पर्यवेक्षण के मामले में "बुनियादी सिद्धान्तों का पालन करने" का एक मजबूत मामला है। समय–समय पर अधिकारिक निरीक्षण और संगठनात्मक निष्पादनों की समीक्षा करने की पद्धति पुनरूज्जीवित की जानी चाहिए। यह समझा जाना चाहिए कि "अशान्त क्षेत्रों" में ऐसी प्रथाओं को त्याग दिए जाने का मुख्य कारण वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा दौरे के समय उनकी वैयक्तिक सुरक्षा की आशंका का होना है। इसलिए सलाह है कि दौरे के समय वरिष्ठ प्रशासनिक और तकनीकी अधिकारियों की उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए और इस प्रकार गम्भीर हिंसा से प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस बलों का आकलन करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।**

घ– **कारगर और पक्की तौर पर, किन्तु संवैधानिक सीमाओं के अन्दर कार्य करने के लिए सुरक्षा बलों की क्षमता में वृद्धि करने की जरूरत है; यह आवश्यक है कि मानक प्रचालनात्मक प्रक्रियाएं और प्रोटोकोल विशिष्ट रूप से और विस्तापूर्वक निर्धारित किया जाना चाहिए।**

ड.– **गड़बड़ियों के मूल कारणों के संबंध में, जिन्हें उन्हें खत्म करना है, पुलिस और अर्ध–सैनिक कार्मिकों को संवेदीकृत बनाने सहित उनका प्रशिक्षण और अनुस्थापन किया जाना आवश्यक है।**

च– **आन्ध्र प्रदेश में "ग्रेहाउण्डस" की पद्धति पर प्रशिक्षित विशेष कार्य बलों का गठन, वाम उग्रवाद का समाधान करने के लिए पुलिस तंत्र में क्षमता निर्माण करने की कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए।**

छ– **उग्रवादी प्रभावित इलाकों में स्थानीय रूप से भर्ती किए गए पर्याप्त स्टाफ के साथ स्थानीय स्तर के पुलिस स्टेशनों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण वाम उग्रवाद का समाधान करने की पुलिस प्रणाली कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए।**

ज– अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वन वासी (अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 के प्रभावी कार्यान्वयन के वास्ते बहु–विषयक निगरानी समितियां गठित की जा सकती हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि इस समाधानकारी विधान पर अमल करने से स्थानीय पारि–पद्धतियों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

झ– हिंसक वाम उग्रवाद के प्रचार के झांसे में आने वाले वर्गों के बीच असंतोष को नियंत्रित करने के लिए संवैधानिक सुरक्षोपायों, विकास स्कीमों और भू–सुधार पहलों के कार्यान्वयन का मानीटरन करने के लिए विशेष प्रयासों की जरूरत है।

त्र– स्थानीय रूप से संगत विकास को सुकर बनाने के वास्ते प्रभावित क्षेत्रों में केन्द्र प्रायोजित व अन्य स्कीमों के संबंध में कार्यान्वयन एजेन्सियों को पर्याप्त ढील दी जानी चाहिए जिससे कि वे स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित उपयुक्त परिवर्तन लागू कर सकें।

ट– राज्यों द्वारा अपने पंचायती राज अधिनियमों व अन्य विनियमों को पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम 1996 (पेसा) के प्रावधानों के अनुरूप बनाने के लिए संशोधित करने और इन प्रावधानों के कार्यान्वयन का केन्द्रीय पंचायती राज मंत्रालय द्वारा मानीटरन और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

ठ– गैर–कानूनी खनन/वन ठेकेदारों और परिवहनकर्ताओं और उग्रवादियों के बीच गठजोड़ को समाप्त किया जाना चाहिए जिससे उग्रवादी आन्दोलन के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। इसकी प्राप्ति हेतु विशेष जबरन वसूली रोधी व धन की हेराफेरी रोधी प्रकोष्ठ राज्य पुलिस/राज्य सरकार द्वारा स्थापित किए जाने चाहिए।

ड– बड़ी अवस्थापना परियोजनाओं को, विशेष रूप से सड़क नेटवर्क को कार्यान्वित करने के लिए, जिनका उग्रवादियों द्वारा अत्यंत विरोध किया जाता है अथवा जिनका उपयोग स्थानीय ठेकेदारों से धन वसूलने के लिए किया जाता है, ठेकेदारों के स्थान पर सीमा सड़क संगठन जैसी विशेष सरकारी एजेन्सियों का उपयोग करने पर, एक अस्थाई उपाय के रूप में, विचार किया जा सकता है।

4

भू–सम्बद्ध मुद्दे

4.1 सभी सोसायटियों में तथा प्रमुख्य रूप से कृषि अर्थव्यवस्थाओं में और भी अधिक, जहाँ एक प्रमुख परिसम्पत्ति होने के अलावा, भूमि का कब्जा और मिल्कियत सामाजिक सम्मान की एक अनिवार्यता है, भूमि विवाद का एक सतत स्त्रोत है। यद्यपि 1950 और 1960 के दशकों में ग्रामीण क्षेत्रों में भू-सुधारों के सफल कार्यान्वयन से बिचौलिए समाप्त हो गए तथा कृषि असंतोष में काफी कमी आई, तथापि इसके फलस्वरूप मालिकों की एक नई श्रेणी का जन्म हुआ। भूमिहीन श्रमिकों और छोटे तथा सीमान्तिक किसानों को भूमि की मिल्कियत प्रदान करने में कृषि जोतों की अधिकतम सीमा तय करने को सीमित सफलता मिली। कुछेक राज्यों में देखे गए भू-जोतों की चकबंदी के लाभ, प्रतीत होता है समाप्त हो गए जैसाकि कृषि उत्पादन और नवीकृत कृषि भूमि के विखण्डन से स्पष्ट है। स्पष्ट है कि भूमि हमारे किसान समुदायों को पेश आने वाले संकट का केन्द्र बिन्दु है तथा इस मुद्दे की वजह से बड़े-बड़े विवादों का जन्म होता है। इसी प्रकार, उत्प्लावक अर्थ-व्यवस्था की अनिवार्यताओं से भूमि की समानान्तर मांग का जन्म होता है, जिससे देश में उसके अपने तनाव पैदा होते हैं जहाँ जी डी पी में कृषि का हिस्सा 1951 में लगभग 60 प्रतिशत से 2002-03 में कम होकर 27 प्रतिशत हो गया किन्तु जहाँ 67 प्रतिशत से अधिक आबादी अभी भी कृषि पर निर्भर है। कृषि-भिन्न उपयोग के लिए भूमि की मांग, जिसमें विकास परियोजनाएं शामिल हैं तथा शहरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति से विवादों की और गुंजाइश पैदा होती है। इन पर व ऐसे ही अन्य पहलुओं पर इस अध्याय में चर्चा की गई है। तथापि, जनजातीय भूमि अन्यसंक्रामण और काश्तकारी सुधारों जैसे मुद्दों पर इस रिपोर्ट में अन्यत्र चर्चा की गई है तथा भू-विवादों के सार्वजनिक व्यवस्था निहितार्थों पर आयोग ने अपनी "सार्वजनिक व्यवस्था" पर पिछली रिपोर्ट में चर्चा की है।

4.2 भूमि तथा कृषि संबंधी विवाद, किसानों की आत्महत्याएं सहित

4.2.1 यद्यपि कुछ राज्यों में किसानों द्वारा आत्महत्याओं में दुखद बढ़ोत्तरी से सुलग रहे कृषि संकट की ओर ध्यान आकर्षित किया है, तथापि इस बढ़ती कुरीति के "भू-आयामों" पर समुचित रूप से विचार किए जाने की जरूरत है ताकि इसकी समग्र "विवाद उत्पत्ति क्षमता " का आकलन किया जा सके। इस संबंध में निम्नलिखित तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित किया जाता है।[17]

- *कुल मिलाकर देश के संबंध में भू-जोतों का औसत आकार 1951 में 2 हेक्टेयर से कम होकर 1955 में 1.41 हेक्टेयर और 2000 में 1.32 हेक्टेयर हो गया। यह नोट करने योग्य है कि 2 हेक्टयर से कम जोतों को ही सीमान्तिक रूप से बचत वाला समझा जाता है। यह विश्वास*

[17] स्त्रोत: "एग्रीकल्चरल स्टेटिस्टिक्सएट ए ग्लांस "(2006) भारत सरकार, कृषि मंत्रालय

करने का कोई कारण नहीं है कि यह घटती हुई प्रवृत्ति रूक गई है तथा वर्तमान जोत आकार को देखते हुए भारत में विश्व के अन्तयत्र देशों की तुलना में सबसे कम औसत जोत आकार हैं।

- *औसत आकार में कमी होने के साथ-साथ जोतों की संख्या में वृद्धि होती है - 1955 में 11.58 करोड़ से 2000 में 12.08 करोड़, जो इस सत्य को सत्यापित करती है कि बड़ी संख्या में परिवार संकुचित होती हुई भूमि को जोतते हैं।*
- *सीमान्तिक (1 हेक्टेयर से कम का जोत आकार) और छोटे किसानों (1-2 हेक्टेयर का जोत आकार) की प्रतिशतता 2000 में कुल किसानों की 82 थी।*
- *अधिकतम सीमा संबंधी कानूनों के अनुसार प्रत्येक भूमिहीन/सीमान्तिक छोटे किसान परिवार के लिए 2 हेक्टेयर अधिशेष भूमि के पुनर्वितरण की परिकल्पना करते हुए छोटे किसानों तथा सीमान्तिक किसानों के लिए 6.72 करोड़ हेक्टेयर और भूमिहीन श्रमिकों के लिए 10 करोड़ हेक्टेयर की कुल भूमि की जरूरत होगी।[18] जबकि देश में निवल बोया गया क्षेत्र 14 करोड़ हेक्टेयर से अधिक नहीं है। दूसरे शब्दों में यद्यपि भू-सुधारों को अनेक कारणवश और अधिक तेजी के साथ लागू करने की जरूरत है भारतीय संदर्भ, में उसकी सीमाएं हैं जिन्हें समुचित रूप से समझा जाना चाहिए।*
- *अमितव्ययी होने के अलावा, छोटे और सीमान्तिक भू-धारक मौसम की अनिश्चितता, बाजार उतार-चढ़ाव और इनपुट लागत आदि में थोड़ी सी भी वृद्धि के संबंध में विशेष रूप से भेद्य हैं - संक्षेप में, छोटे और सीमान्तिक किसान और "छोटे-मझौले" किसान भी (2-4 हेक्टेयर जोत) हर समय किसी न किसी समस्या में फंसे रहते हैं।*

4.2.2 अधिक भू-विखण्डन के कारण उत्पन्न कठिनाइयाँ अनेक कारणों से जैसे कि किसानों की औपचारिक संस्थानों द्वारा लिए जाने वाले लम्बे लीड समय के कारण अत्यधिक ऊँची ब्याज दरों पर अल्पावधि ऋण के लिए निजी साहूकारों जैसे गैर-औपचारिक स्त्रोतों के जरिए बढ़ती ऋणग्रस्तता; ऋण का तात्कालिक खपत जरूरतों को पूरा करने के लिए उपयोग करने की जरूरत के कारण उसका उत्पादक प्रयोजनों हेतु प्रयोग न किया जाने; ऋण को वापस करने आदि के लिए उस ऋण के कार्यकलाप से पर्याप्त अधिशेष जुटाने में असफल रहने के कारण, और अधिक बढ़ गई हैं। बकाया रहते ऋणों की वापसी अदायगी करने के लिए संसाधनों के अभाव की वजह से किसानों को और उधार लेना पड़ता है, जिससे एक कुचक्र का निर्माण होता है जिसकी वजह से अत्यंत कठिनाई पैदा होती है । ऋण का यह

[18] परिकलन, संगत श्रेणियों के लिए कृषि संबंधी गिनती आकड़ों पर आधारित है।

बोझ अक्सर किसानों को आत्महत्या करने के लिए बाध्य करता है। राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एन सी आर बी) के डाटा के अनुसार, 2001-05 अवधि के दौरान 86922 किसानों ने आत्महत्याएं की जिनमें से 54 प्रतिशत निम्नलिखित चार राज्यों से थे : आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल और महाराष्ट्र। और भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि "आत्महत्या मृत्यु दर अथवा एस एम आर, जिससे राज्यों में किसानों के संबंध में प्रति 1,00000 आबादी आत्महत्या मौतों का पता चलता है, 17.5 के राष्ट्रीय औसत से अधिक हैं: केरल (195), महाराष्ट्र (51), कर्नाटक (41) और आन्ध्र प्रदेश (33)। स्पष्ट है कि राज्यों में किसानों द्वारा आत्महत्याएं विद्यमान कृषि संबंधी कठिनाई का प्रतिविम्ब है। अध्ययनों से पता चलता है कि बड़ी संख्या में ऐसी आत्महत्याओं के कारण हैं: ऋणग्रस्तता, फसल असफलता, आर्थिक स्थिति में गिरावट, सामाजिक स्थिति में ह्रास और सामाजिक दायित्वों को पूरा करने में असमर्थता।[19] यद्यपि पीड़ित परिवारों के लिए प्रधान मंत्री के विशेष आर्थिक पैकेज के अन्तर्गत राहत और पुनर्वास के लिए उपायों तथा संबंधित राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपायों से कुछ राहत मिली है तथापि कृषि कठिनाइयों के मूल कारणों को दूर करने के लिए विशिष्ट नीतिगत उपायों की जरूरत है।

4.2.3 यद्यपि भारतीय कृषि की समस्याएं तथा किसानों की कठिनाइयों के कारण इस आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले विषय नहीं हैं, तथापि यह स्पष्ट है कि कृषक समुदाय की कठिनाइयां गम्भीर विवाद पैदा करने में सक्षम हैं। वित्त मंत्रालय द्वारा नियुक्त कृषि ऋणग्रस्तता संबंधी विशेषज्ञ दल ने कृषकों की कठिनाइयों की जाँच की और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि किसानों द्वारा आत्महत्याएं और उनका ऋण बोझ उस बड़ी कुरीति के लक्षण हैं जो घटती लाभप्रदता, बड़े जोखिमों, प्राकृतिक संसाधनों के ह्रास और कृषि में निवेश (सरकारी निवेश सहित) में कमी आदि से भरी हैं। किसान, बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ रहते हैं, जैसे कि अपने बच्चों की शिक्षा और पारिवारिक स्वास्थ्य देखभाल जिसकी वजह से अत्यंत कठिनाई और निराशा उत्पन्न होती है।[20] रिपोर्ट में कहा गया है कि यद्यपि कृषि के लिए संस्थागत ऋण किसानों की कठिनाइयों को कम करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथापि इससे कुरीति का उपचार नहीं होता जब तक कि गहरे कारणों का समुचित रूप से समाधान न किया जाए। समूह ने किसानों के लिए वैकल्पिक आजीविका अवसरों में वृद्धि करने की जरूरत को अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार किया है तथापि उसने नोट किया है कि यह सम्भव हो सकता है, विरोधाभाव स्वरूप, यदि उच्च कृषि विकास को (कम से कम 4 प्रतिशत प्रति वर्ष) काफी लम्बे समय तक बनाए रखा जाए। सिफारिश किए गए उपायों में सम्मिलित हैं:

[19] स्त्रोतों का, "कृषि ऋणगस्तता संबंधी विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट" (2007), भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, बैंकिंग प्रभाग, पृ. 86-87 से पता चलता है।
[20] अध्याय 4 और 5

- छोटे और सीमान्तिक किसानों को, प्रमुख रूप से "स्वयंसेवी समूहों" (एस एच जी) और सहकारिताओं के माध्यम से और सहायता प्रदान करके कृषि आधार का विस्तार करना।
- अनौपचारिक ऋण को औपचारिक संस्थानों को अन्तरित करना
- प्राकृतिक संसाधन आधार का पुनरूद्धार, विशेष रूप से वर्षापोषित क्षेत्रों में।
- किसानों को कीमत और मांग घट-बढ़, मौसम की विषमताओं और प्राकृतिक आपदाओं जैसे जोखिमों से बचाने के लिए और अधिक प्रभावी जोखिम कवरेज प्रदान करना।
- किसानों के लिए वैकल्पिक आजीविकाएं सृजित करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में न केवल कृषि में बल्कि कृषि-भिन्न क्षेत्रक के विविधीकरण के लिए अधिक सरकारी निवेश।
- गरीब किसानों की जरूरतें और अधिक विशिष्ट रूप से पूरी करने के लिए निर्धनता उन्मूलन कार्यक्रम तथा ऐसे कार्यक्रम तैयार करने में किसान संगठनों को शामिल किया जाए।

4.2.4 उपरोक्त सिफारिशों का समर्थन करते हुए आयोग दल के इस मत से भी सहमत है कि काश्तकारी सुधार, प. बंगाल के "आपरेशन बर्गा" की तरह ही काश्तकारों को सशक्त बनाने सहित अभी भी गरीब किसानों को सशक्त बनाने के लिए अत्यंत संगत हैं, विशेष रूप से उन्हें वित्तीय संस्थानों से ऋण सुलभ कराना तथा कृषि को विकास में उनके हिस्से में वृद्धि करना। ऐसे ही कारणों की वजह से भू-जोतों की चकबंदी को अगले स्तर तक आगे बढ़ाया जाना चाहिए। छोटे और सीमान्तिक किसानों को सशक्त बनाने और भू-सुधार उपायों को जारी रखने सहित, कुछेक उपायों के जरिए कृषि विकास आयोजित करने से, वृहद और लघु आर्थिक उपायों की प्राप्ति के अलावा, बड़े ग्रामीण असंतोष को रोकने में भी काफी मदद मिलेगी।

4.2.5 प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में राष्ट्रीय भू-सुधार परिषद स्थापित करने के सरकार के हाल ही के निर्णय और राष्ट्रीय परिषद के लिए इनपुट उपलब्ध कराने के लिए ग्रामीण विकास मंत्री की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति का गठन करना, भू-सुधारों को पुन: सरकारी नीति उपायों की मुख्य धारा के अन्तर्गत लाने के वास्ते एक स्वागत-योग्य कदम है। प्रस्तावित विशेषज्ञ समिति में, जिसे ठीक ही "राज्य कृषि संबंधों और भू-सुधारों में अपूर्त कार्य संबंधी समिति" का नाम दिया गया है, संगत विषयों के विशेषज्ञ सम्मिलित होंगे। समिति को सौंपे गए कार्यों में विशेष रूचि वाले विषय "भू-सुधारों के संबंध में राष्ट्रीय नीति" का एक मसौदा सुझाना और विभिन्न "भू-सम्बद्ध आजीविका मुद्दों" पर चर्चा करना सम्मिलित होंगे। आयोग को भरोसा है कि ऊपर वर्णित विषयों पर विशेषज्ञ समिति तत्काल व सावधानीपूर्वक ध्यान देगी जिससे कि भूमि को पूरे कृषक समुदाय के लिए शक्ति का एक स्त्रोत बनाने के लिए एक व्यावहारिक,

व्यापक कार्यनीति तैयार हो सके। इसकी सफलता राज्य सरकारों द्वारा तत्काल प्रदान किए जाने वाले सहयोग और उनकी पूर्णरूपेण प्रतिबद्धता प्राप्त करने पर निर्भर करेगी।

4.3 विस्थापन

4.3.1 लोगों को उनकी भूमि से विस्थापित किया जाना विवाद का एक स्त्रोत रहा है चाहे सरकार भूमि का अधिग्रहण कानून के प्रावधानों के अन्तर्गत सार्वजनिक प्रयोजनार्थ करे। भूमि का अधिग्रहण छोटे उप-केन्द्र स्थापित करने जैसी छोटी परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है जहाँ बहुत कम विस्थापन हो, अथवा बड़ी पन विद्युत परियोजनाओं जैसी बड़ी परियोजनाओं के लिए किया जा सकता है जिससे बड़े पैमाने पर विस्थापन हो सकता है। भूमि का अधिग्रहण, भू-अधिग्रहण अधिनियम, 1894 अथवा ऐसे ही राज्य कानूनों के अन्तर्गत किया जाता है। कानूनों में, भूमि का अधिग्रहण करते समय पालन की जाने वाली प्रक्रिया तथा शीर्षक धारकों की क्षतिपूर्ति के लिए मानदण्ड भी निर्धारित किए गए हैं।

4.3.2 देश के वृहद समाजार्थिक विकास के लिए भूमि का अधिग्रहण आवश्यक है। भूमि का उपयोग और अधिक आर्थिक लाभार्थ करना और इस प्रकार समाज के लिए आर्थिक प्रतिफल में वृद्धि करना भूमि के अधिग्रहण में अन्तर्निहित सिद्धान्त है। किन्तु देखा गया है कि जिस व्यक्ति की जमीन चली जाती है वह महसूस करता है कि क्षतिपूर्ति की अदायगी करने में उसके साथ सही बर्ताव नहीं किया गया है। भूमि का अधिग्रहण करना सामान्यत: एक बड़ी समस्या है क्योंकि भूमि पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति उन विभिन्न लाभों से वंचित हो जाते हैं जो वे उससे प्राप्त करते हैं, और कभी-कभी आजीविका से भी।

4.3.3 भू-अधिग्रहण कानूनों में भूमि खोने वालों के लिए अदा की जाने वाली उचित क्षतिपूर्ति की व्यवस्था है। किन्तु सामान्यत: इस प्रकार अदा की जाने वाली क्षतिपूर्ति अपर्याप्त होती है क्योंकि भूमि के बाजार मूल्य का आकलन ऐसी तकनीकों पर आधारित होता है जो भूमि खोने वाले के लिए भूमि की वास्तविक कीमत को परिलक्षित नहीं करता। भू-अधिग्रहण अधिकारी, प्रचलित कीमतों का पालन करते हैं जैसी कि पंजीकृत बिक्री प्रलेखों में दर्शाई जाती है। भूमि की यह "अधिकारिक" कीमत भूमि की "दबी" कीमत होती है। प्राय: यह न्यून क्षतिपूर्ति और साथ ही सामान्य अफसरशाही बाधाओं से भूमि खोने वालों के बीच वंचना की भावना पैदा करती है और इससे विवाद की शुरूआत होती है।

4.3.4 इससे निकटत: जुड़ा एक मुद्दा उन लोगों के पुनर्वास का है जिनकी भूमि और परिणामत: आजीविका चली गई है। ऐसे व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए 2003 तक कोई व्यापक नीति नहीं थी जबकि भारत सरकार ने परियोजना प्रभावित परिवारों के पुनर्वास और पुन: स्थापन के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति तैयार की जिसे 2004 में अधिसूचित किया गया था। यह नीति सामान्य मार्गनिर्देशों तथा सभी संबंधितों

के मार्गनिर्देश हेतु कार्यकारी अनुदेशों के रूप में थी तथा मैदानी क्षेत्रों में इकट्ठे 500 अथवा अधिक परिवारों और पर्वतीय क्षेत्रों में इकट्ठे 250 परिवारों, मरूस्थल विकास कार्यक्रम (डी डी पी) ब्लाकों और संविधान की 5वीं व 6वीं अनुसूचियों से सम्मिलित क्षेत्रों को विस्थापित करने वाली परियोजनाओं के संबंध में उपलब्ध थी। इस नीति के उद्देश्य थे :

(क) विस्थापन को कम से कम करना तथा विस्थापित न करने वाले अथवा कम से कम विस्थापन करने वाले विकल्पों का पता लगाना ;

(ख) परियोजना प्रभावित परिवारों (पी ए एफ) के पुनर्वास और पुन: स्थापन की योजना तैयार करना, जनजातियों और भेद्य वर्गों की विशेष जरूरतों सहित;

(ग) पी ए एफ के लिए बेहतर रहन-सहन की व्यवस्था करना; और

(घ) परस्पर सहयोग के माध्यम से अपेक्षाकर्ता निकाय और पी ए एफ के बीच सामन्जस्यपूर्ण संबंध सुकर बनाना।

4.3.5 स्कीम के अन्तर्गत निर्धारित है कि परियोजना प्रभावित परिवारों के पुनर्वास और पुन: स्थापना के लिए स्कीम/योजना परियोजना प्रभावित परिवारों के प्रतिनिधियों के परामर्श से तैयार की जानी चाहिए और उसका वित्तपोषण उस निकाय द्धारा किया जाना चाहिए जिसके लिए भूमि का अधिग्रहण किया गया है। इसमें प्रभावित परिवारों के लिए पुनर्वास पैकेज प्रदान करने के लिए भी मानदण्ड निर्धारित किए गए हैं।

4.3.6 परियोजनाओं और उद्यमों की स्थापना करने के लिए व्यक्तियों का विस्थापन भारत के लिए अनूठा नहीं है। अनेक देशों ने ऐसी ही समस्याओं को काफी सफलता के साथ हल किया है, इसलिए संक्षेप में यह नोट करना उपयोगी होगा कि किस प्रकार अन्य देशों द्धारा ऐसी ही समस्याओं का समाधान किया गया।[21]

4.3.6.1 *कोलम्बिया:* 1990 के दशक के प्रारंभ में शुरू करके कोलम्बिया ने पन विद्युत संयंत्रों से लाभों की प्रतिशतता उन क्षेत्रों के विकास के लिए आवंटित करना शुरू कर दिया जिनमें विस्थापित व्यक्तियों का पुन: स्थापन किया गया था। 1993 में "लाभ अन्तरणों" हेतु एक कानून बनाया गया। उसके बाद 1994 में अधिकारिक विनियम तैयार किए गए जिनमें विधान को प्रभावी बनाने के लिए ब्यौरे निर्धारित किए गए। वर्ष 1996 में एक अन्य कानून पारित किया गया जिसमें "पर्यावरण क्षतिपूर्ति निधि" कायम की

[21] माइकल सेर्निआ, "फाइनेन्सिंग फार डपलपमेंट : बेनिफिट शेयरिंग मेकेनिज्म इन पापुलेशन रीसेटिलमेंट", "इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली", 24 मार्च, 2007 । कोलम्बिया, ब्राजील, चीन, कनाडा और जापान में प्रचलित पद्धतियों का हवाला इस पत्र से दिया गया है।

गई, जिसका वित्त पोषण विकास परियोजनाओं से राजस्व के माध्यम से किया जाना था। उसके शीघ्र बाद, इस क्षतिपूर्ति निधि के लिए आवंटन बढ़ाकर परियोजना राजस्व का 20 प्रतिशत कर दिया गया। कोलम्बियाई कानूनों में राजस्व के उस अनुपात की भी परिभाषा की गई है जिसे "पुन: स्थापना क्षेत्रों" को वापस लौटाया जाना है। उदाहरण के लिए, पन विद्युत संयंत्रों के राजस्व का 3.8 प्रतिशत जल बचत व स्थानीय सिंचाई में नए उत्पादक निवेशों के लिए क्षेत्र की वाटरशेड एजेन्सियों को अन्तरित किया जाना है; परियोजना राजस्व का 1.5 प्रतिशत जलाश्य की सीमाओं वाली नगरपालिकाओं को अन्तरित किया जाना चाहिए तथा अन्य 1.5 प्रतिशत का आबंटन आप्रवाही नगरपालिकाओं आदि के लिए आवंटित किया गया है।

4.3.6.2 *ब्राजील:* ब्राजील में, पन विद्युत संयंत्रों के निर्माण के कारण बड़े पैमाने पर विस्थापन हुआ जिससे निपटने के लिए सरकार तैयार नहीं थी - सामाजिक परिणाम प्रतिकूल थे और प्रभावित लोगों को गम्भीर स्थिति का सामना करना पड़ा जबकि बहुत से लोग बड़े नगरों के ईर्द-गिर्द मलिन बस्तियों में चले गए। 1988 में देश के संविधान में संशोधन में पन विद्युत परियोजनाओं से रायल्टियों के कुछ प्रतिशत के पुनर्निवेश का सिद्धान्त लागू किया गया। इसके पश्चात, हकदारियों और अन्तरण-योग्य रायल्टियों की विशिष्ट राशि और साथ ही ऐसे आवंटनों के लिए एक नियमित समयतालिका आश्वस्त करने के लिए प्रक्रियाओं के साथ, परिभाषा करने के लिए एक के बाद एक अनेक कानून अधिनियमित किए गए। 2004 के एक आकलन से पता चलता है कि 145 जलाश्यों के साथ 137 पन विद्युत संयत्रों ने अपेक्षित रायल्टियाँ अदा की तथा ब्राजील की 22 राज्य सरकारों और 593 नगरपालिकाओं को वित्तीय क्षतिपूर्ति अदा की। इनमें से 252 नगरपालिकाओं को वित्तीय क्षतिपूर्ति प्राप्त हुई, केवल 16 को रायल्टी प्राप्त हुई तथा 325 नगरपालिकाओं को रायल्टी और क्षतिपूर्ति दोनों प्राप्त हुई। वार्षिक रूप से वित्तीय क्षतिपूर्ति और रायल्टी की राशि 400 मिलियन अमरीकी डालर से अधिक थी।

4.3.6.3 *चीन:* चीन के कुछ बडे बांध, जैसे कि झिननजियंग, सनमेक्सिया और घनजियांगकोड का निर्माण 1980 से पहले हुआ था तथा प्रत्येक ने तीन लाख से अधिक लोगों को विस्थापित किया था। अपर्याप्त पुन: स्थापन के कारण प्रभावित लोगों के बीच दरिद्रता, गहरा गुस्सा और असंतोष पैदा हुआ। अपनी गलतियों से सीख लेते हुए चीन ने आमूल रूप से एक भिन्न मार्ग को चुना। 1980 के दशक से शुरू करके चीन ने पुन: स्थापन को नियमित व उसमें सुधार करने के लिए अनेक सरकारी नीतियां तैयार की और धीरे-धीरे विकास के कारण उत्पन्न बलित विस्थापन और पुन: स्थापन (डी एफ डी आर) प्रक्रिया के राज्य वित्त पोषण में वृद्धि की। 1981 से शुरू करके वित्त मत्रालय और विद्युत शक्ति मंत्रालय की एक डिक्री के साथ विनियम पारित किए गए जिनके तहत यह अपेक्षित था कि प्रत्येक विद्युत संयंत्र उस विद्युत संयंत्र की अवधि के लिए जलाश्य क्षेत्र में निवेश का 0.1 फेन/के डब्ल्यु एच आवंटित करे। 1985 में चीन की राज्य परिषद ने एक पुन: स्थापन पश्चात विकास निधि कायम करने का निर्णय लिया जिसमें विद्युत कम्पनियों से अंशदानों को जमा किया जाएगा। 1986 में एक व्यापक भू कानून "भू-प्रशासन कानून (एल

ए एल)" पारित किया गया जिसमें अधिग्रहण और विस्थापन प्रचालनों के विस्तृत प्रावधान सम्मिलित किए गए। बाद में, मझौले और बड़े जलाश्यों से पुनः स्थापितों के लिए एल ए एल के क्षतिपूर्ति मानदण्डों को विनिर्दिष्ट किया गया और उनमें वृद्धि की गई। नवीं राष्ट्रीय जन कांग्रेस (एन पी सी) द्वारा अगस्त 1998 में सम्पूर्ण भू-प्रशासन कानून की फिर से जाँच की गई तथा उसमें सुधार किया गया। इन सभी विनियमों के उद्देश्यों की आजीविका तथा उत्पादन के नए रूप विकसित करने के लिए पुनः स्थापितों की मदद करने की दृष्टि से, परिभाषा की गई। अन्य देशों में भू-अधिग्रहण अधिनियमों से भिन्न, चीन के 1998 भू-कानून में, मात्र खेती वाली भूमि को अधिग्रहित करने के संबंध में जन संधारणीय पुनर्वास के लिए मानदण्ड और स्पष्ट व विस्तृत मानदण्ड दिए गए हैं। चीन की परिषद द्वारा अभी हाल ही में अपनाए गए विधान में, भू-अधिग्रहण के लिए अपनाए जाने वाले स्थानीय शासन के पिछले प्राधिकार को और प्रतिबंधित कर दिया गया है, जिस प्राधिकार का स्थानीय शासनों द्वारा प्रायः दुरुपयोग किया जाता था जिससे किसानों का विरोध भड़क जाता था। खोजों के संबंध में इन प्रतिबन्धों से खेती-योग्य भूमियों के नुकसान को कम करने, गलत भू-कब्जों को रोकने और परिणामी किसानों के विरोधों को कम करने तथा स्वैच्छिक पुनः स्थापनों के कुल आकार के संबंध में कठोर नियंत्रण करने के केन्द्रीय प्राधिकारियों के प्रयास परिलक्षित होते हैं। चीनी संस्थागत व प्रशासनिक पद्धति के अन्तर्गत व्यवस्था है तथा यह अपेक्षित है कि प्रत्येक प्रान्त एक "प्रान्तीय पुनः स्थापन ब्युरो" के रूप में, पुनः स्थापन के संबंध में अपनी संस्थागत क्षमता कायम करेगा जिसमें पुनः स्थापन प्रचालनों में विशेषज्ञता के साथ काफी अधिक बहु-व्यावसायिक स्टाफ हो तथा जिसे उस प्रान्त में डी एफ डी आर प्रचालनों के वस्तुतः सभी पहलुओं की जाँच का अधिकार हो। इस बात को देखते हुए कि प्रत्येक चीन के प्रान्त की आबादी करोड़ों में है, ये एजेन्सियाँ, "ब्युरो" के इनके साधारण नाम के बावजूद, महत्वपूर्ण हैं। महत्वपूर्ण है कि विधान द्वारा इन एजेन्सियों को जलाश्य विकास निधियों के प्रबंधन और पुनः स्थापितों के लाभार्थ विकास उपाय आरंभ करने का दायित्व सौंपा गया है। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि चीन ने लगातार अनेक चरणों में, विस्थापित लोगों के लिए "क्षतिपूर्ति" के रूप में प्रदान किए जाने वाले संसाधनों की राशि में वृद्धि की है, यह स्पष्ट है कि अनेक चैनलों के माध्यमों से मिलकर वित्त पोषण के परिणामस्वरूप पुनः बसाने के बाद संधारणीय पुनर्निर्माण के लिए और अधिक सहायता प्राप्त होती है। यही कारण है कि चीन में पिछले समय के दौरान बताया गया है कि विस्थापित लोगों की दरिद्रता की मात्रा में क्यों कमी आ रही है जैसा कि विस्थापित लोगों की संख्या में वृद्धि के बावजूद, विश्व बैंक व अन्य एजेन्सियों द्वारा किए गए मूल्यांकन अध्ययनों से पता चलता है।

4.3.6.4 *कनाडा:* कनाडा ने बड़े बांध निर्मित करने का एक व्यवस्थित कार्यक्रम शुरू किया है। कुछ क्षेत्रों में, जहाँ ऐसी अनेक योजनाएं कार्यान्वित की जा रही हैं, प्रथागत भू-अधिकारों के साथ देशज जनजातीय लोग रहते हैं, जिन्हें कनाडा कानूनों के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त है। 1971 में कनाडा की एक प्रमुख विद्युत यूटिलिटी "हाइड्रो क्युबैक" ने जेम्स बे परियोजना के संबंध में योजनाएं घोषित की, जिनमें जनजातीय "क्री इण्डियन" आबादी की पूरी गृहभूमि को नकारात्मक रूप से प्रभावित करने की क्षमता के साथ 20 तक

बाँध निर्मित करना सम्मिलित होगा। "क्री" ने अपने आपको संगठित किया, तीव्र सार्वजनिक रूप से विरोध प्रकट किया तथा कानूनी कार्यवाही का भी सहारा लिया। कनाडाई न्यायालयों ने उनके पक्ष में निर्णय दिया तथा परियोजना निर्माण का कार्य रोक दिया। "क्री" के विरोधों के फलस्वरूप, जिनसे बाद में देशज "इनयूइट" लोग और साथ ही देशज अधिकारों व पर्यावरणीय संरक्षण का समर्थन करने वाले एन जी ओ भी जुड़ गए, कनाडाई सरकार और इसकी सार्वजनिक यूटिलिटियों की स्थिति में बड़ा बदलाव आया। इन लोगों की जरूरतों का समाधान करने तथा देश के पन विद्युत विकास में उनके योगदान को समझते हुए, कनाडा सरकार और पनविद्युत यूटिलिटियों ने स्थानीय देशज समुदायों के साथ भागीदारी करने की एक कार्यनीति अपनाई। "हाइड्रो क्युबेक" ने घोषित किया कि वह परिकल्पित पन विद्युत यूटिलिटियों में इक्विटी भागीदारी के लिए प्रभावित देशज समूहों के साथ करार करेगी। इन करारों का प्रमुख आधार यह है कि स्थानीय देशज समुदाय अपनी भूमियों का योगदान करके, पन विद्युत परियोजनाओं में प्रत्यक्ष निवेशकर्ता हैं। यद्यपि भूमि के लिए "इनयुइट" लोगों को सीधे ही तथा साथ ही अपने उत्पादक मात्स्यिकी कार्यकलापों के समायोजन के लिए उनकी मदद करने के वास्ते भी क्षतिपूर्ति की अदायगी की जा रही है, तथापि उन्हें इक्विटी भागीदारी का विकल्प भी प्रदान किया गया। इस इक्विटी से जनजातीय "इनयुइट" समुदायों को लम्बी अवधि तक के लिए, परियोजना के निर्माण में उनके भूमि के हिस्से के अनुपात में, परियोजना के लाभों का हिस्सा प्राप्त करने में मदद मिलती है। विद्युत यूटिलिटी पूर्ण वित्त पोषण करती है तथा बाँध और विद्युत संयंत्र का निर्माण करती है। देशज लोगों द्वारा भूमि उपलबध कराई जाती है और उसके बाद के लाभों में वे आनुपातिक रूप से हिस्सेदारी करते हैं। इस दृष्टिकोण से, परियोजना के लाभों के भाग के रूप में उनकी शेयरधारिता और वित्तीय हकदारी को स्वीकरते हुए, स्थानीय समुदायों का आर्थिक विस्थापन और दरिद्रता के जोखिम से बचाव होता है। यह आर्थिक और वित्तीय व्यवस्था फिलहाल पूर्ण रूप से प्रचलन में है।

4.3.6.5 जापान :

4.3.6.5.1 भू-अधिग्रहण और जनसंख्या पुन: स्थापन में अन्तर्निहित तनावों और विवादों को न्यूनतम करने के एक प्रयास में जापान में भू- पट्टा प्रयोग किए गए हैं। तीन "जिन्तसु-गावा" लघु बांधों की श्रृखंला का निर्माण करते समय- "जिन्तसु गावा बांध" सं.1, 2 और 3 - जापानी सरकार में देश के अधिग्रहण कानून का सहारा लेने के बजाए, जलाश्यों के लिए आवश्यक भूमि को उसके मालिकों से केवल पट्टे पर लेने का निर्णय लिया। भूमि के पट्टे के लिए अदायगी को वित्तीय अन्तरणों की दो किस्मों में बाँटा गया था, केवल एक बार क्षतिपूर्ति की अदायगी करने और उन्हें विस्थापित करने की बजाए, प्रभावित लोगों को लम्बी अवधि तक के लिए राजस्व प्राप्त होते रहने के सुविचारित उद्देश्य से।

4.3.6.5.2 दो प्रकार के वित्तीय अन्तरण किए गए :

i) जलाश्य के लिए पट्टे पर भूमि देने वाले भू-स्वामियों को सीधे ही अदायगी जिससे कि वे किसान वैकल्पिक आजीविकाओं के लिए अपना विकास कर सकें और प्राप्त धन का निवेश भूमि-भिन्न-आधारित आय सृजक कार्यकलापों के लिए कर सकें।

ii) पट्टे पर ली गई भूमि के लिए नियमित किराया अदायगियां जिसे स्थानीय छोटे धारकों के परियोजना के पूरे कार्यकाल के लिए लगातार अदा किया जाना है। इस प्रकार पट्टे पर ली गई भूमि, यद्यपि अब गहरे जलाशय जल के तहत है, तथापि प्रभावित किसानों और उनके बच्चों के लिए आय का एक सतत स्त्रोत बनी रहती है। किराया आदयगियों से प्रारम्भिक सीधी क्षतिपूर्ति की पूर्ति होती है तथा शुरू में नए वैकल्पिक आर्थिक कार्यकलापों के सफल न रहने पर भी अथवा पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त न होने पर भी, आजीविका संघारणीयता सुनिश्चित करने में मदद मिलती है।

4.3.6.5.3 ऐसा दो आयामीय वित्त पोषण प्रभावी सिद्ध हुआ तथा यह समय पर खरा उतरा। हाल ही के डाटा से पता चलता है कि विद्युत कम्पनियाँ तीन बाँधों के निर्माण के 50 वर्ष बाद भी आज किराया अदा कर रही हैं। अदायगियाँ विद्युत कम्पनियों पर कोई खास बोझ नहीं हैं और वे प्रारम्भिक भू-स्वामियों के परिवारों की नई पीढ़ी को प्राप्त होती हैं। जापान ने एक बढ़े "नुमाता" बांध की योजना तैयार करने में एक और नवीन कार्यनीति अपनाई है जिसके जलाशय से लगभग 10,000 लोगों के विस्थापित हो जाने की सम्भावना थी। इतनी बड़ी संख्या में लोगों के लिए नई भूमि प्राप्त करने के लिए सरकार की लागत पर सिंचाई प्रारंभ करके, धान चावल खेतों में बदलने की योजना तैयार की। इसका निश्चित उद्देश्य पुनः बसाए गए लोगों के लिए सुधरी आजीविकाओं के साथ

4.1 : पिछली अल्प अदायगियों में सुधार करने के लिए वित्तीय अदायगियां

चीन की राज्य परिषद ने न केवल पिछले अपर्याप्त वित्त पोषण और आय बहाली में पिछली असफलताओं को स्वीकार करने की अपनी तत्परता की बल्कि पूर्ववर्ती वर्षों में विस्थापित बड़ी संख्या में लोगों को पूर्व-व्यापी सक्रिय आदयगियों के जरिए इसे सुधारने की भी घोषणा की है। 1949 से, पिछले सभी 57 वर्षों के दौरान बांधों द्वारा विस्थापित सभी किसानों को भी क्षतिपूर्ति की अदायगी की जाएगी। लघु पैमाने पर, अर्थात् चार व्यक्तियों के कृषक परिवार के स्तर पर, अदायगी 20 वर्ष के लिए "किराए " के रूप में प्रत्येक वर्ष कुल 300 अमरीकी डालर की द्योतक है जो चीन की ग्रामीण आबादी के लिए काफी महत्वपूर्ण राशि है। किसी भी राज्य की पुनर्स्थापन प्रथा में यह एक अभूतपूर्व उपाय है। स्व: सुधार और मरम्मत के एक कार्य के रूप में और साथ ही विकास नीति व सामाजिक संरक्षण के एक दूरदष्टिपूर्ण निर्णय के रूप में भी, इस सिद्धान्त का महत्व इसके वित्तीय भार की तुलना में कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन पूर्व-व्यापी अदायगियों के वित्तीय परिव्यय वस्तुत: विशाल हैं। चीन के राष्ट्रीय पुनः स्थापन अनुसंधान केन्द्र (एन आर सी आर) से प्राप्त डाटा के अनुसार अक्तूबर 1949 से जून 2006 के बीच बांध से विस्थापित व्यक्तियों की संख्या लगभग 1,80,00,000 है जिसके लिए 20 वर्ष की अवधि के दौरान कुल 27 बिलियन अमरीकी डालर की पूर्व-व्यापी अदायगियां अन्तर्निहित हैं। इसके अलावा, राज्य परिषद ने, पिछले 57 वर्षों के दौरान विस्थापन द्वारा परिवारों में आबादी की वृद्धि के लिए भी इस सुधारात्मक पुनरूद्धार उपाय का विस्तार करने का निर्णय लिया है। इससे लाभार्थियों की संख्या ऊपर वर्णित 18 मिलियन से बढ़कर लगभग 22.88 मिलियन हो जाएगी। इसलिए कुल पूर्व प्रभारी अदायगियों की राशि 34.3 बिलियन अमरीकी डालर अथवा 270 बिलियन युआन बैठती है।

स्त्रोत: माइकल सेर्निआ, "फाइनेन्सिंग फार डवलपमेंट : बेनिफिट-शेयरिंग मेकेनिजम्स इन पापुलेशन रीसेटलमेंट", "इकोनॉमिक एण्ड पालिटिकल वीकली", मार्च 24, 2007 । कोलम्बिया, ब्राजील, चीन, कनाडा और जापान में प्रचलित पद्धतियों का विवरण इसी पत्र से लिया गया है।

वास्तविक पुन: स्थापन प्राप्त करना था। प्रत्येक पुन: बसाए गए व्यक्ति को उसकी पहली मिल्कियत वाली जमीन का लगभग पुराना क्षेत्र प्राप्त होना था। जब किसी परिवार की भूमि का कोई भाग जलमग्न होना था, तब सरकार की योजना जलमग्न भाग के लिए किराया अदा करने की थी जैसे कि जलमग्न भूमि किसान द्वारा राज्य को पट्टे पर दी गई हो, बजाए इसके कि केवल एक बार क्षतिपूर्ति की अदायगी की जाए (नाकायामा और फुरूयाशिकी, 2007)। निर्माण और पुनर्स्थापन योजनाएं कार्यान्वयन हेतु तैयार थी किन्तु अन्य मेक्रो-आर्थिक कारणवश नुमाता बांध का निर्माण 1972 में रद्द कर दिया गया। फिर भी, नुमाता आयोजना में यह मूल सृजनात्मक दृष्टिकोण सम्भावित अनुकरण और वास्तविक भावी परीक्षण के लिए प्रासंगिक है।

4.3.6.5.4 इस प्रकार ऊपर बताई गई लाभ-हिस्सेदारी कार्यनीति के अन्तर्गत भू-अधिग्रहण से राजस्व के एक भाग का उपयोग पुनर्स्थापन के वित्त पोषण के लिए करना अन्तर्निहित है। इन प्रक्रियाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित पद्धतियां सम्मिलित हैं :

- निश्चित आवंटनों के माध्यम से चल विकास निधियों की स्थापना;
- सह-स्वामित्व के विभिन्न स्वरूपों के जरिए नए, परियोजना सृजित उद्यमों व अन्य उत्पादक परिसम्पत्तियों में इक्विटी हिस्सेदारी; और
- वृद्धित उपायों के साथ स्थानीय विकास कार्यक्रमों की पूरकता के लिए, सामान्य कर पद्धति के अलावा, क्षेत्रीय व स्थानीय सरकारों को अदा किए जाने वाले कर।

4.3.6.6 *न्युजीलेण्ड:* न्युजीलेण्ड के सार्वजनिक निर्माण कार्य के तहत निजी मालिकों को किसी भी भूमि में किसी प्रतिधारित भूमि और क्षति की कीमत में किसी स्थायी हास के लिए क्षतिपूर्ति की जानी है। कीमत में स्थायी हास उन स्थितियों में लागू होता है जब भूमि का कोई भाग अधिग्रहित किया जाए तथा शेष भूमि की कीमत घट जाए। [22]

4.4 नई राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनर्स्थापन (आर एण्ड आर) नीति

4.4.1 भारत सरकार ने, अक्तूबर, 2007 में पुनर्वास और पुनर्स्थापन के संबंध में एक नई राष्ट्रीय नीति अनुमोदित की थी। नई नीति तथा सम्बद्ध विधायी उपायों का उद्देश्य विकास कार्यकलापों के लिए भूमि की जरूरत और इसके साथ ही भू-स्वामियों व अन्यों, जैसे कि काश्तकारों, भूमिहीनों, कृषि व गैर-कृषि श्रमिकों, शिल्पकारों आदि के हितों को संरक्षण प्रदान करने के बीच, जिनकी आजीविका अन्तर्निहित भूमि पर निर्भर करती है, एक सतुंलन कायम करना है।

4.4.2 नई नीति के अन्तर्गत प्रभावित परिवारों के लिए प्रस्तावित लाभों में सम्मिलित हैं: जमीन के लिए जमीन, उस सीमा तक जिस सीमा तक पुर्नस्थापना क्षेत्रों में उपलब्ध होगी ; "प्रभावित परिवार" की

[22] पियूष तिवारी, मंगलवार, 28 अगस्त 2007 ; www.livemint.com

परिभाषा के अन्दर प्रत्येक न्युक्लीयर परिवार से कम से कम एक व्यक्ति के लिए परियोजना में रोजगार के लिए प्राथमिकता, रिक्तियों की उपलब्धता और प्रभावित व्यक्तियों की उपयुक्तता की शर्त पर : उपयुक्त रोजगार और स्वः रोजगार प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण तथा क्षमता निर्माण; प्रभावित परिवारों से पात्र व्यक्तियों की शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियां ; ठेकों के आवंटन तथा परियोजना स्थल में अथवा इसके इर्द-गिर्द अन्य आर्थिक अवसरों में सहकारिताओं के समूहों को प्राथमिकता; परियोजना में निर्माण कार्य में इच्छुक प्रभावित परिवारों को ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में मकान सहित; व अन्य लाभ। अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के लिए विशेष सावधानों में अनु. जनजातियों के लिए जमीन के बदले जमीन, उसके बाद अनु. जातियों के लिए प्राथमिकता, एक जनजातीय विकास योजना, जिसमें वैकल्पिक ईंधन के विकास के लिए एक कार्यक्रम और वैकल्पिक ईंधन व गैर-काष्ठ वन उत्पाद संसाधनों के लिए भी एक विकास कार्यक्रम, ग्राम सभाओं और जनजातीय सहलाहकार परिषदों के साथ परामर्श, मात्स्यिकी अधिकारों का संरक्षण, सामुदायिक और धार्मिक समारोहों के लिए निःशुल्क जमीन, पुनर्स्थापन क्षेत्रों में आरक्षण लाभों को जारी रखना आदि शामिल हैं।

4.4.3 एक मजबूत शिकायत समाधान पद्धति निर्धारित की गई है, जिसमें जिला और परियोजना स्तरों पर स्थायी और सार समितियाँ तथा इस संबंध में यथापूर्वक सशक्त एक ओम्बडस्मन सम्मिलित है। नीति में यह भी व्यवस्था है कि सार्वजनिक प्रयोजनार्थ अधिग्रहित भूमि को, किसी सार्वजनिक प्रयोजन को छोड़कर और वह भी केवल सरकार के पूर्व अनुमोदन के साथ, हस्तान्तरित नहीं की जा सकती। यदि सार्वजनिक प्रयोजनार्थ प्राप्त की गई भूमि, कब्जा लेने की तारीख से पाँच वर्ष की अवधि तक इस प्रयाजनार्थ अप्रयुक्त रहती है तो वह संबंधित सरकार को वापस हो जाएगी। यदि किसी एवजी के बदले में अधिग्रहित भूमि हस्तान्तरित की जाती है तो हस्तान्तरणकर्ता को इस प्रकार अर्जित होने वाली किसी निवल अनार्जित आय का अस्सी प्रतिशत उन व्यक्तियों के साथ अथवा उनके उत्तराधिकारियों के साथ अधिग्रहीत भूमि की कीमत के अनुपात में बाँटा जाएगा जिससे भूमि अधिग्रहित की गई है।

4.4.4 हकदार व्यक्तियों को यह विकल्प होगा कि वे अपने पुनर्वास अनुदान और क्षतिपूर्ति राशि का 20 प्रतिशत तक शेयरों के रूप में ले सकते हैं यदि अधिग्रहण निकाय शेयर और ऋणपत्र जारी करने के लिए प्राधिकृत कोई कम्पनी हो; सरकार के पूर्व अनुमोदन से यह अनुपात पुनर्वास अनुदान और क्षतिपूर्ति राशि का 50 प्रतिशत तक ऊँचा हो सकता है। सरकार ने, इस नई पुनर्वास और पुनर्स्थापन नीति को सांविधिक समर्थन प्रदान करने के लिए विधान पेश करने तथा साथ ही भू-अधिग्रहण अधिनियम, 1984 में उपुक्त रूप से संशोधन करने का भी निर्णय ले लिया है।

4.4.5 प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखते हुए तथा विस्थापित व्यक्तियों के लिए एक विवाद समाधान उपाय के रूप में, भारत में विकास प्रेरित विस्थापन में लाभ हिस्सेदारी की अवधारणा लागू करने की जरूरत है। यद्यपि यह सही है कि भू-अधिग्रहण अधिनियम में 1984 में किए गए व्यापक संशोधनों से मामलों में कुछ हद तक सुधार हुआ है तथापि अधिनियम अभी भी नकद क्षतिपूर्ति की अवधारणा पर आधारित है। भूमि के बाजार मूल्य के आधार पर क्षतिपूर्ति अदा करने की पुरानी अवधारणा को उन सभी के संबंध में भूमि के वास्तविक मूल्य के आकलन द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जो उस पर निर्भर रहते हैं, तब उनकी पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए। इन परिस्थितियों में इस संबंध में एक नया कानून अधिनियमित किए जाने की जरूरत है कि उसमें उचित क्षतिपूर्ति के मानदण्ड निर्धारित करने के अलावा, क्षतिपूर्ति अदायगी के साथ-साथ आय हिस्सेदारी और पुनर्स्थापन विकास निधि कायम करने के सिद्धान्तों को भी शामिल किया जाए। उसके साथ ही क्षतिपूर्ति/पुनर्वास केवल जमीन के शीर्षक धारियों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि इसके अन्तर्गत उन सभी को शामिल किया जाना चाहिए जिन्हें भूमि से आजीविका प्राप्त होती है। केन्द्रीय सरकार ने संसद में भू-अधिग्रहण (संशोधन) विधेयक 2007 और पुनर्वास तथा पुनर्स्थापन विधेयक, 2007 प्रस्तुत किया है। भू-अधिग्रहण (संशोधन) विधेयक का उद्देश्य भू-अधिग्रहण अधिनियम, 1894 के प्रावधानों में संशोधन करना है ताकि विकास के लिए भूमि की जरूरत के बीच संतुलन कायम हो सके और उन व्यक्तियों के हितों को संरक्षण प्रदान किया जा सके जिनकी जमीन सांविधिक रूप से अधिग्रहित की गई है। विधेयक के संबंध में "उद्देश्यों और कारणों के विवरण" में अन्य बातों के साथ-साथ कहा गया है :

"अधिग्रहीत भूमि के उपयोग और उसके हस्तान्तरण से संबंधित मुद्दे भी चिन्ता के विषय हैं। इसके अन्तर्गत ऐसे प्रावधान करने का प्रस्ताव है जिससे कि अभिग्रहीत भूमि किसी अन्य प्रयोजन के लिए हस्तान्तरित न की जाए, सिवाय सार्वजनिक प्रयोजन के, और वह भी उपयुक्त सरकार की पूर्व अनुमति के बगैर नहीं। जब कभी अधिनियम के अन्तर्गत अधिग्रहीत भूमि अथवा उसका हिस्सा, उसे कब्जे में लेने की तारीख से एक निश्चित अवधि के लिए अप्रयुक्त रहता है तो वह उपयुक्त सरकार को वापस हो जाएगा। इसके अलावा, जब कभी अधिनियम के अन्तर्गत अधिग्रहीत भूमि किसी एवजी के बदले में किसी व्यक्ति को हस्तान्तरित की जाती है तो इस प्रकार हस्तान्तरणकर्ता को प्राप्त होने वाली निवल अनार्जित आय का एक भाग उन व्यक्तियों के बीच अथवा उनके उत्तराधिकारियों के बीच उस मूल्य के अनुपात में बाँटा जाएगा जिस पर भूमि अधिग्रहीत की गई थी"।

पुनर्वास और पुनर्स्थापन विधेयक 2007 के संबंध में उद्देश्यों और कारणों के विवरण में, अन्य बातों के साथ, कहा गया है :

"संक्षेप में, पुनर्वास और पुनर्स्थापन विधेयक 2007 में ऐसे बुनियादी न्यूनतम की व्यवस्था की जाएगी कि अस्वैच्छिक विस्थापन करने वाली सभी परियोजनाओं में प्रभावित व्यक्तियों की कठिनाईयों का समाधान किया जाना चाहिए। प्रस्तावों पर कार्यवाही करने से पहले जिसकी वजह से बड़ी संख्या में

लोगों का विस्थापन हो, उन सभी पणधारियों को मिलाकर एक भागीदारीपूर्ण, सुविज्ञ तथा पारदर्शी प्रक्रिया के माध्यम से, उनका एक सामाजिक प्रभाव आकलन किया जाना चाहिए। पुनर्वास प्रक्रिया से, सामाजिक-सांस्कृतिक संबंधों के पुनर्निमाण, क्षमता निर्माण और सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा सामुदायिक सेवाओं की व्यवस्था को शामिल करते हुए, विस्थापित व्यक्तियों के आय स्तरों में वृद्धि होगी तथा उनके जीवन की कोटि समृद्ध होगी। विस्थापित व्यक्तियों में से भेद्य वर्गों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने के लिए पर्याप्त सुरक्षोपाय करने का प्रस्ताव है।"

4.4.6 भू-अधिग्रहण और बाद में पुनर्वास प्रक्रिया प्रायः समय खपाने वाली प्रक्रिया होती है। सम्मिलित अधिकारियों के बीच विचार और उदासीनता की बहुत शिकायतें हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि क्षेत्र तंत्र में सही दक्षताएं और अभिवृत्ति हो जिससे कि नई नीति को सच्ची भावना से कार्यान्वित किया जा सके। क्षमता निर्माण उपायों और आन्तरिक पर्यवेक्षण तंत्र को मजबूत करने की जरूरत होगी।

4.5 विशेष आर्थिक क्षेत्र

4.5.1 अनेक नियंत्रणों और मंजूरियों के कारण अनुभव की गई कमियों पर काबू पाने के उद्देश्य से; विश्व स्तर की अवस्थापना के अभाव और एक अस्थिर राजकोषीय व्यवस्था तथा भारत में बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश आकर्षित करने के उद्देश्य से, अप्रैल 2000 में विशेष आर्थिक क्षेत्र (एस ई जेड) नीति घोषित की गई थी। इन नीति का उद्देश्य एस ई जेड को, न्यूनतम सम्भावित विनियमों के साथ, केन्द्रीय और राज्य दोनों स्तरों पर, एक आकर्षक राजकोषीय पैकेज के जरिए अनुपूरित उत्तम अवस्थापना द्वारा समर्थित आर्थिक विकास हेतु, एक इंजिन बनाना है। भारत में एस ई जेड ने 1.11.2000 से 9.02.2006 तक विदेश व्यापार नीति के प्रावधानों के तहत कार्य किया तथा राजकोषीय प्रोत्साहनों को संगत संविधियों के प्रावधानों के माध्यम से प्रभावी बनाया गया। [23]

4.5.2 निवेशकों में विश्वास पैदा करने, एक स्थिर एस ई जेड नीति व्यवस्था के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता व्यक्त करने तथा एस ई जेड व्यवस्था को स्थिरता प्रदान करने के उद्देश्य से, एस ई जेड अधिनियम 2005 अधिनियमित किया गया। एस ई जेड अधिनियम के मुख्य उद्देश्य हैं:

(क) अतिरिक्त आर्थिक कार्यकलाप का सृजन ;
(ख) वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात को प्रोत्साहन ;
(ग) घरेलू और विदेशी स्त्रोतों से निवेश को प्रोत्साहन;
(घ) रोजगार अवसरों का सृजन;
(ङ.) आधारिक सुविधाओं का विकास।

[23] वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के वेबसाइट से उद्धरित

4.5.3 विशेष आर्थिक क्षेत्रों (एस ई जेड) की स्थापना, विवाद का एक स्त्रोत बन गया है, जिसकी वजह से प्राय: हिंसा होती है। उदाहरण के लिए नन्दीग्राम (प. बंगाल) में, जहाँ एक एस ई जेड स्थापित करने का प्रस्ताव है, पुलिस बलों द्वारा क्षेत्र में प्रवेश करने के प्रयास के बाद, 14 मार्च, 2007 को 14 लोग मारे गए। विकास के नाम पर लोगों का विस्थापित काफी आम बात है, किन्तु अभूतपूर्व बात हिंसा और बाद में जीवन की हानि की है जो प. बंगाल में एक अपेक्षाकृत छोटे आकार का एस ई जेड स्थापित करने के प्रस्ताव के विरूद्ध विरोध स्वरूप हुई।

4.5.4 विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम, 2005 एक विस्तृत कानून है जिसके अन्तर्गत बड़े कर प्रोत्साहनों की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत, क्षेत्रों की स्थापना, प्रचालन और राजकोषीय व्यवस्था जैसे विशेष पहलुओं की व्यवस्था है। विशेष आर्थिक क्षेत्र अधिनियम, 2005 में 2000 की एस ई जेड नीति की तुलना में कुछेक वृद्धिकारी परिवर्तन किए गए हैं। ये हैं: (क) कम्पनी आय कर छूट की ब्लाक अवधि बढ़ाकर 15 वर्ष कर दी गई: पाँच वर्ष के लिए 100 प्रतिशत आय कर छूट, अगले पाँच वर्ष के लिए 50 प्रतिशत और विगत पाँच वर्ष के संबंध में लाभों को वापस लगाने के लिए 50 प्रतिशत (ख) सेवा कर और प्रतिभूति कारोबार कर से छूट के रूप में अन्य राजकोषीय प्रोत्साहन, (ग) अधिक प्रचालनात्मक आजादी, अर्थात उपभोक्ता प्रभार निश्चित करने की छूट, (घ) सभी मामलों में "एकल खिड़की" मंजूरी प्रदान करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र के लिए अनुमोदन समिति और (ङ.) एस ई जेड, औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सार्वजनिक यूटिलिटियां घोषित हैं।

4.6 एस.ई.जेड के संबंध में चीनी अनुभव

4.6.1 चीन में एस ई जेड की स्थापना, 1978 में सुधारों की शुरूआत के शीघ्र बाद शुरू हुई और इन्होंने चीन के तीव्र आर्थिक विकास में योगदान किया है। बताया गया है कि चीन में एस ई जेड ने निम्नलिखित कारणों की वजह से काफी सफलता प्राप्त की : (क) उनकी अनूठी स्थिति-पाँच एस ई जेड में शेन- शेन, शान्तोऊऔर ज्युहई, हांगकांग के निकट गुअंगडोंग प्रान्त में हैं। चौथा झिआमन, फुजीअन में है जो ताइवान के निकट है, (ख) बड़े आकार वाले हैं, जहाँ सरकार तथा स्थानीय प्राधिकारी विदेशी सहयोग से सुधरी अवस्थापना की व्यवस्था करते हैं, (ग) अनिवासी चीनी और ताइवानियों के प्रति निवेश अनुकूल रूख, (घ) विदेशी निवेश के लिए आकर्षक प्रोत्साहन पैकेज, (ङ.) उदार सीमा-शुल्क प्रक्रियाएं, (च) नम्य श्रम कानून जिनमें विनिर्दिष्ट अवधियों के लिए ठेके पर नियुक्तियों की व्यवस्था है, और (छ) अतिरिक्त मार्गनिर्देश तैयार करने व क्षेत्रों के प्रशासन में प्रान्तों और स्थानीय प्राधिकारियों को शक्तियां।

4.6.2 तथापि, इन सफलताओं के बावजूद, चीनी एस ई जेड के नकारात्मक परिणाम भी रहे हैं। उन्हें एक अध्ययन[24] उद्धरण में प्रकाशित किया गया है जो निम्न प्रकार पुन: प्रस्तुत है:

[24] गोपालकृष्णन, "नेगेटिव एस्पेक्ट्स आफ स्पेशल इकोनामिक जोन्स" इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली", 28 अप्रैल, 2007.

तथापि, एस ई जेड के संबंध में चीनी प्रयोग के कृषि भूमि की हानि और वास्तविक सम्पदा के संबंध में सट्टेबाजी के रूप में महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं। एस ई जेड स्कीम के कार्यान्वयन से भू-अधिकारों में सट्टेबाजी अस्तित्व में आई तथा उसके बाद सट्टेबाजों के माध्यम से तीव्र हस्तान्तरण हुआ। जनवरी 1992 और जुलाई 1993 के बीच समस्त वास्तविक सम्पदा विकासकर्ताओं को 1,27,000 हेक्टेयर भूमि पर अधिकार मंजूर किए गए किन्तु केवल 46.5 प्रतिशत भूमि का वास्तविक रूप से विकास हुआ। वास्तविक सम्पदा विकासकर्ता के भूमि का बड़े पैमाने पर हस्तान्तरण का कारण तथाकथित "क्षेत्र ज्वर (जोन फीवर) था, वास्तविक अर्थ एस ई जेड माडल को प्रोत्साहित करने के परिणामस्वरूप क्षेत्रों में तेजी से वृद्धि होना था। चीनी राष्ट्रीय सरकार ने प्रारम्भिक क्षेत्रों के बाद नए प्रौद्योगिकीय क्षेत्र कायम किए, जिससे 2006 में अन्ततः 54 ऐसे क्षेत्र हो गए। प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों ने, उद्योगों और वास्तविक सम्पदा सट्टेबाजों को भूमि उपलब्ध कराते हुए अपने विशेष क्षेत्र घोषित किए। वस्तुतः क्षेत्र ज्वर 1990 के दशक के शुरू तक इस स्तर तक बढ़ गया कि किसी सही संख्या का पता नहीं था कि कितने विकासात्मक क्षेत्र वस्तुतः विद्यमान थे। 1993 में किए गए अनुमानों के अनुसार 6000 से 8700 तक ऐसे क्षेत्र थे तथा उनका अनुमानित कुल क्षेत्र 15,000 वर्ग किलोमीटर था, जो वस्तुतः विद्यमान नगरों के निर्मित क्षेत्र से अधिक था।"

बढ़ते "क्षेत्र ज्वर" और साथ ही वास्तविक सम्पदा में सट्टेबाजारी कार्यकलापों के कारण चीन में खेती योग्य भूमि में काफी कमी आई। 1986 और 1999 के बीच, अवस्थापना के विकास और वास्तविक सम्पदा विस्तार के लिए लगभग पाँच मिलियन हेक्टेयर खेती योग्य भूमि कथित रूप से हस्तान्तरित की गई। 1990 और 1997 के बीच मात्र फुजिअन प्रान्त में (झिआमन एस ई जेड के साथ) स्पष्टतः 3.50 लाख हेक्टेयर से अधिक खेती योग्य भूमि औद्योगिक प्रयोजनार्थ हस्तान्तरित की गई। इसी प्रकार, एक अर्थशास्त्री द्वारा हेमन एस ई जेड (1988 में स्थापित) का उल्लेख " विश्व का सबसे बड़े सट्टेबाजी बुलबुले के रूप में किया जहाँ बहुत कम औद्योगिक फर्में और बहुत कम औद्योगिक उत्पादन था"। हाँ, अन्ततः परिणाम भंयकर था। जून 1998 में, हेमन विकास बैंक, प्रान्तीय सरकार का मुख्य बैंकर, दिवालिया होने की वजह से बन्द हो गया जिसके शीघ्र बाद गुअंगडोंग प्रान्त का गुअंगडोंग इन्टरनेशनल ट्रस्ट एण्ड इन्वेस्टमेंट कारपोरेशन बन्द हो गया। बताया गया कि 1997 तक ये प्रवृत्तियां इतनी चिन्ताजनक हो गई कि सरकार ने अन्ततः भू-उपयोग संरक्षण पर बिलकुल रोक लगा दी। कुल मिलाकर चीन में एस ई जेड अवधारणा ने, चीन में भू विकास को प्रोत्साहित किया तथा खेती योग्य भूमि और प्राकृतिक संसाधन आधार पर इसेक प्रभाव की अनदेखी की गई।

4.7 एस ई जेड के संबंध में विवाद समाधान के लिए प्रशासनिक व्यवस्था

4.7.1 भारत में एस ई जेड नीति के संबंध में विवाद का स्त्रोत विस्थापन, कृषि भूमि की हानि और वास्तविक सम्पदा सट्टेबाजी की क्षमता से उत्पन्न होता है। इस बात की भी आलोचना की जाती है कि सस्ती कृषि भूमि पर कब्जा करने के लिए विकासकर्ताओं के बीच एक होड़ लगी है ताकि तुरंत लाभ उठाया जा सके और करों से बचा जा सके तथा रोजगार व निर्यात के लिए औद्योगिक निवेश जुटाने का वास्तविक उद्देश्य प्राप्त करने पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। यह भी बताया गया है कि यद्यपि चीन में बहुत बड़े आकार के सीमित संख्या में एस ई जेड की अनुमति दी गई है किन्तु भारत में सैकड़ों एस ई जेड की स्वीकृति प्रदान की गई है जिनमें कुछ ऐसे हैं जो आकार में केवल 10 हेक्टेयर हैं। बहु-उत्पाद एस ई जेड में प्रसंस्करण कार्यकलाप पर 25 % की पाबंदी की भी आलोचना की गई है क्योंकि अनुभव किया गया है कि कठोर भू-उपयोग विनियमों के बिना इससे रोजगार सृजक विनिर्माण कार्यकलापों की बजाए सट्टेबाजी के वास्तविक सम्पदा कार्यकलाप को बढ़ावा मिलेगा। अन्ततः यह आरोप लगाया गया है कि दी गई कर छूट से, जो 15 वर्ष तक की लम्बी अवधि तक चलेगी, राजस्व की हानि होगी और साथ ही यूनिटों का विचलन/विस्थापन होगा, विशेष रूप से आई टी यूनिटों का, जो लगभग सभी एस ई जेड में चले जाएंगे क्योंकि उनकी विद्यमान कर छूट 2009 में समाप्त हो जाएगी। चीनी एस ई जेड नीति के वे सभी तत्व वर्तमान भारतीय एस ई जेड नीति में भी विद्यमान हैं जिनके नकारात्मक परिणाम निकले। इसलिए यह आवश्यक है कि एस ई जेड नीति की सामाजिक लागतों और परिणामों के बारे में सतर्क रहा जाए क्योंकि इससे विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। एस ई जेड नीति की जाँच करने के लिए भारत सरकार द्वारा गठित मंत्रियों के समूह में पहले ही यह सिफारिश की है कि राज्य सरकारों को सामान्यतः एस ई जेड के लिए बड़ी मात्रा में भूमि अधिगृहित नहीं करनी चाहिए। यह एक अच्छा निर्णय है क्योंकि निजी कम्पनियों को भूमि आवंटित करने के लिए एस ई जेड की स्थापना को सार्वजनिक प्रयोजन को बढ़ावा देना नहीं कहा जा सकता। आयोग का यह भी मत है कि सीमित संख्या में बड़े एस ई जेड, सम्भवतः पिछड़े क्षेत्रों में, कायम करना बेहतर होगा जिससे कि उनसे अवस्थापना का निर्माण हो। इसके अलावा, यह वांछनीय होगा कि "गैर-प्रसंस्करण" कार्यकलापों के लिए उपयोग में लाई जाने वाली भूमि के अनुपात को कम से कम किया जाए।

4.7.2 तथापि, विस्थापित लोगों की आजीविका, विवाद समाधान में प्रमुख मुद्दा होना चाहिए। यद्यपि मंत्रियों के समूह ने सुझाया है कि पुनर्वास पैकेज में प्रभावित परिवार कम से कम एक व्यक्ति के लिए रोजगार सम्मिलित होना चाहिए। ऐसी शर्त पर्याप्त नहीं है। वस्तुतः बहुत से उद्यमियों ने पहले ही पुनर्वास पैकेज का प्रस्ताव किया है किन्तु वे संतोषजनक नहीं हैं। पुनर्वास पैकेज आय हिस्सेदारी नीति पर आधारित होने चाहिए जिसका विवरण इस अध्याय में पहले दिया जा चुका है। कुल मिलाकर यह बात

होनी चाहिए कि विस्थापितों को एकबारगी वाले लाभार्थी अथवा एस ई जेड विकास के दर्शक मात्र बनाने की बजाए प्रमुख पणधारी भागीदार बनाया जाए। इस प्रकार, मंगलौर एस ई जेड परियोजना के आर एण्ड आर पैकेज में भूमि पर निर्भर काश्तकार, सरकारी/वन भूमि पर रहने वाले अनाधिकृत कब्जे वाले तथा कृषि श्रमिकों, सभी को परियोजना प्रभावित व्यक्ति कहा गया है, जिन्हें परियोजना में अपनी भूमि खो देने वालों के साथ-साथ विभिन्न आकार के वैकल्पिक भू-खण्ड आवंटित किए जाने हैं। भूमि के बदले भू-खण्डों के अलावा, एक अनुकम्पा आवासन अनुदान, एक परिवहन अनुदान, एक निर्वहन अनुदान, भूमि की हानि के लिए एक पुनर्वास अनुदान, प्रत्येक प्रभावित परिवार के एक सदस्य को व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार पैकेज का भाग होना चाहिए।

4.7.3 एस ई जेड कानून में व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना भी विनिर्दिष्ट की जानी चाहिए। वास्तविक विकास कार्यकलाप शुरू करने से पहले, गाँवों के आस-पास पानी, सफाई और स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था की जानी चाहिए। एस ई जेड की स्थापना के इच्छुक उद्यमियों के लिए ऐसी जिम्मेदारी आवंटित करते हुए एस ई जेड कानून में स्पष्ट प्रावधान किया जाना चाहिए।

4.7.4 विवादास्पद स्थितियों के उत्पन्न होने से रोकने के लिए जिनसे हिंसा पैदा होती है, यह आवश्यक है कि औद्योगिक कार्यकलाप और एस ई जेड ऐसे क्षेत्रों में स्थापित किए जाएं जहाँ कम से कम विस्थापन और पुनर्स्थापन हो और जिनसे उत्पादक खेती की भूमि पर कब्जा नहीं किया जाए। इस प्रयोजनार्थ, व्यापक भू-उपयोग योजनाएं तैयार करना वांछनीय है जिनमें उन स्थानों का उल्लेख हो जहाँ औद्योगिक कार्यकलाप और एस ई जेड कायम किए जाने चाहिए। तथापि, यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि ऐसी भू-उपयोग योजनाओं को जनता के साथ विचार-विमर्श करके और प्रस्तावित भू-उपयोग योजना के संबंध में आपत्तियां आमंत्रित व उन पर विचार करने के बाद अन्तिम रूप दिया जाए। एक बार भू-उपयोग योजनाओं को अन्तिम रूप दिए जाने पर उनका ईमानदारीपूर्वक पालन किया जाना चाहिए तथा वे एक विनिर्दिष्ट संख्या में वर्षों के लिए होनी चाहिए।

4.8 भू–अभिलेख

4.8.1 भू-अभिलेखों की असंतोषजनक स्थिति व्यक्तियों के बीच और साथ ही व्यक्तियों व सरकार के बीच भी विवाद का एक बड़ा स्त्रोत है। कभी-कभी ऐसे विवाद हिंसक रूप ले लेते हैं। बड़े पैमाने पर अधिग्रहणों द्वारा परिवारों के विस्थापन की समस्याएं भू-अभिलेखों की असंतोषजनक स्थिति के कारण और भी गम्भीर हो जाती हैं। आयोग ने "सूचना का अधिकार" पर अपनी रिपोर्ट में हमारी शासन प्रणाली में भू-अभिलेखों के अनुरक्षण के महत्व पर बल दिया है। आयोग, इस मुद्दे पर "जिला प्रशासन" पर अपनी रिपोर्ट में और विस्तारपूर्वक चर्चा करेगा।

4.9 सिफारिशें

क– कृषि क्षेत्रक में कठिनाई को दूर करने के लिए निम्निलिखित उपाय किए जाने चाहिए;

i) कृषि के अनुरक्षण और संधारणीयता को प्रोत्साहित करने के लिए अधिशेष भूमि के पुनर्वितरण, काश्तकारों को शीर्षक सौंपना, और भू–जोतों की चकबंदी को आगे जारी रखने आदि जैसे भू–सुधार उपायों पर फिर से बल दिया जाना चाहिए।

ii) किसानों को पर्याप्त और समय पर सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग पद्धति को सुदृढ़ करने और उन्हें किसानों की जरूरतों के प्रति और अधिक प्रतिक्रियाशील बनाने की जरूरत है।

iii) निर्धनता उपशमन कार्यक्रमों की पुनर्संरचना की जानी चाहिए ताकि उन्हें छोटे और सीमान्तिक किसानों की जरूरतों के प्रति और अधिक संवेदी बनाया जाए।

iv) सरकारी निवेश में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों के अन्दर गरीब किसानों के लिए वैकल्पिक रोजगार अवसर प्रदान करने के लिए गैर–कृषि व कृषि से भिन्न कार्यकलापों का विस्तार किया जा सके।

v) असुविधा–प्राप्त लोगों के लिए ऋण तथा विपणन की सुलभता में सुधार करने व सशक्त बनाने के लिए "स्वयं सेवी समूहों" के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए उपाय प्रारंभ करना।

vi) मौसम बीमा स्कीमें और कीमत समर्थन पद्धतियां जैसे जोखिम कवरेज उपायों का विविधीकरण।

ख– भू–अधिग्रहण के संबंध में एक नया विधान अधियमित करने की जरूरत है जिसमें संशोधित राष्ट्रीय पुनर्वास नीति में निर्धारित सिद्धान्तों को शामिल किया जाए। परियोजना प्रभावित लोगों के पुनर्वास के संबंध में हाल ही में घोषित राष्ट्रीय नीति को सभी चल रही परियोजनाओं और साथ ही विचाराधीन परियोजनाओं के संबंध में भी तुरंत कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

ग– एस ई जेड के संबंध में वर्तमान दृष्टिकोण को निम्नलिखित के अनुसार बदलने की जरूरत है:

i) एस ई जेड स्थापित करने में प्रमुख कृषि भूमि के उपयोग से बचा जाना चाहिए।

ii) एस ई जेड की संख्या सीमित होनी चाहिए, बड़े न्यूनतम आकार के साथ और सम्भवत: पिछड़े क्षेत्रों में स्थापना के साथ, जिससे कि वे आर्थिक विकास के लिए आधार का कार्य कर सकें।

iii) स्वयं किसानों द्वारा प्रवर्तित एस ई जेड को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

iv) विस्थापित व्यक्तियों की आजीविका का मुद्दा एस ई जेड नीति का प्रमुख मुद्दा होना चाहिए।

v) एस ई जेड विनियमों मे पुनर्वास की सामाजिक जिम्मेदारी एस ई जेड की स्थापना करने के इच्छुक उद्यमियों पर स्पष्ट रूप से सौंपी जानी चाहिए। इसमें पानी, सफाई, स्वास्थ्य सुविधाओं और व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था करना सम्मिलित होना चाहिए।

vi) एस ई जेड के प्रवर्तकों द्वारा गैर–प्रसंस्करण कार्यकलापों के लिए उपयोग करने के लिए अनुमत्य भूमि के भाग को न्यूनतम रखा जाना चाहिए तथा इसे उनकी योजनाएं अनुमोदित करने के समय ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए। प्रसंस्करण और गैर–प्रसंस्करण कार्यकलापों के बीच विद्यमान अनुपात की फिर से जाँच की जानी चाहिए ताकि उत्पादक उपयोगार्थ प्रयुक्त की जाने वाली भूमि के अनुपात को अधिकतम किया जा सके। इसके साथ ही पर्यावरणीय विनियमों का कठोरत: अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

vii) व्यापक रूप से सार्वजनिक विचार–विमर्श के बाद ही विस्तृत भू–उपयोग योजनाएं तैयार और उन्हें अन्तिम रूप दिया जाना चाहिए। एस ई जेड में औद्योगिक कार्यकलाप उन्हीं क्षेत्रों में आयोजित किए जाने चाहिए जो भू–उपयोग योजनाओं में उस प्रयोजनार्थ विनिश्चित हों।

viii) निर्यात इकाइयों और विकासकर्ताओं दोनों के लिए व्यवस्थित अत्यंत उदार कर छूटों पर फिर से विचार किए जाने की जरूरत है।

जल सम्बद्ध मुद्दे

5

प्रधानमंत्री ने कहा है, *"नदियां हमारे देश की हिस्सेदारीपूर्ण दाय हैं - वे हमें जोड़ने वाली डोरियाँ होनी चाहिए, न कि ऐसी डोरी जो हमें बाँटे"* [25] तथापि, जल विवाद आजकल हमारे समाज के हर घटक को राजनीतिक दलों, राज्यों, इलाकों, राज्यों के अन्दर उप-क्षेत्रों, जिलों, जातियों, समूहों और अलग-अलग किसानों को बाँट रहे हैं। प्रतीत होता है कि जल विवाद, न कि जल भारत में आधार स्तर तक तेजी से फैल रहा है। [26]

5.1 अन्तर-राज्य जल विवाद

5.1.1 संवैधानिक प्रावधान और महत्वपूर्ण कानून

5.1.1.1 जल के संबंध में संविधान में संघ, राज्य और स्थानीय सरकारों के विधायी और कार्यात्मक क्षेत्राधिकार निर्धारित किए गए हैं। जल अनिवार्य रूप से एक राज्य विषय है और संघ केवल अन्तर-राज्य जल के मामले में सामने आता है। राज्यों के क्षेत्राधिकार से संबंधित विषयों से संबंधित सातवीं अनुसूची की सूची दो में प्रविष्टि 17 है जो निम्न प्रकार पठित है: जल, कहने का तात्पर्य है *जल आपूर्ति, सिंचाई और नहरें, नाली व्यवस्था और तटबंध, जल भण्डारण और जल विद्युत, सूची-एक की प्रविष्टि 56 के प्रावधानों के अध्यधीन; सूची-एक (संघ सूची) की प्रविष्टि 56 निम्न प्रकार पठित है:संघ के नियंत्रण के तहत विनियम और विकास की सीमा तक अन्तर-राज्य नदियों और जल घटियों का विनियमन और विकास, जिसे कानून के जरिए संसद द्वारा सार्वजनिक हित में उपयोगी घोषित किया जाए।*

5.1.1.2 संविधान में एक विशिष्ट अनुच्छेद-अनुच्छेद 262 दिया गया है- जो अन्तर-राज्य नदियों अथवा नदी घाटियों के मामलों से संबंधित विवादों के अधिनिर्णयन से संबंधित है, जो निम्न प्रकार पठित है: अनुच्छेद 262 (1): *संसद, कानून के जरिए किसी अन्तर-राज्य नदी अथवा नदी घाटी के अथवा उसमें जल के उपयोग, वितरण अथवा नियंत्रण से संबंधित किसी विवाद अथवा शिकायत के अधिनिर्णयन के लिए व्यवस्था कर सकती है। संविधान में दी गई किसी बात के बावजूद, संसद कानून के जरिए व्यवस्था कर सकती है, कि खण्ड (I) में यथावर्णित ऐसे किसी विवाद अथवा शिकायत के संबंध में न तो उच्चतम न्यायालय का और न ही किसी अन्य न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा।*

[25] सिंचाई और जल संसाधन मंत्रियों के राष्ट्रीय सम्मेलन के उद्घाटन अवसर पर प्रधान मंत्री का भाषण, 30 नवम्बर, 2005

[26] बिकशम गुज्जा, के.जे.जय सुहास परान्जपे, विनोद गौड़ और श्रुति विस्पुते, "मिलियन रिवोल्ट्स इन दि मेकिंग", इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली", 18 फरवरी 2008

5.1.1.3 अनुच्छेद 262 और सूची I की प्रविष्टि 56 के तहत अधिनियमित दो कानून हैं; नदी बोर्ड अधिनियम 1956 और अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम, 1956। नदी बोर्ड अधिनियम का अधिनियमन, अन्तर-राज्य बेसिनों के एकीकृत विकास के संबंध में सलाह देने के लिए, राज्य सरकारों के परामर्श से बोर्ड गठित करने के लिए समर्थ बनाने के उद्देश्य से किया गया था। उम्मीद की गई थी कि नदी बोर्ड, विकास स्कीमें तैयार करके और प्रत्येक राज्य के लिए लागत तय करके विवादों को रोकेंगे। तथापि, नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत अभी तक किसी जल बोर्ड का गठन नहीं किया गया है। गठन के कार्यकरण की समीक्षा करने संबंधी राष्ट्रीय आयोग ने निम्न प्रकार टिप्पणी की थी :

यद्यपि सभी अन्तर-राज्य नदियों को एक ऐसे प्राधिकरण के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत रखने का एक अधिक क्रान्तिकारी सुझाव दिया गया है, जिसे संघीय संसद द्वारा अधिनियमित कानून के जरिए उन्हें राष्ट्रीय हित में प्रशासित करने के लिए नियुक्त किया जाए, तथापि यह तथ्य है कि अन्तर-राज्य जल के विनियमन और विकास की दृष्टि से, नदी बोर्ड अधिनियमन, 1956 एक मृत पत्र के रूप में पड़ा है। इसके अलावा, जब कभी भी अवसर आया, आवश्यकताओं, तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार, किसी नदी विशेष पद्धति की जरूरतों को पूरा करने के लिए संसद के भिन्न-भिनन अधिनियमों के तहत भिन्न-भिन्न नदी बोर्ड कायम किए गए हैं। इसलिए आयोग की सिफारिश है कि नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 को निरस्त किया जाए और इसके स्थान पर सूची-I की प्रविष्टि 56 के अन्तर्गत एक अन्य व्यापक विधान अधिनियमित किया जाए। नए अधिनियम में नदी बोर्डों के विधान और उनके क्षेत्राधिकार के विषय में स्पष्ट रूप से लिखा जाना चाहिए। जिससे कि जिस राज्य के अन्दर से नदी गुजरती है उसके तथा उसके निवासियों के अधिनिर्णीत और मान्य अधिकारों को संजोए रखते हुए सभी अन्तर -राज्य नदियों को विनियमित, विकसित और नियंत्रित किया जा सके। विधान अधिनियमित करते समय, राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखा जाना सर्वोपरि होना चाहिए क्योंकि अन्तर-राज्य नदियां समुदाय के "महत्वपूर्ण संसाधन" हैं और राष्ट्रीय परिसम्पत्तियां हैं। ऐसे विधान, सभी राज्य सरकारों के साथ प्रभावी और सार्थक रूप से परामर्श करने के बाद ही संसद द्वारा पारित किए जाएं।

5.1.1.4 अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम में व्यवस्था है कि पीड़ित राज्य किसी विवाद को संघ सरकार से किसी अधिकरण को सौंपने के लिए कह सकता है। जल विवाद अधिकरण की नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा की जाती है और उसमें उच्चतम न्यायालय का एक पीठासीन न्यायाधीश और दो अन्य न्यायाधीश होते हैं जिन्हें उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च (हाई) न्यायालयों में से चुना जाता है। इस प्रकार, नियुक्त अधिकरण उसे सलाह देने के लिए निर्धारक और विशेषज्ञ चुन सकता है तथा एक बार दिया गया "अवार्ड" अन्तिम और न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर होता है।

5.1.1.5 सरकारिया आयोग ने, अन्तर-राज्य नदी जल विवाद संबंधी अपनी रिपोर्ट के अध्याय सत्रह में सिफारिश की थी कि :

- *अन्तर-राज्य नदी जल विवाद अधिनियम (1956 का 33) की धारा 3 के तहत किसी राज्य से एक बार आवेदन प्राप्त होने बाद, संघ सरकार के लिए यह बाध्यकर होगा कि वह किसी विवादग्रस्त राज्य से आवेदन प्राप्त होने की तारीख से अधिकतम एक वर्ष की अवधि के अन्दर एक अधिकरण का गठन करे। इस प्रयोजनार्थ अन्तर-राज्य नदी जल विवाद अधिनियम में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जा सकता है (पैराग्राफ 17.4.11)।*
- *संघ सरकार के इस तथ्य से सन्तुष्ट हो जाने पर कि ऐसा कोई विवाद विद्यमान है, यदि आवश्यक हो, तो उसे स्वमेव एक अधिकरण नियुक्त करने के लिए सशक्त बनाने के वास्ते अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम में संशोधन किया जाना चाहिए (पैराग्राफ 17.4.14)।*
- *राष्ट्रीय स्तर पर एक डाटा बैंक और सूचना पद्धति होनी चाहिए तथा इस प्रयोजनार्थ शीघ्र से शीघ्र पर्याप्त तंत्र कायम किया जाना चाहिए। अन्तर -राज्य जल विवाद अधिनियम में ऐसा प्रावधान भी होना चाहिए कि राज्यों द्वारा आवश्यक डाटा प्रदान किया जाना चाहिए जिस प्रयोजनार्थ अधिकरण को न्यायालयों की शक्तियाँ सौंपी जाएं (पैराग्राफ 17.4.15 और 17.4.16)।*
- *अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम को यह सुनिश्चित करने के लिए संशोधित किया जाना चाहिए कि अधिकरण का अवार्ड उसके गठन की तारीख से पाँच वर्ष के अन्दर प्रभावी हो जाए। तथापि यदि किन्हीं कारणवश प्राधिकरण का मत हो कि पाँच वर्ष की अवधि में वृद्धि की जानी चाहिए, तो केन्द्रीय सरकार, उसे अधिकरण द्वारा भेजे गए संदर्भ के आधार पर, उसकी अवधि बढ़ा सकती है (पैराग्राफ 17.4.17)*
- *अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम, 1956 में संशोधन किया जाना चाहिए जिससे कि अधिकरण के अवार्ड की वही वैधता और प्रभाव होना चाहिए जो उच्चतम न्यायालय के आदेश अथवा डिक्री का होता है जिससे कि अधिकरण का अवार्ड वास्तव में बाध्यकर हो सके (पैराग्राफ 17.4.19)।*

5.1.1.6 अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम में 2002 में संशोधन किया गया था तथा निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए:

- भारत सरकार, किसी राज्य सरकर द्वारा अनुरोध किए जाने पर, एक वर्ष के अन्दर एक अधिकरण स्थापित करेगी।
- अधिकरण उसे भेजे गए मामलों की जाँच-पड़ताल करेगा तथा अपनी रिपोर्ट तीन वर्ष की अवधि के अन्तर प्रस्तुत करेगा (भारत सरकार अवधि को दो और वर्ष तक बढ़ा सकती है)।

- अधिकरण का निर्णय, केन्द्रीय सरकार द्वारा सरकारी राजपत्र में उसके प्रकाशन के बाद, उसी प्रकार प्रभावी होगा जैसे कि उच्चतम न्यायालय का आदेश अथवा डिक्री प्रभावी होती है।

5.2 अन्तर–राज्य नदी विवादों से सीखे गए पाठ

5.2.1 वर्ष 1956 में अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम के अधिनियमन के बाद से पाँच अन्तर-राज्य विवाद अधिकरणों की स्थापना, कृष्णा, गोदावरी, नर्मदा, कावेरी और रावी-ब्यास नदियों के संबंध में जल विवादों के अधिनिर्णयन के लिए, की गई है।

5.2.1.1.1 कृष्णा और गोदावरी

5.2.1.1.1 गठन के कार्यकरण की समीक्षा करने के लिए, राष्ट्रीय आयोग ने, कृष्णा नदी के पानी के संबंध में उत्पन्न विवाद के मामले में विभिन्न घटनाओं का ठीक ही संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया है।[27]

"5.8 कृष्णा जल विवाद अधिकरण

(क) कृष्णा, भारतीय उपमहाद्वीप की दूसरी सबसे बड़ी नदी है। पश्चिमी घाटों की महादेव श्रृंखला में महाबालेश्वर के निकट निकलने वाली यह नदी, बंगाल की खाड़ी में गिरने से पहले महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश के बीच से 1392 कि. मी. लम्बाई तक बहती है। 2,55,949 वर्ग कि. मी. के कुल पृष्ठ क्षेत्र में से 6821 वर्ग कि. मी. महाराष्ट्र में, 1,11,959 वर्ग कि. मी. कर्नाटक में और 75369 वर्ग कि. मी. आन्ध्र प्रदेश में है।

(ख) 1951 में, बोम्बे, हैदराबाद और मद्रास राज्यों (कर्नाटक सहित कुल चार तटवर्ती राज्यों में से) द्वारा तैयार किए जाने वाले प्रमुख विकास प्रस्तावों की पृष्ठ भूमि में, उनके बीच उपलब्ध आपूर्ति का विभाजन करते हुए एक करार तैयार किया गया था। तथापि, करार के अनुसमर्थन को अस्वीकार करते हुए कर्नाटक के साथ विवाद उत्पन्न हो गया ।

(ग) अनेक अन्तर-राज्य सम्मेलन बुलाने के लिए केन्द्रीय सरकार के सर्वोत्तम प्रयासों के बावजूद, विवाद का निपटारा नहीं हो सका। इसके अलावा, राज्यों ने मामले को अधिकरण को भेजा। तदनुसार, कृष्णा जल विवाद अधिकरण का अप्रैल 1969 में गठन किया गया तथा मामला उसे भेजा गया।

5.9 कृष्णा जल विवाद: परस्पर विरोधी दावे

(क) निष्कर्ष रूप में कर्नाटक का कहना था कि 1951 की समझ एक करार के रूप में परिणत नहीं हुई, बाध्यकर नहीं है और इसलिए जल का समान रूप से बँटवारा किया जाना

[27] स्त्रोत: http://lawmin.nic.in/ncrwc/finalreport/v2b3-6.htm

चाहिए। आन्ध्र प्रदेश की परियोजनाओं और 67.5 टी एम सी से अधिक कृष्णा जल के पश्चिम दिशा में विचलन के लिए महाराष्ट्र के प्रस्ताव पर रोक लगाई जानी चाहिए।

(ख) महाराष्ट्र ने भी 1951 के समझौते को अस्वीकार कर दिया; इसके अलावा उसने उसकी पूर्व सहमति के बिना अन्य राज्यों की परियोजनाओं को कार्यान्वित करने पर भी आपत्ति की । निर्भर योग्य प्रवाह और साथ ही उसके समान बटवारे की भी मांग की गई।

(ग) इसके विपरीत, आन्ध्र प्रदेश ने 1951 के समझौते की वैद्यता की पुष्टि की और कर्नाटक तथा महाराष्ट्र को उसे तोड़ने के लिए कसूरवार ठहराया । उसने, अपने-अपने हिस्से के रूप से प्रत्याशित से अधिक पानी का उपयोग करने के लिए निर्माण कार्य आयोजित करने से रोकने के लिए एक निषेधाज्ञा जारी करने की मांग की। उसेने डेल्टा के लिए तथा आन्ध्र प्रदेश के अन्य सिंचाई कार्यों के लिए भी पानी के प्रवाह को रोकने से मना करने की भी मांग की।

<u>5.11 कृष्णा अधिकरण की अवधि (1969-76)</u>

कृष्णा अधिकरण की स्थापना अप्रैल 1969 में हुई थी तथा उसने अपनी रिपोर्ट पाँच वर्ष से भी कम समय में, दिसम्बर 1973 में भारत सरकार को प्रस्तुत की। तथापि, तीन महीने के अन्दर ही सभी पक्षकार राज्यों और भारत सरकार ने अधिकरण को और संदर्भ भेजे। अधिकरण की एक और रिपोर्ट मई 1976 में प्रस्तुत की गई जिसमें उसने पुनः सृजित प्रवाहों के संबंध में, जैसा उसने उपयुक्त समझा, स्पष्टीकरण और मार्गदर्शन प्रस्तुत किया। इस प्रकार कुल मिलाकर अधिकरण को अधिनिर्णयन की प्रक्रिया को पूरा करने में सात वर्ष लगे।"

यद्यपि कृष्णा अधिकरण ने विवाद के संबंध में अपना अवार्ड 1976 में दे दिया, तथापि विवाद का समाधान नहीं हो सका। अन्तर-राज्य नदी कृष्णा के जल के विभाजन और उसकी नदी घाटियों से संबंधित विवाद के अधिनिर्णयन के लिए 2 अप्रैल 2004 को एक नया कृष्णा जल विवाद अधिकरण (के डब्ल्यु डी टी) गठित किया गया। महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश पक्षकार राज्यों द्वारा फाइल किए गए अन्तरिम राहत आवेदन-पत्र के मामले में, के डब्ल्यु डी टी ने, आवेदन पत्र में प्रार्थित अन्तरिम राहत प्रदान करने की मनाही करते हुए 9 जून 2006 को आदेश पारित किए और साथ ही कतिपय मानदण्डों का भी उल्लेख किया जिससे कि अधिकरण के समक्ष विवाद के अधिनिर्णयन में सुविधा हो सके। बाद में, आन्ध्र प्रदेश राज्य ने अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम 1956 की धारा 5(3) के अधीन वादकालीन आवेदन-पत्र पेश किया जिसमें 9 जून 2006 के अधिकरण के आदेश के संबंध में और आगे व्याख्या/मार्गदर्शन की मांग की गई। अधिकरण ने, सितम्बर और अक्तूबर 2006 में आयोजित अपनी सुनवाई में अपने सम्मुख विवाद के अधिनिर्णयन हेतु 29 मुद्दे तय किए। 26 अप्रैल 2007 को अधिकरण ने आई एस डब्ल्यु डी अधिनियम

1956 के अधीन वादकालीन आवेदन पत्र का निपटान किया जिसमें कोई व्याख्या देने से मना कर दिया। अधिकरण की और आगे सुनवाई मासिक आधार पर चल रही है। [28]

5.2.1.1.2 गोदावरी के जल के संबंध में विवाद के मामले में, यद्यपि अधिनिर्णयन कार्यवाही चल रही थी, पक्षकार राज्यों, यथा महाराष्ट्र आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और कर्नाटक ने 1975 में अनेक अन्तर-राज्य करार निष्पादित किए। बाद में, 1978-79 के दौरान पक्षकार राज्यों के बीच, विभिन्न सिंचाई परियोजनाओं के संबंध में द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय समझौते भी किए गए। गोदावरी जल विवाद अधिकरण ने इन सभी समझौतों को ध्यान में रखा और पक्षकार राज्यों के अनुरोधों को समझते हुए उन्हें जुलाई 1980 में अन्तिम अवार्ड सम्मिलित किया। [29]

5.2.1.2 नर्मदा

5.2.1.2.1 जुलाई 1968 में गुजरात ने अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिनिर्णयन हेतु मामला संदर्भित किया। केन्द्रीय सरकार ने, नर्मदा जल को बाँटने तथा नर्मदा नदी घाटी विकास के संबंध में अधिनिर्णयन हेतु, न्यायाधीश वी. रामास्वामी की अध्यक्षता में, 6 अक्तूबर 1969 को नर्मदा जल विवाद अधिकरण (एन डब्ल्यु डी टी) का गठन किया। अधिकरण ने, अपना अवार्ड 7 दिसम्बर 1979 को दिया, जिसे भारत सरकार द्वारा 12 दिसम्बर 1979 को अधिसूचित किया गया जिसके अनुसार यह विवाद के पक्ष्कारों के लिए अन्तिम और बाध्यकर हो गया।[30] यह, मध्य प्रदेश और गुजरात के बीच जल के आवंटन और तत्कालीन प्रधान मंत्री के नेतृत्व में तीन वर्ष की अवधि के दौरान अनौपचारिक चर्चाओं के माध्यम से नर्मदा बांध की ऊँचाई के संबंध में दो बड़े मुद्दों का पहले से निपटारे द्वारा सुकर हो सका। बाद में, आवंटन के प्रश्न पर नहीं बल्कि बाँध की ऊँचाई, जलमग्नता के मुद्दे, लोगों के विस्थापन और उनके पुनर्वास के संबंध में विवाद उत्पन्न हुए। नर्मदा बचाओ आन्दोलन (एन बी ए) एक एन जी ओ ने, जिसने मुद्दे पर शोर मचाया था, बाँध की ऊँचाई के संबंध में निर्णय को 1994 में एक सार्वजनिक हित याचिका (पी आई एल) के माध्यम से उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी। उच्चतम न्यायालय ने 18 अक्तूबर 2000 को अपना निर्णय दिया।

5.2.1.3 कावेरी

5.2.1.3.1 कावेरी नदी के जल के आंवटन के संबंध में विवाद 100 वर्ष से भी अधिक पुराना है। 1892 में, मैसूर के शाही राज्य और मद्रास प्रेजीडेन्सी के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षरित किए गए थे। 1892 के

[28] स्त्रोत: जल संसाधन मंत्रालाय की वेबसाइट http://www.wrmin.nic.in/index3.asp ?>subsublinkid=374&langid=1&sslid=39 से 1.2.2008 को पुन: प्राप्त

[29] स्त्रोत: जल संसाधन मंत्रालाय की वेबसाइट http//wrmin.nic.in/index3.asp ?subsublinkid=753langid=1&sslid=390, से 1.2.2008 को पुन: प्राप्त

[30] स्त्रोत: जल संसाधन मंत्रालय की वेबसाइट http//wrmin.nic.in/index3.asp ?subsublinkid=754langid=1&sslid=392 से 1.2.2008 को पुन: प्राप्त

समझौते में, विवाद के परामर्श और समाधान के लिए एक रूपरेखा तय की गई थी, किन्तु दोनों सरकारों ने समझौते से नाराजगी जाहिर की। 1924 में एक नए समझौते पर हस्ताक्षर किए गए जिसमें मैसूर में के आर एस बाँध और मद्रास में मेत्तूर जलाश्य द्वारा की जाने वाली सिंचाई की क्षमता और सीमा विनिर्दिष्ट की गई। 1924 के समझौते में 50 वर्ष के बाद, अर्थात 1974 में कतिपय खण्डों की समीक्षा करने की व्यवस्था की गई, किन्तु कोई समीक्षा नहीं की गई और न ही न तो समझौते को समाप्त किया गया और न ही उसका नवीकरण किया गया। केन्द्रीय सरकार द्वारा आयोजित चर्चाओं और कर्नाटक तथा तमिलनाडु के बीच दो दशकों से अधिक समय के दौरान आयोजित बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकला। जुलाई 1986 में, तमिलनाडु ने, अन्तर-राज्य जल विवाद अधिनियम के तहत एक अधिकरण स्थापित करने के लिए, केन्द्रीय सरकार से औपचारिक अनुरोध किया। अन्ततः जून 1990 में अधिकरण की स्थापना की गई। अधिकरण ने 1991 में एक अन्तरिम आदेश पारित किया जिसकी वजह से बहुत हिंसा हुई। अधिकरण के अन्तिम आदेश पर, जो हाल ही में आया कोई सन्तुष्टि व्यक्त नहीं की गई। मामले को, "विशेष अनुमति याचिका" के रूप में उच्चतम न्यायालय के समक्ष फिर से उठाया गया है।

5.2.1.4 रावी-ब्यास

5.2.1.4.1 राजीव लोंगोवाल समझौते की शर्तों के अन्तर्गत जिसमें पंजाब, हरियाण और राजस्थान के नदी जल दावों की जाँच पड़ताल करने के लिए एक अधिकरण स्थापित किए जाने की व्यवस्था थी, जनवरी 1986 में एक अध्यादेश के जरिए एक अधिकरण स्थापित किया गया था। अधिकरण ने 1987 में अपना अवार्ड दिया किन्तु पंजाब ने इस आधार पर अवार्ड का विरोध किया कि अधिकरण ने उपलब्ध निःशुल्क पानी का अधिक अनुमान लगाया है। हरियाणा ने इस आधार पर उच्च्तम न्यायालय से सम्पर्क किया कि अधिकरण द्वारा कोई स्पष्ट निर्णय नहीं दिया गया है। जनवरी 2002 में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि पंजाब को 12 महीने के अन्दर सतलज-यमुना संयोजन (एस वाई एल) नहर का निर्माण कार्य पूरा करना चाहिए। जनवरी 2003 में अन्तिम तिथि समाप्त हो गई तथा जून 2004 में उच्चतम न्यायालय ने एस वाई एल नहर के अनिर्मित भाग का निर्माण करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निर्देश दिया। जुलाई 2004 में पंजाब ने पंजाब करार समाप्ति अधिनियम 2004 पारित कर दिया, जिसके अनुसार पंजाब, हरियाणा, राजस्थान दिल्ली और हिमाचल प्रदेश के बीच 1994 के यमुना करार व सभी अन्य अवार्डों को समाप्त कर दिया गया। पंजाब अधिनियम के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने फिर से निर्देश देने के लिए उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक याचिका दायर की। भारत के राष्ट्रपति ने पंजाब अधिनियम का मामला जुलाई 2004 में उच्चतम न्यायालय को संदर्भित किया। उच्चतम न्यायालय ने एस वाई एल नहर के शेष भाग का निर्माण करने के लिए केन्द्रीय सरकार को निर्देश देते हुए अगस्त 2004 में अपने पिछले आदेश को बहाल रखा। विवाद का अभी तक समाधान नहीं हुआ है।

5.2.1.5 विगत से सर्वाधिक महत्वपूर्ण पाठ यह मिला है कि केन्द्रीय सरकार दृढ़ता के साथ कार्रवाई करने में असमर्थ रही है और सामान्यत: एक न्यूनतमवादी रूख अपनाया है। अन्य पाठ यह है कि अधिकरण की कार्यवाहियों से पहले और बाद में विवादों के कारण देरियों में लगे समय की लागत, उत्पादन की हानि, किसानों की आय वृद्धि में कमी और सिंचाई पद्धतियाँ निर्मित करने की बढ़ती लागत, बहुत अधिक थी। ऐसे अवार्डों की अन्तिमता के संबंध में संविधान में स्पष्ट प्रावधानों के बावजूद, अधिकाधिक राज्य अधिकरणों के अवार्डो के अनुपालन के प्रति विरोधी होते जा रहे हैं। एक अन्य कारण यह है कि अधिकरण गठित करने और अवार्ड देने तथा अन्तरिम अवार्डों की उदघोषणा करने में बहुत ज्यादा समय लगता है जिसकी वजह से और जटिलताएं पेदा होती हैं। अवार्ड दिए जाने के बाद उनकी व्याख्या और कार्यान्वयन में समस्याएं पैदा होती हैं तथा ऐसे अवार्डों की बाध्यकर प्रवृत्ति को लागू करने के लिए कोई तंत्र नहीं है। अधिकरणों के अवार्डों की समीक्षा करने पर न्यायालयों पर रोक है किन्तु फिर भी सम्बद्ध मुद्दों के विषय में उच्चतम न्यायालय से अनुरोध किया जाता है। उच्चतम न्यायालयों के सामने उठाए जाने वाले प्रश्न सामान्यत: पानी के आवंटनों के विषय से संबंधित नहीं होते बल्कि कम वर्षा वाले वर्षों के दौरान पानी के बटवारे के प्रश्न और पर्यावरणीय पहलुओं, लोगों के विस्थापन और पुनर्वास और विशिष्ट परियोजनाओं के संदर्भ में मानवाधिकारों से संबंधित होते हैं। ऐसे संदर्भों से विवादों के निपटान और परियोजनाओं के कार्यान्वयन में वर्षों की देरी होती है।

5.1 दक्षिण अफ्रीकी उदाहरण –राष्ट्रीय जल अधिनियम, 1998

अधिनियम के अन्तर्गत, राष्ट्रीय जल संसाधनों और उनके उपयोग तथा प्राधिकार की, लाभप्रद उपयोग हेतु जल के समानतापूर्वक आवंटन, पानी के पुनर्वितरण और अनतर्राष्ट्रीय जल मामलों सहित, राष्ट्रीय सरकार की समग्र जिम्मेदारी को स्वीकार किया गया है। जल संसाधनों के संरक्षण, उपयोग, विकास, परिरक्षण, प्रबंधन और नियंत्रण में संधारणीय और समानता को प्रमुख मार्गदर्शक सिद्धान्तों के रूप में निर्धारित किया गया है। अधिनियम के इन मार्गर्शी सिद्धान्तों में वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों की बुनियादी मानवीय जरूरतों, जल संसाधनों को संरक्षित रखने की जरूरत, कुछ जल संसाधनों को अन्य देशों के साथ बाँटने की जरूरत, पानी के उपयोग के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक विकास प्रोत्साहित करने की जरूरत और उपयुक्त संस्थान सथापित करने की जरूरत को समझा गया है ताकि अधिनियम का उद्देश्य प्राप्त हो सके।

इसके अन्तर्गत वह रूपरेखा दी गई है जिसके अन्दर, विनिश्चित जल प्रबंधन क्षेत्रों में, क्षेत्रीय अथवा पृष्ठ क्षेत्र स्तर पर जल का प्रबंध किया जाएगा। कानून के अन्तर्गत एक "रिजर्व" की व्यवस्था है, जो भागों में है- बुनियादी मानव जरूरतें रिजर्व और पारिस्थितिकीय रिजर्व। बुनियादी मानव जरूरतें रिजर्व के अन्तर्गत प्रसंगाधीन जल संसाधन से पूरी की जाने वाली व्यक्तियों की अनिवार्य जरूरतों के लिए व्यवस्था है तथा इसमें पीने, खाना तैयार करने और व्यक्तिगत सफाई के लिए पानी शामिल है। पारिस्थितिकीय रिजर्व, जल संसाधनों की जलीय पारि-पद्धतियों को संरक्षित रखने के लिए आवश्यक जल से संबंधित है। अधिनियम के अन्तर्गत पृष्ठ क्षेत्र मंत्री द्वारा प्रबंधन एजेन्सियों की धीरे-धीरे स्थापना की भी व्यवस्था की गई है। इन एजेन्सियों की स्थापना का उद्देश्य जल संसाधन प्रबंधन क्षेत्रीय अथवा पृष्ठ क्षेत्र स्तर पर सौंपना तथा राष्ट्रीय जल संसाधन कार्यनीति की रूपरेखा के अन्दर, स्थानीय समुदायों को शामिल करना है।

5.2.1.6 इसलिए आयोग यह सुझाना चाहेगा कि केन्द्रीय सरकार को, जल संसाधन मंत्रालय के माध्यम से, अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों का एक पक्षकार बनाया जाना चाहिए तथा अधिकरणों द्वारा दिए जाने वाले अवार्डों को कार्यान्वित करने के लिए एक प्रवर्तन तंत्र होना चाहिए। अनुच्छेद 262(1) के अन्तर्गत पहले

ही उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार पर रोक लगा दी गई है किन्तु सम्बद्ध कानूनी, अधिकार क्षेत्र, पर्यावरणीय और संवैधानिक मुद्दों के विषय में मामलों को अभी भी वहाँ उठाया जाता है। क्योंकि अनुच्छेद 262 संविधान में केवल एकमात्र अनुच्छेद है जो न्यायालयों के क्षेत्राधिकार पर रोक लगाता है इसलिए इस संवैधानिक प्रावधान को नोट करना न्यायालयों के लिए आवश्यक होगा।

5.2.1.7 अन्तर-राज्य नदियों के मामले में विवाद समाधान के एक उपाय के रूप में आयोग यह सुझाव देना चाहेगा कि संसाधन आयोजना एक जलविज्ञानीय इकाई के रूप में की जानी चाहिए जैसे कि कुल मिलाकर नाली व्यवस्था बेसिन के रूप में। इस संबंध में, राष्ट्रीय एकीकृत जल संसाधन विकास आयोग ने, 1999 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में एक निकाय के रूप में नदी बेसिन संगठन (आर बी ओ) स्थापित करने की सिफारिश की थी जिसमें संबंधित राज्य सरकारों, स्थानीय शासनों और जल उपभोक्ताओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा तथा परस्पर चर्चा व सहमति के लिए एक मंच उपलब्ध होगा। राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की थी कि आर बी ओ की एक महापरिषद होनी चाहिए, जिसमें राज्य सरकार के प्रतिनिधि के रूप में मंत्री, विरोधी पक्ष का नेता, बेसिन में प्रत्येक जिले से चुनिन्दा पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों के प्रतिनिधि तथा बेसिन में प्रत्येक जिले से जल जिलों के प्रतिनिधि सम्मिलित

5.2 : फ्रान्सिसी उदाहरण–एकीकृत बेसिन प्रबंधन

फ्रांस में बेसिन स्तर पर जल प्रबंधन का विकेन्द्रीकरण एकीकृत बेसिन प्रबंधन का सबसे पुराना और अनूठा उदाहरण है और अब इस विधि का प्रयोग अनेक देशों में किया जा रहा है। अनेक वर्षों के अध्ययन और वाद-विवाद के बाद अपनाई गई इस पद्धति के अन्तर्गत अनेक उत्तम बातें शामिल हैं तथा यह अन्य देशों के लिए एक माडल का काम कर सकती है। इसके प्रमुख तत्वों में सम्मिलित हैं :

- सुपरिभाषित कानून और विनियम: 1964 और 1992 के जल अधिनियम फ्रान्सिसी पद्धति का आधार है। पहले कानून में विशिष्ट कोटि उद्देश्य और प्रदूषण नियंत्रण के संबंध में विनियम सम्मिलित हैं तथा परवर्ती का उद्देश्य जल प्रबंधन के संबंध में कठोर यूरोपीय निर्देशों का अंशत: पालन करना है।
- जलरेखीय बेसिन प्रबंधन: यह पद्धति छ: प्रमुख जलरेखीय बेसिनों पर आधारित है। ये, देश के चार मुख्य पृष्ठक्षेत्र इलाकों और दो गहन आबादी तथा तीव्र औद्योगिक कार्यकलाप के क्षेत्रों के अनुरूप है।
- व्यापक प्रबंधन, विकेन्द्रीकरण और भागीदारी: छ: बेसिनों में से प्रत्येक में एक बेसिन समिति और तदनुरूपी कार्यान्वयन एजेन्सी है जिसे जल बोर्ड के नाम से जाना जाता है। बेसिन समिति, जिसे इसके प्रतिनिधित्व और शक्तियों के कारण "जल संसद" के नाम से भी जाना जाता है, क्षेत्रीय न कि केन्द्रीय सरकार -नियंत्रण को परिलक्षित करती है तथा यह बेसिनों में विभिन्न हित समूहों की भूमिका और जिम्मेदारी को प्रोत्साहित करने के लिए गठित की गई है, जल बोर्ड (नदी बेसिन एजेन्सी), समिति के निर्देशों को, कार्यान्वित करने के साथ-साथ, कतिपय तकनीकी मामलों (जैसे कि राष्ट्रीय मानक बनाए रखना) के लिए सेवाएं अन्य सार्वजनिक अथवा निजी फर्मों द्वारा प्रदान की जाती हैं (अधिकाधिक प्रतियोगी बोली के माध्यम से) और इनका चयन समुदायों द्वारा किया जाता है।
- लागत वसूली और प्रोत्साहन: जल सेवाएं प्रचालित करने वाली कम्पनियां तथा इकाइयाँ उनके द्वारा एकत्र किए जाने वाले प्रभारों का एक अंश बेसिन एजेन्सियों को अदा करती हैं। इसके अलावा, बेसिन एजेन्सी द्वारा एक "प्रदूषण फीस" (एक दण्ड) एकत्र की जाती है। इन राजस्वों में से अधिकांश को पुन: पद्धति में निवेशित कर दिया जाता है ताकि तकनीकी सहायता प्रदान की जा सके और सुरक्षित व शुद्ध पानी सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रक की मदद की जा सके।
- अनुसंधान को समर्थन प्रदान करना: 1992-96 में जल बोर्ड का लगभग 14 प्रतिशत व्यय अनुसंधान और विकास बजट के लिए था।

स्त्रोत: सेरागेल्डिन, 1995, टूवर्डस सस्टेनेबिल मेनेजमेंट आफ वाटर रिसोर्सिज", विश्व बैंक

होंगे। राष्ट्रीय आयोग ने यह भी सिफारिश की थी कि महापरिषद के अलावा, स्थायी सचिवालय के साथ एक स्थायी समिति होनी चाहिए।

5.2.1.8 आयोग, सुझाए गए ढंग के अनुसार आर बी ओ की स्थापना के संबंध में राष्ट्रीय एकीकृत जल संसाधन विकास आयोग के सुझाव का पूर्णत: समर्थन करता है। जैसा कि फ्रान्सिसी, आस्ट्रेलियाई और चीनी अनुभव से पता चलता है, नदी बेसिन आयोजना और कार्यान्वयन पालन की जाने वाली एक आदर्श पद्धति है। पद्धति में उन देशों में अच्छा काम किया है और हमारे लिए आस्ट्रेलिया का अनुभव प्रासंगिक है क्योंकि इसकी संघीय पद्धति है। आयोग, नदी बोर्ड अधिनियम के स्थान पर एक ऐसे विधान की स्थापना की सिफारिश करता है जिसके अन्तर्गत, प्रत्येक अन्तर-राज्य नदी के लिए नदी बेसिन संगठनों की स्थापना के अलावा लक्ष्यों, जिम्मेदारियों और आर बी ओ के संबंध में प्रबंधन की व्यवस्था की जाए;

क – लक्ष्य :

(क) बेसिन के विकास के लिए सिद्धान्तों का प्रतिपादन,

(ख) बड़ी परियोजनाओं के संबंध में मार्गनिर्देश जारी करना,

(ग) तकनीकी मानक निर्धारित करना,

(घ) सभी लाभदायक उपयोगों हेतु जल की गुणवत्ता बनाए रखना व उसमें सुधार करना,

(ङ.) भू-जल के विकास के लिए एक रूपरेखा निर्धारित करना,

(च) भू-अवनयन को नियंत्रित करना,

(छ) भू-संसाधनों के संधारणीय उपयोग और बेसिन के प्राकृतिक परिवेश को संरक्षित रखने के लिए उनका पुनर्वास

5.3: चीनी उदाहरण–नदी बेसिन आयोग

चीन जैसे विशाल और आबादी वाले देश में जल प्रबंधन बड़ा जटिल है। जल प्रबंधन के लिए प्राधिकार, जल संसाधन मंत्रालय के माध्यम से राष्ट्रीय राज्य परिषद को प्राप्त होता है जिसकी प्रान्तीय और देशज स्तरों पर जल प्रबंधन प्राधिकार सौंपने की बड़ी जिम्मेदारी है। चीन में सात बड़े नदी बेसिन आयोग हैं - यंगत्जे, येलो, हुएही, हईहे, पर्ल, सांगलिओ और तइहु (यह अन्तिम झील तइहु पर ध्यान केन्द्रित करता है)- जो ऊपर से लेकर प्रान्तीय, देशज और म्युनिसिपल प्राधिकारियों तक के लिए जिम्मेदार हैं। राज्य बेसिन आयोग, स्थानीय, प्रान्तीय और राज्य एजेन्सियों के संबंध में आयोजना, कार्यान्वयन और पर्यवेक्षण जिम्मेदारियों का एकीकरण और विभिन्न मंत्रालयों के कार्यकलापों का समन्वयन करते हैं।

नदी बेसिन आयोगों की जिम्मेदारियाँ हैं :

क- जल संसाधन मंत्रालय की ओर से राष्ट्रीय जल कानून लागू करना तथा कानून के कार्यान्वयन में स्थानीय स्तरों पर जल विभागों के साथ सहयोग करना।

ख- राज्य परिषद द्वारा अनुमोदित योजना के आधार पर जल प्रबंधन तथा बाढ़ नियंत्रण पर अमल करना।

ग- बेसिन में समग्र आयोजन, विकास उपयोग और जल संसाधनों का संरक्षण आयोजित करना।

घ- बेसिन में प्रान्तों और स्थानीय एजेन्सियों के बीच जल सम्बद्ध कार्यकलापों को समन्वित करना।

नदी बेसिन आयोगों को, जैसे कि यंगत्जे और येलो नदियों के बेसिन आयोगों को आपदा प्रबंधन (अर्थात बाढ़ नियंत्रण) प्रदूषण नियंत्रण योजना और जल विज्ञानीय प्रबंधन के लिए बेसिन पक्ष प्रबंधन योजनाएं तैयार करने में महत्वपूर्ण सफलता मिली।

टिप्पणी: चीन में, निचली प्रणालियों और/अथवा शासनों को ऐसी शक्तियां प्राप्त हैं जो उन्हें राष्ट्रीय सरकार द्वारा सौंपी गई हैं।

स्त्रोत: कार्यवाही, सिंचाई और नाली व्यवस्था के संबंध में मलेशियाई राष्ट्रीय सम्मेलन, खण्ड तीन।

ख–जिम्मेदारियां

(क) राज्यों के लिए जल आवंटन और विभिन्न प्रमुख प्राकृतिक संसाधन कार्यनीतियों का प्रशासन,

(ख) जल गुणवत्ता, भू-संसाधनों, प्रकृति संरक्षण और सामुदायिक सहयोग हेतु तकनीकी जिम्मेदारी,

(ग) डाटा का संग्रहण

ग– जल प्रबंधन जिम्मेदारियां

(क) अन्तर-राज्य नदियों के विनियमन का अनेक प्रयोजनार्थ, घरेलू उपभोक्ताओं और सिंचाई हेतु आपूर्ति सहित, जल का प्रवाह और कोटि बनाए रखने के लिए जल गुणवत्ता के मानीटरन का कार्यक्रम,

(ख) उपयुक्त भू-उपभोग प्रथाओं, जल उपचार के सर्वोत्तम व्यावहारिक साधनों तथा नदी से बाहर निपटान को प्रोत्साहित करने के लिए नदी प्रबंधन का समन्वयन,

(ग) पारि-पद्धति के परिरक्षण और परती भूमियों के प्रबंधन के समन्वयन हेतु कार्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी।

5.3 राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद

5.3.1 राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद की स्थापना मार्च 1983 भारत सरकार द्वारा निम्नलिखित कार्यों के निष्पादन के लिए की गई थी:

(क) राष्ट्रीय जल नीति निर्धारित करना तथा उसकी समय-समय पर समीक्षा करना,

(ख) इसे राष्ट्रीय जल विकास एजेन्सी और नदी बेसिन आयोग द्वारा प्रस्तुत जल विकास योजनाओं पर विचार और उनकी समीक्षा करना,

(ग) जल योजनाओं को ऐसे संशोधनों के साथ स्वीकृति की सिफारिश करना जिन्हें उपयुक्त और आवश्यक समझा जाए,

(घ) ऐसे और अध्ययन आयोजित करने के लिए निर्देश देना जो योजनाओं और उसके घटको के पूर्ण विचारार्थ आवश्यक हों,

(ड.) जल योजनाओं के विशिष्ट घटकों के संबंध में अन्तर-राज्य मतभेद तथा ऐसे अन्य मुद्दों का समाधान करने के लिए क्रियाविधियों के बारे में सलाह देना, जो परियोजनाओं की योजना तैयार और कार्यान्वित करने के दौरान उठें,

(च) इष्टतम विकास और लोगों के लिए अधिकतम लाभों को ध्यान में रखते हुए, विभिन्न लाभार्थियों द्वारा जल संसाधनों के उचित विभाजन और उपयोग हेतु प्रथाओं और प्रक्रिया, प्रशासनिक व्यवस्थाओं के संबंध में सलाह देना।

(छ) ऐसी अन्य सिफारिशें करना जिनसे विभिन्न क्षेत्रों में जल संसाधनों के शीघ्र और पर्यावरणीय सुदृढ़ तथा आर्थिक विकास को बढ़ावा मिले।

5.3.2 परिषद के अध्यक्ष प्रधान मंत्री हैं तथा केन्द्रीय जल संसाधन मंत्री इसके उपाध्यक्ष हैं तथा जल संसाधन राज्य मंत्री, संबंधित केन्द्रीय मंत्री/राज्य मंत्री, सभी राज्यों में मुख्य मंत्री और संघ राज्य क्षेत्रों के राज्यपाल/प्रशासक परिषद के सदस्य हैं। सचिव, जल संसाधन मंत्रालय, परिषद के सचिव हैं। परिषद की पहली बैठक अक्तूबर 1985 में हुई थी और इसने 1987 में एक राष्ट्रीय जल नीति तैयार की। यद्यपि परिषद की वर्ष में एक बैठक अपेक्षित है तथापि प्रायः ऐसा नहीं होता। जहाँ तक नदी बेसिन आयोजना और प्रबंधन तथा जल के प्रभावी उपयोग का संबंध है, परिषद का कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा है। परिणाम यह रहा है कि भारत एक एकीकृत नदी बेसिन विकास के जरिए अपने जल संसाधनों का विकास करने में असमर्थ रहा है और राज्यों के बीच लगातार विवाद एक आम और संघर्षपूर्ण विषय बन गए हैं।

5.3.3 क्योंकि यह एक उच्च अधिकार-प्राप्त निकाय है इसलिए परिषद को और अधिक सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। वास्तव में जरूरत इस बात है कि परिषद और इसके सचिवालय को और अधिक सक्रिय होना चाहिए, इसे विस्तारपूर्वक संस्थागत व विधायी सुधार सुझाने चाहिए, अन्तर-राज्य जल विवादों के लिए प्रक्रियाएं तैयार करनी चाहिए और लोगों के इष्टतम विकास को ध्यान में रखते हुए तथा लोगों के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हुए विभिन्न लाभभोगियों द्वारा संसाधनों के उपयोग के संबंध में प्रक्रियाएं, प्रशासनिक व्यवस्था व विनियम सुझाने चाहिए। सभी नदी बेसिन संगठनों के अध्यक्षों को, जब भी उनका गठन किया जाए, परिषद का सदस्य बनाया जाना चाहिए।

5.4 जल के संबंध में एक राष्ट्रीय कानून की जरूरत

5.4.1 भारत का कुल अनुमान 329 मिलियन हेक्टेयर भूमि के लिए लगभग 400 मिलियन हेक्टेयर (एम एच एम) वार्षिक है जो वर्षा के रूप में (97 प्रतिशत) तथा बर्फ के रूप में (3 प्रतिशत) है। इसमें से लगभग 17.5 प्रतिशत का तत्काल वाष्पीकरण हो जाता है। लगभग 41.25 प्रतिशत वनों और वनस्पति द्वारा सोख लिया जाता है, 12.5 प्रतिशत भूमिगत हो जाता है तथा 28.75 प्रतिशत सतही प्रवाह के रूप में बह जाता है। भारत में सतही जल उपलब्धता अधिकांशतः झीलों और नदियों में 185 एम एच एम है, जिसमें से 57.29 समुद्र अथवा अन्य देशों में प्रवाहित हो जाता है, 4.87 प्रतिशत का वाष्पीकरण

हो जाता है, 4.88 प्रतिशत भूमिगत हो जाता है तथा केवल 37.83 प्रतिशत खपत के लिए उपलब्ध होता है। भारत में लगभग 45.2 एम एच एम की क्षमता है जिसमें से फिलहाल 13.5 एम एच एम का उपयोग होता है।[31]

5.4.2 यद्यपि भारत में विश्व की 16 प्रतिशत आबादी है किन्तु विश्व के ताजे पानी में इसकी उपलब्धता केवल 4 प्रतिशत है। सामान्यत: जल के तनाव से मुक्त होने के लिए 1700 एम ^{3} प्रति व्यक्ति की उपलब्धता की जरूरत है जबकि 1000 एम ^{3} से कम की उपलब्धता को जल का अभाव समझा जाता है। भारत में प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता 1951 में 5200 एम^3 थी किन्तु यह 1991 में घटकर 2200 एम^3 रह गई तथा 2001 में और कम होकर 1820 एम^3 हो गई जो आबादी में वृद्धि को दर्शाता है। इसके और भी कम होने, 2025 में 1340 एम^3 और 2050 में 1140 एम^3 हो जाने की उम्मीद है। देश में हो रही जोरदार वृद्धि के फलस्वरूप आर्थिक कार्यकलापों में विस्तार के कारण अनेक प्रयोजनों हेतु पानी की मांग में वृद्धि हुई है। इस विकास के परिणामस्वरूप, जल की औसत उपलब्धता निकट भविष्य में जल-दबाव स्तर से भी नीचे हो जाने की उम्मीद है तथा देश के अन्दर व्यापक भिन्नताओं को देखते हुए, बहुत से भागों में जल-दबाव वाली स्थितियां पहले से ही कायम हैं।[32] ऐसी परिस्थितियों में जल के उपयोग में और अधिक बचत करने और जल संरक्षण के महत्व के बारे में लोगों के बीच अधिक जागरूकता पैदा करने की जरूरत है। इसके लिए एक ऐसी प्रणाली के आधार पर जल का विकास, उपयोग और प्रबंध करने की जरूरत है जिसमें राष्ट्रीय संदृश सम्मिलित हो।

5.4.3 जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा सितम्बर 1987 में एक राष्ट्रीय जल नीति तैयार की गई थी, किन्तु मार्गनिर्देशों के अभाव में इसे अब प्रचालनात्मक रूप लेना शेष है। जल के संबंध में एक राष्ट्रीय संदर्श का अनुमान लगाने और इसे प्रचलित करने का एक बेहतर तरीका कानून के साधन के माध्यम से होगा। इसलिए आयोग सिफारिश करना चाहेगा कि राज्यों के हितों और जरूरतों को ध्यान में रखते हुए एक राष्ट्रीय जल कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए। यह जरूरी है कि कानून में, कम से कम निम्नलिखित को शामिल किया जाना चाहिए:

- क - राष्ट्रीय जल कानून, सभी मामलों में, सार्वजनिक हित के निर्धारण, जल के संबंध में सभी पक्षकारों के अधिकारों और दायित्वों सहित संविधान के अध्यधीन और अनुरूप होना चाहिए।
- ख- सभी जल का उपयोग, चाहे वह जल चक्र में कहीं से भी पैदा होता हो, निर्धारित निकायों के जरिए विनियमन के अध्यधीन होना चाहिए।

[31] जाहन आर. वुड, "दि पालिसीज आफ वाटर रिसोर्स डवलपमेंट इन इण्डिया"

[32] योजना आयोग, दसवीं पंचवर्षीय योजना का मध्यावधि मूल्यांकन

ग- भूमि की दृष्टि से जल संसाधनों का स्थान स्वंय में उपयोग का कोई प्राथमिकतापूर्ण अधिकार प्रदान नहीं करेगा।

घ- जल चक्र की यूनिटी और इसके अन्तर-निर्भरता वाले तत्वों को, जहाँ यह वाष्पीकरण, मेघ और वर्षा, भू-जल, नदियों, जल स्थलों, नम भूमियों और समुद्र से जुड़ी है और जहाँ बेसिक जल विज्ञानीय इकाई पृष्ठ क्षेत्र है, स्वीकार किए जाने की जरूरत है।

ङ.- संसाधन आयोजना एक जल विज्ञानीय इकाई के रूप में, जैसे कि कुल मिलाकर अथवा उप-बेसिन के संबंध में, नाली व्यवस्था के रूप में की जानी चाहिए। सभी परियोजनाएं और प्रस्ताव, एक बेसिन अथवा उप-बेसिन के संबंध में एक ऐसी समग्र योजना की संरचना के अन्दर तैयार और विचारित की जानी चाहिए जिससे कि विकल्पों का सर्वोत्तम सम्भव मिश्रण प्राप्त किया जा सके।

च- संविधान और संगत कानूनों के अध्यधीन, उपलब्ध जल संसाधनों के विकास, बटवारे और प्रबंधन के संबंध में जिम्मेदारी बेसिन में अथवा क्षेत्रीय स्तर पर इस ढंग से विहित होगी कि रुचि रखने वाले पत्रकार पूर्ण रूप से भाग ले सकें।

छ- यह सुनिश्चित करते हुए कि प्रत्येक को पर्याप्त पेय जल सुलभ हो, अपेक्षित जल संरक्षित किया जाना चाहिए। उन पारिस्थितिकीय कार्यों को बनाए रखने के लिए जिन पर मानव निर्भर हैं, अपेक्षित जल की मात्रा, गुणवत्ता और विश्वसनीयता भी संरक्षित की जानी चाहिए ताकि मानवों द्वारा जल का उपयोग, अलग-अलग अथवा सामूहिक रूप से, पारि-पद्धतियों की दीर्घावधिक संघारणीयता से मेल खाए।

ज- प्रस्तावित कानून का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए एक अथवा अधिक विनियामक निकायों की स्थापना करने के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए।

झ- केन्द्रीय, राज्य और बेसिन स्तर एजेन्सियों को एकीकृत व मजबूत करते हुए तथा डाटा की गुणवत्ता व प्रसंस्करण क्षमताओं में सुधार करते हुए डाटा बैंकों और डाटाबेसों के एक नेटवर्क के साथ एक मानकीकृत राष्ट्रीय सूचना पद्धति कायम की जानी चाहिए।

5.5 सिफारिशें

क– अन्तर–राज्य नदी विवादों के मामले में केन्द्रीय सरकार को और अधिक सक्रिय व निश्चयात्मक बनना चाहिए तथा ऐसे विवादों की मांग के अनुसार तत्परता व सतत रूप से ध्यान के साथ कार्य किया जाना चाहिए।

ख– क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 262 में यह व्यवस्था है कि न तो उच्चतम न्यायालय का और न ही कोई अन्य न्यायालय का अन्तर–राज्य नदी विवादों के संबंध में कोई क्षेत्राधिकार होगा इसलिए यह आवश्यक है कि इस प्रावधान की भावना को पूरी तरह से समझा जाना चाहिए।

ग– नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के स्थान पर एक विधान अधिनियमित करके, प्रत्येक अन्तर –राज्य नदी के संबंध में नदी बेसिन संगठन (आर बी ओ) कायम किया जाना चाहिए जैसा कि राष्ट्रीय एकीकृत जल संसाधन विकास आयोग, 1999 की रिपोर्ट में सुझाया गया है।

घ– सभी नदी बेसिन संगठनों के अध्यक्षों को, जब भी उनका गठन किया जाए, राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद का सदस्य बनाया जाना चाहिए।

ड.–राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद और आर बी ओ को और अधिक सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। परिषद और इसके सचिवालय को और अधिक सक्रिय होना चाहिए, इसे विस्तारपूर्वक, संस्थागत व विधायी सुधार सुझाने चाहिए, अन्तर–राज्य जल विवादों के लिए प्रक्रियाएं तैयार करनी चाहिए और लोगों के इष्टतम विकास को ध्यान में रखते हुए तथा लोगों के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हुए विभिन्न लाभभोगियों द्वारा संसाधनों के उपयोग के संबंध में प्रक्रियाएं, प्रशासनिक व्यवस्था व विनियम सुझाने चाहिए।

च– एक ऐसी रूपरेखा के आधार पर, जिसमें दीर्घावधिक संदर्श को शामिल किया जाए, जल का विकास, संरक्षण, उपयोग और प्रबंध करने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय जल कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए जैसा कि ऊपर पैराग्राफ 5.4.3 में सुझाया गया है।

6

अनुसूचित जातियों से सम्बद्ध मुद्दे

6.1 प्रस्तावना

6.1.1 सार्वजनिक व्यवस्था पर अपनी रिपोर्ट में, आयोग ने "स्थापित व्यवस्था" और "सार्वजनिक व्यवस्था" के बीच भेद किया है। स्थापित व्यवस्था सदा ही कानून के नियमों के सिद्धान्तों के अनुसार नहीं हो सकती। समाज के अल्प सुविधा-प्राप्त वर्गों के शोषण को शोषणकर्ताओं द्वारा स्थापित व्यवस्था समझा जा सकता है। वांछनीय सामाजिक परिवर्तन के उद्देश्य वाले कानूनों और सार्वजनिक नीतियों के कारण कभी-कभी अल्पावधि में संघर्ष हो सकते हैं। फिर भी, ऐसे कानूनों को, यदि संविधान के मूल मूल्यों और मानवाधिकारों का संरक्षण किया जाना है, सख्ती के साथ लागू किए जाने की जरूरत है। अन्तिम विश्लेषण में; सार्वजनिक व्यवस्था, सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से सभी नागरिकों की आजादी और सम्मान को संरक्षण प्रदान करके, मजबूत होती है।

6.1.2 अनुसूचित जातियों के सदस्य देश में निर्धनतम वर्गों में हैं तथा उनके साथ सर्वाधिक भेदभाव किया जाता है। भेदभाव प्रायः समाजार्थिक शोषण, नागरिक अधिकारों की मनाही, सामाजिक बहिष्कार और यहाँ तक कि उनके विरूद्ध हिंसा के रूप में होता है जो कभी-कभी सामूहिक हत्याओं, बलात्कार, बस्तियां जलाने आदि का रूप ले लेता है।

6.2 संवैधानिक सुरक्षा

6.2.1 समाज के कमजोर वर्गों के हितों की सुरक्षा करने के लिए संविधान की स्कीम, पारम्परिक सामाजिक व्यवस्था पर आधारित अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की स्थिति में बदलाव करने के लिए एक तीन-आयामीय कार्यनीति को परिलक्षित करती है। इसमें सम्मिलित हैं [33]

क- संरक्षणः समानता लागू करने और अयोग्यताएं दूर करने के लिए विधिक/विनियामक उपाय। उनके साथ की गई शारीरिक हिंसा के विरूद्ध दृढ़ दण्डात्मक कार्रवाई की व्यवस्था करना; उन प्रथागत व्यवस्थाओं को समाप्त करना जिनसे उनके सम्मान और व्यक्तित्व को गहरी चोट पहुंचती है; उनकी मेहनत के फलों पर नियंत्रण और आर्थिक परिसम्पत्तियों और संसाधनों के संकेन्द्रण पर आक्रमण करने से रोकने और उनके लिए गारंटीशुदा हितों, अधिकारों और लाभों की रक्षा करने के लिए स्वायत्त निगरानी संस्थान स्थापित करना।

[33] अनु. जातियों के विरूद्ध अत्याचारों की रोकथाम के संबंध में रिपोर्ट (एन एच आर सी)

ख- क्षतिपूरक भेदभाव : सार्वजनिक सेवाओं, प्रतिनिधिक निकायों और शिक्षा संस्थानों में आरक्षण प्रावधान लागू करना।

ग- विकास: अनुसूचित जातियों व अन्य समुदायों की आर्थिक स्थितियों और सामाजिक स्थिति के बीच विशाल अन्तर को पाटने के लिए उपाय, संसाधनों के आवंटन और लाभों के विभाजन को शामिल करते हुए।

इस कार्यनीति को बाद में विभिन्न कानूनों के अधिनियमन, व्यापक निगरानी पद्धतियाँ कायम करके तथा अनुसूचित जातियों के समाजार्थिक विकास के लिए उपाय करके प्रचालनात्मक कर दिया गया।

6.2.2 संविधान में, अनुसूचित जातियों के लिए विशेष सुरक्षापायों की व्यवस्था करने की जरूरत को समझा गया है तथा अनेक अनुच्छेदों को सम्मिलित किया गया है जिनमें उनके संरक्षण और साथ ही उनके सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक हितों के प्रोत्साहन की भी व्यवस्था की गई है। संविधान के अनुच्छेद 17 के अनुसार अस्पर्श्यता को समाप्त कर दिया गया है तथा किसी भी रूप में इसके पालन की मनाही है। राज्य नीति के निर्देशात्मक सिद्धान्तों के अन्तर्गत अनुच्छेद 46 में निर्धारित है कि *"राज्य, विशेष सावधानी के साथ, लोगों के कमजोर वर्गों और विशेष रूप से अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को प्रोत्साहित करेगा और सामाजिक अन्याय व शोषण के सभी स्वरूपों से उनका बचाव करेगा।"* अनुच्छेद 15(4) के तहत राज्य को, सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों अथवा नागरिकों और अनु. जातियों/अनु. जनजातियों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए सशक्त बनाया गया है। अनुच्छेद 330 और 332 के तहत, लोक सभा और विधान सभाओं में अनु. जातियों/अनु.जनजातियों के लिए स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था है। संविधान के अनुच्छेद 338 के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग स्थापित करने की व्यवस्था है तथा यह निर्धारित है कि अनुसूचित जातियों के लिए संविधान अथवा उस समय लागू किसी अन्य कानून अथवा सरकार के किसी आदेश के अन्तर्गत व्यवस्थित सुरक्षोपायों से संबंधित सभी मामलों की जाँच पड़ताल और मानीटरन करना तथा ऐसे सुरक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करना आयोग का कर्त्तव्य होगा।

6.3 विधायी संरचना

6.3.1 भारत के संविधान के अनुच्छेद 17 (भाग III, मूलभूत अधिकार, समानता का अधिकार) के अन्तर्गत "अस्पर्श्यता " को समाप्त कर दिया गया है तथा किसी भी रूप मे इसके पालन की मनाही है तथा निर्धारित है कि "अस्पर्श्यता" के कारण उत्पन्न होने वाली अयोग्यता का लागू किया जाना कानून के अनुसार एक दण्डनीय अपराध है।

6.3.2 संविधान के अनुच्छेद 17 को लागू करने के उद्देश्य से, संविधान को अपनाए जाने के पाँच वर्षों के अन्दर, संसद द्वारा अस्पर्श्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 अधिनियमित किया गया। बाद में, इसके कार्यक्षेत्र का विस्तार करने के लिए अधिनियम को नवम्बर 1976 में संशोधित किया गया तथा इसका नाम "नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955" कर दिया गया। अधिनियम का विस्तार पूरे भारत में कर दिया गया है तथा अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों को संज्ञेय और साथ ही बगैर समझौते वाला बना दिया गया है। अधिनियम के अनुसार राज्यों के लिए यह अनिवार्य बना दिया गया है कि वे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 15 क (2) के अनुसार विशेष उपाय करें। ऐसे उपायों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- अस्पर्श्यता के कारण उत्पन्न किसी अयोग्यता से पीड़ित व्यक्तियों को कानूनी सहायता सहित, पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था ताकि वे ऐसे अधिकारों का उपयोग कर सकें;
- अधिनियम के उल्लंघन के संबंध में अभियोजन शुरू करने अथवा उनका पर्यवेक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति;
- अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना;
- ऐसे उपाय तैयार करने अथवा कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों की मदद करने के वास्ते ऐसे उपयुक्त स्तरों पर, जिसे राज्य सरकारें उचित समझे, समितियों की स्थापना; और
- इस अधिनियम के प्रावधानों के कार्यकरण का समय-समय पर सर्वेक्षण करने के लिए प्रावधान ताकि उसके बेहतर कार्यन्वयन के संबंध में उपाय सुझाए जा सकें।

6.3.3 इसके अलावा, अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के विरूद्ध अपराधों को नियंत्रित और भय कायम करने के लिए अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989, 30 जनवरी, 1990 से लागू किया गया जिसका मुख्य उद्देश्य *"अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के सदस्यों के विरूद्ध अत्याचारों के अपराधों को रोकना, ऐसे अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की व्यवस्था करना तथा ऐसे अपराधों और उनसे संबंधित अथवा प्रासंगिक अपराधों के पीड़ितों के लिए राहत और पुनर्वास की व्यवस्था करना है।"* अधिनियम के प्रावधान जम्मू और काशमीर राज्य को छोड़कर, पूरे भारत पर लागू हैं। अनुसूचित जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत व्यापक नियम भी 31 मार्च 1995 को अधिसूचित किए गए थे जिनमें अन्य बातों के अलावा प्रभावित व्यक्तियों के लिए राहत और पुनर्वास की व्यवस्था है।

6.3.4 अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम 1989 के प्रावधानों को संबंधित राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्र प्रशासनों द्वारा कार्यान्वित किया जाता है, जिन्हें धारा 21(1) (2) के अनुसार ऐसे उपाय करने हैं जो इस अधिनियम के प्रभावी कार्यान्वयन के लिए आवश्यक हों। ऐसे उपायों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:

- अत्याचारों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए, कानूनी सहायता सहित, पर्याप्त सुविधाओं की व्यवस्था, ताकि वे न्याय प्राप्त करने में समर्थ हो सकें;
- जाँच पड़ताल और अधिनियम के अन्तर्गत अपराधों के विचारण के दौरान, अत्याचारों के पीड़ितों सहित गवाहों के लिए यात्रा और अनुरक्षण व्यय की व्यवस्था;
- अत्याचारों के पीड़ितों के आर्थिक और सामाजिक पुनर्वास के लिए व्यवस्था;
- अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए अभियोजन शुरू करने अथवा उनका पर्यवेक्षण करने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति;
- ऐसे उपाय तैयार करने में सरकार की सहायता करने के लिए उपुक्त स्तरों पर, जैसा राज्य सरकार आवश्यक समझे, समितियां स्थापित करना;
- इस अधिनियम के कार्यकरण का समय-समय पर आकलन करने के लिए आकलन ताकि इसके बेहतर कार्यान्वयन के लिए उपाय सुझाए जा सकें; और
- अत्याचार प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण।

6.3.5 विधायी संरचना का मूल्यांकन

6.3.5.1 पी सी आर अधिनियम के अन्तर्गत दर्ज किए गए मामलों की संख्या में 1970 के दशक के बाद से लगातार कमी आई है। तथापि, इन आंकड़ों से गलत निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं कि अर्स्पस्श्यता की समस्या में भी कमी आ रही है। वस्तुत: राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग ने अपनी छठी रिपोर्ट में कहा है, "बल्कि यह कानून प्रवर्तन तंत्र की अप्रभावशालिता पर एक लाछंन है"। ऊपर बताए गए आंकड़ों से, यह भी स्पष्ट है कि अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, अनु. जातियों के साथ उत्पीड़न को रोकने का मुख्य साधन बन गया है।। दोनों अधिनियमों के अन्तर्गत दोषसिद्धी दर न्यून है (सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत, 2005 में कुल 101 मामले दोषसिद्धी में परिणत हुए तथा 385 मामलों में दोषमुक्ति हुई; अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम के अन्तर्गत वर्ष 2005 में

चित्र 6.1 : नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम 1955 के अन्तर्गत पंजीकृत मामलों की संख्या

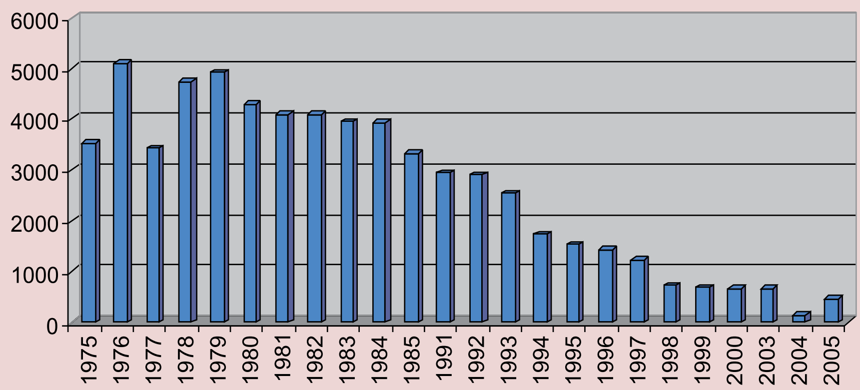

(स्त्रोत: एन सी आर बी वेबसाइट से डाटा पर आधारित)

7110 मामले दोषसिद्धी में परिणत हुए तथा 17401 मामलों में दोषमुक्ति हुई)। अनेक अध्ययनों से इस बात की पुष्टि हुई कि अस्पर्श्यता की घृणित प्रथा अभी विद्यमान है। अध्ययनों से कानून प्रवर्तन तंत्र की ओर से हिचकिचाहट और लापरवाही के मामलों पर भी प्रकाश पड़ा। राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग ने, अपनी विशेष रिपोर्ट में कहा है कि कानून की अनभिज्ञता, बदले का भय और प्रवर्तन पद्धति मे विश्वास की कमी के कारण पीड़ित विद्यमान अनन्यायपूर्ण स्थिति में रहने के लिए बाध्य होते हैं; इसके साथ ही लम्बी अवधि तक चलने वाले विचारण की वजह से और गवाह प्रभुत्तवशाली लोगों के खिलाफ गवाही देने में हिचकिचाते हैं।

चित्र 6.2 : अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत पंजीकृत मामलों की संख्या
(स्त्रोत: तालिका 1.16 "क्राइम इन इण्डिया, 2005 ") (एन सी आर बी)

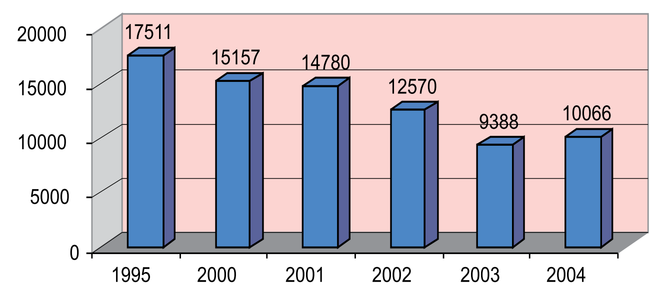

6.3.5.2 तालिका 6.1 में दिए गए विवरण से पता चलता है कि नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम, 1989 पर अमल करने के लिए प्रशासनिक व अन्य उपायों के संबंध में राज्य-वार स्थिति दर्शाई गई है।

तालिका सं. 6.1 अनु. जाति/अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम अधिनियम, 1989 और नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के कार्यान्वयन के लिए राज्य सरकारों द्वारा किए गए उपाय)

राज्य	अनु.जाति/अनु. जनजाति पी ओ ए अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत विशेष न्यायालयों की स्थापना	पुलिस विभागों में विशेष प्रकोष्ठ का कार्यकरण	अस्पर्श्यता – प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण तथा अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए उपाय सुझाने के वास्ते किए गए सर्वेक्षण	राज्य स्तर सतर्कता	चल रही/ परिकल्पित कार्रवाई
1.	2.	3.	4.	5.	6.
आन्ध्र प्रदेश	12 विशेष सेशन न्यायालय स्थापित किए गए	पृथक प्रकोष्ठ स्थापित किए गए (आई जी पी के अधीन 12 डी एस पी और 128 अन्य स्टाफ)	एक आयोग गठित किया गया ; उसकी रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई है	जी हाँ	5 नए विशेष सेशन न्यायालय स्थापित करने के लिए
अरूणाचल प्रदेश	प्रमुख रूप से एक जनजातीय राज्य है; अनु. जाति/अनु. जनजाति के विरूद्ध खास तौर पर किसी मामले की रिपोर्ट नहीं की गई				
असम	18 विशेष न्यायालय स्थापित किए गए	अनु. जाति और अनु. जनजाति संरक्षण प्रकोष्ठ कार्यरत	अत्याचार का कोई मामला देखने में नहीं आया	जी हाँ	नियमित मानीटरन
बिहार	राज्य सरकार अनु. जाति और अनु. जनजाति (पी ओ ए) अधिनियम, 1989 और पी सी आर अधिनियम, 1955 के प्रावधानों को कार्यान्वित कर रही है।				
छत्तीसगढ़	7 विशेष न्यायालय स्थापित किए गए	विशेष पुलिस स्टेशन और प्रकोष्ठ कार्यरत		जी हाँ	सभी विशेष न्यायालयों में विशेष सरकारी अभियोजक नियुक्त किए गए हैं
गोआ	एक विशेष न्यायालय स्थापित किया गया	जी नहीं	कोई भेद्य अथवा अस्पर्श्यता- प्रधान क्षेत्र नहीं है	अत्याचार मामलों की समय-समय पर समीक्षा करने के लिए राज्य स्तर समिति नियुक्त की गई	मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए एक स्कीम तैयार की गई है

राज्य	अनु.जाति/अनु. जनजाति पी ओ ए अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत विशेष न्यायालयों की स्थापना	पुलिस विभागों में विशेष प्रकोष्ठ का कार्यकरण	अस्पर्श्यता – प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण तथा अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए उपाय सुझाने के वास्ते किए गए सर्वेक्षण	राज्य स्तर सतर्कता	चल रही/ परिकल्पित कार्रवाई
गुजरात	10 विशेष न्यायालय स्थापित किए गए	अपराधों की जाँच पड़ताल करने के लिए 12 डी एस पी	-	जी हाँ	और अधिक विशेष न्यायालय और जाँच अधिकारी नियुक्त करने का प्रस्ताव
हरियाणा	प्रत्येक जिले में वरिष्ठतम अतिरिक्त सेशन जज एक विशेष न्यायालय के रूप में कार्य करता है	पुलिस मुख्यालय और जिलों में विशेष प्रकोष्ठ कार्यरत	राज्य में कोई अस्पर्श्यता प्रधान क्षेत्र नहीं है । तथापि, जिलों में विशेष प्रकोष्ठ स्थापित किए गए हैं	जी हाँ	और अधिक विशेष न्यायालय तथा जाँच अधिकारी नियुक्त करने का एक प्रस्ताव
हिमाचल प्रदेश	मामलों की नगण्य संख्या होने के कारण कोई विशेष न्यायालय स्थापित नहीं किया गया	संबंधित जिले का डी एस पी जाँच अधिकारी के रूप में कार्य करता है।	-	जी हाँ	नियमित मानीटरन
जम्मू और कश्मीर	मामलों की नगण्य संख्या				विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं
झारखण्ड	प्रत्येक जिले में सेशन न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में अधिसूचित	प्रत्येक जिले में डी एस पी के अधीन एक विशेष पुलिस स्टेशन	-	जी हाँ	नियमित मानीटरन
कर्नाटक	प्रत्येक जिले में स्थापित	जाँच अधिकारी के रूप में डी एस पी	जी नहीं	उच्च शक्ति प्राप्त राज्य स्तर समिति गठित	नियमित मानीटरन
मध्य प्रदेश	30 विशेष न्यायालय स्थापित किए गए	सभी जिलों में विशेष अनु. जाति/अनु. जनजाति पुलिस स्टेशन हैं	क्षेत्र विनिर्धारित और अधिसूचित किए गए हैं		विशेष सरकारी अभियोजक की नियुक्ति जाँच प्रशिक्षण केन्द्र

राज्य	अनु.जाति/अनु. जनजाति पी ओ ए अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत विशेष न्यायालयों की स्थापना	पुलिस विभागों में विशेष प्रकोष्ठ का कार्यकरण	अस्पर्श्यता – प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण तथा अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए उपाय सुझाने के वास्ते किए गए सर्वेक्षण	राज्य स्तर सतर्कता	चल रही/ परिकल्पित कार्रवाई
महाराष्ट्र	प्रत्येक जिले में सेशन न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में विनिर्दिष्ट	कार्यरत	424 गाँवों को संवेदनशील निर्धारित किया गया है तथा उनका निकटत: मानीटरन किया जा रहा है	उच्च शक्ति प्राप्त राज्य स्तर समिति गठित	विशेष तीव्र विचारण न्यायालय स्थापित करने के लिए उपाय किए जा रहे हैं।
मिजोरम	प्रमुख रूप से अनु. जनजातियों के लोग रहते हैं। अभी हाल ही में अनु. जाति/अनु. जनजाति के विरूद्ध अत्याचार की किसी घटना की कोई रिपोर्ट नहीं।				
उड़ीसा	-	डी एस पी अथवा उससे उच्च अधिकारी द्वारा जाँच पड़ताल	अत्याचार-प्रधान क्षेत्र विनिर्धारित किए गए हैं	जी हाँ	नियमित मानीटरन
पंजाब	विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट। इसके अलावा प्रत्येक जिले में सेशन जज न्यायालय को विशेष न्यायालय के रूप में घोषित	एक विशेष प्रकोष्ठ	-	जी हाँ	नियमित मानीटरन
राजस्थान	17 जिलों में स्थापित किए गए	1978 से कार्यरत	-	जिला स्तर समितियां गठित की गईं	पुलिस मुख्यालय में एक हेल्पलाइन स्थापित की जा रही है।
तमिलनाडु	14 जिलों को शामिल करते हुए 4 न्यायालय स्थापित किए गए। शेष जिलों में विद्यमान सेशन न्यायालयों को विशेष न्यायालयों के रूप में नामजद किया गया	डी आई एस (विशेष न्याय और मानव अधिकार) 11 डी एस पी के साथ एस.जे. और एच. आर यूनिटों के कामकाज का पर्यवेक्षण करता है	विनिर्धारित और वार्षिक रूप से अद्यतन बनाया जाता है। सर्वेक्षण भी आयोजित किए गए	जी हाँ	नियमित मानीटरन

राज्य	अनु.जाति/अनु. जनजाति पी ओ ए अधिनियम, 1989 के अन्तर्गत विशेष न्यायालयों की स्थापना	पुलिस विभागों में विशेष प्रकोष्ठ का कार्यकरण	अस्पर्श्यता – प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण तथा अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिए उपाय सुझाने के वास्ते किए गए सर्वेक्षण	राज्य स्तर सतर्कता	चल रही/ परिकल्पित कार्रवाई
त्रिपुरा	सभी जिलों में स्थापित	घटनाओं की रिपोर्टें नगण्य हैं। पर्याप्त उपाय किए गए			नियमित मानीटरन
उत्तराखण्ड	पी सी आर अधिनियम के तहत 3 जिलों में विशेष न्यायालय स्थापित तथा एक विशेष न्यायालय ए एस/एस टी (पी ओ ए) अधिनियम के तहत स्थापित	प्रत्येक जिले में नागरिक अधिकार संरक्षण प्रकोष्ठ स्थापित	-	जी हाँ	नियमित मानीटरन
प. बंगाल	17 न्यायालय स्थापित			जी हाँ	पुलिस कार्मिकों का प्रशिक्षण आदि
रा.रा. क्षेत्र दिल्ली	स्थापित	-	c	प्रस्ताव पेश	नियमित मानीटरन
पुड्डुचेरी	स्थापित	-	c	जी हाँ	नियमित मानीटरन
अ. और नि. द्वीपसमूह	अ. और नि. द्वीपसमूहों में कोई अधिसूचित अनु. जाति नहीं				अधिकारियों को संवेदी बनाया जा रहा है
लक्ष्यद्वीप	संघ राज्य क्षेत्र में कोई अनु. जाति नहीं है। पूरी आबादी अनु. जनजाति है।				

स्त्रोत: राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा अन्तर-राज्य परिषद सचिवालय को भेजी गई सूचना पर आधारित ; एजेण्डा का पूरक; अन्तर-राज्य परिषद की दसवीं बैठक, 9 दिसम्बर, 2006

6.3.5.3 आयोग का मत है कि अनुसूचित जातियों के शोषण के मामलों से निपटने के लिए और अधिक सक्रियता के साथ कार्रवाई की जानी चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अनु. जातियों के विरूद्ध दर्ज सभी अपराधों के मामलों में शीघ्रातिशीघ्र उनके तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुँचा जाए। इसमें जिला मानीटरन पद्धति को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। इसलिए, प्रशासन को प्राथमिकी दर्ज किए

जाने की प्रतीक्षा किए बगैर स्वमेव कानून के उल्लघंन के मामलों का पता लगाने का प्रयास करना चाहिए।

6.3.5.4 यद्यपि अधिनियम में अपराधों के विचारण के लिए विशेष न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था है, तथापि उच्चतम न्यायालय का मत है कि ऐसे न्यायालय मामले का संज्ञान तभी ले सकते हैं जबकि अधिकार क्षेत्र वाले मजिस्ट्रेट द्वारा उन्हें कमिट किया जाए। परिणामस्वरूप, विशेष न्यायालय के समक्ष कोई शिकायत अथवा आरोप-पत्र फाइल नहीं कराए जा सकते। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने इस कमी को दूर करने के लिए अधिनियम में संशोधन करने की सिफारिश की है। आयोग का यह भी मत है कि विशेष न्यायालयों को अधिनियम के तहत अपराधों का सीधे ही संज्ञान लेने के लिए सशक्त बनाया जाना चाहिए।

6.3.5.5 अस्पर्श्यता की प्रथा से विशिष्ट रूप से निपटने के लिए ऊपर वर्णित विधानों के अलावा, आजादी के बाद अन्य विशेष विधान भी अधिनियमित किए गए हैं। इनमें से कुछेक हैं: (i) हाथ से झाडू लगाने वालों की नियुक्ति और शुष्क शौचालयों (निषेध) का निर्माण अधिनियम, 1993, (ii) बंधुआ मजदूर पद्धति (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 (iii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (iv) एकसमान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976, (v) बाल श्रम (निषेध और विनियमन) अधिनियम, 1986; (vi) अन्तर-राज्य प्रवासी कामगार (रोजगार और सेवा शर्तों का विनियमन) अधिनियम, 1979। इसके अलावा, राज्यों ने भू-सुधार कानून, ऋण राहत विधान और विशेष समस्याओं और प्रथाओं से निपटने के लिए (उदाहरणार्थ देवदासी पद्धति का उन्मूलन) कानून बनाए हैं।

6.4 संस्थागत संरचना

6.4.1 राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग

6.4.1.1 संविधान में पहले अनुसूचित जातियों और अनु. जनजातियों के लिए व्यवस्थित सुरक्षोपायों से संबंधित मामलों की जाँच करने के लिए अनुच्छेद 338 के तहत एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति की व्यवस्था थी। बाद में इस कार्यालय को अनुसूचित जाति और अनु. जनजाति आयुक्त का नाम दे दिया गया। 1978 में एक बहु-सदस्यीय आयोग गठित किया गया जिसे अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग का नाम दिया गया। संविधान (65 वाँ) संशोधन अधिनियम 1990 के अनुसार अनुच्छेद 338 में 1990 में संशोधन किया गया तथा मार्च 1992 में प्रथम राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग स्थापित किया गया। संविधान (89 वाँ संशोधन) अधिनियम, 2003 के परिणामस्वरूप, जो 19 फरवरी 2004 से

लागू हुआ, राष्ट्रीय अनु-जाति और अनु-जनजाति आयोग के स्थान पर (1) राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, और (2) राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, स्थापित किए गए हैं। संविधान में निर्धारित है कि राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग के निम्नलिखित कर्त्तव्य होंगे:

क- अनुसूचित जातियों के लिए इस संविधान के तहत अथवा इस समय लागू किसी अन्य कानून अथवा सरकार के किसी अन्य आदेश के तहत प्रदत्त सुरक्षोपायों के किसी अन्य आदेश के तहत प्रदत्त सुरक्षोपायों से सभी मामलों की जाँच और मानीटरन करना तथा ऐसे सुरक्षोपायों के कार्यकरण का मूल्यांकन करना;

ख- अनु. जातियों के अधिकारों और सुरक्षोपायों की वंचना के संबंध में विशिष्ट शिकायतों की जाँच करना;

ग- अनु. जातियों के समाजार्थिक विकास की योजना प्रक्रिया के संबंध में भाग लेना और सलाह देना तथा केन्द्र अथवा किसी राजय के अन्तर्गत उनके विकास की प्रगति का आकलन करना;

घ- राष्ट्रपति को, वार्षिक रूप से, अथवा ऐसे अन्य समय पर जैसा आयोग उपयुक्त समझे, उन सुरक्षोपायों के कार्यकरण के संबंध में रिपोर्टें प्रस्तुत करना;

ङ.- ऐसी रिपोर्टों में उन उपायों के संबंध में सिफारिशें करना जो उन सुरक्षोपायों व अनु. जातियों के संरक्षण, कल्याण और समाजार्थिक विकास के लिए अन्य उपायों के प्रभावी कार्यान्वन हेतु केन्द्र अथवा किसी राज्य द्वारा उठाए जाने चाहिए; और

च- अनु. जातियों के संरक्षण, कल्याण और विकास तथा उन्नति की दृष्टि से ऐसे अन्य कार्यों का निष्पादन करना जो राष्ट्रपति द्वारा, संसद द्वारा पारित किसी कानून के प्रावधानों के अध्यधीन नियम द्वारा विनिर्दिष्ट किए जाएं।

6.4.2. राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग

6.4.2.1 राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग का गठन, संसद के राष्ट्रीय सफाई कर्मचारी आयोग अधिनियम, 1993 के जरिए, प्रारंभ में तीन वर्ष की अवधि के लिए, अगस्त 1994 में किया गया था। यह एक स्थाई आयोग नहीं है, किन्तु इसकी कार्यावधि में समय-समय पर वृद्धि की गई है। इसमें, एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष और पाँच सदस्य सम्मिलित हैं जिन सभी का मनोनयन केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जाता है। कम से कम एक सदस्य महिला है। आयोग की सेवार्थ एक सचिवालय है जिसका प्रधान एक सचिव है।

इसका कार्य सफाई कर्मचारियों से संबंधित, विशेष रूप से हाथ से सफाई करने की प्रथा को समाप्त करने तथा इस कार्य में लगे व्यक्तियों की स्थितियां सुधारने के लिए कानूनों और कार्यक्रमों पर निगरानी रखना है। केन्द्रीय सरकार द्वारा, सफाई कर्मचारियों को प्रभावित करने वाले सभी नीतिगत मामलों पर राष्ट्रीय आयोग से परामर्श करना आवश्यक है। यह, सफाई कर्मचारियों की विशिष्ट शिकायतों की जाँच कर सकता है और उनकी समस्याओं के संबंध में स्वमेव कार्रवाई कर सकता है। आयोग, संबंधित सरकारों अथवा प्राधिकारियों से सफाई कर्मचारियों के संबंध में जानकारी मंगाने के लिए सशक्त है। आयोग को एक वार्षिक रिपोर्ट तैयार करनी होती है जिसे संसद के दोनों पटलों पर रखा जाता है। यदि रिपोर्ट में कोई मामला किसी राज्य सरकार से सम्बद्ध होता है तो ऐसी रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि संबंधित राज्य के राज्यपाल द्वारा राज्य की विधान सभा में रखी जाती है। आयोग ने अभी तक बड़ी संख्या में सिफारिशों के साथ चार रिपोर्टें प्रस्तुत की हैं। [34]

6.4.2.2 इसके अलावा, मानवाधिकार अधिनियम 1993 के तहत स्थापित मानवाधिकार आयोग भी अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के शोषण की शिकायतों में भी हस्तक्षेप करता है क्योंकि ये मानवाधिकारी का घोर उल्लंघन हैं। राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम, 1990 के अन्तर्गत स्थापित राष्ट्रीय महिला आयोग, उसे भेजी गई महिलाओं के प्रति अन्याय की शिकायतों पर कार्रवाई करता है, चाहे जाति कोई भी हो। इसलिए, यह अनु. जातियों से संबंधित महिलाओं के बारे में भी शिकायतों की जाँच करता है।

6.4.3 संस्थागत प्रणाली के कार्यकरण का मूल्यांकन

6.4.3.1 राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने ऊपर वर्णित निगरानी संस्थानों की कारगरता का विश्लेषण किया है और वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि ये संस्थान, बड़ी संख्या में प्राप्त होने वाली शिकायतों, उनसे निपटने के लिए उनकी सीमित क्षमता और पर्याप्त क्षेत्र स्टाफ के अभाव के कारण भी बाधित हैं। राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग का मत है कि इस मुद्दे पर तत्काल विचार किए जाने और इसकी सिफारिशों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के वास्ते, आयोग को संविधान के तहत और अधिक शक्तियां प्रदान करके इसे सशक्त बनाए जाने की तत्काल जरूरत है। [35]

6.4.3.2 अनु. जातियों के विरूद्ध अत्याचारों की रोकथाम के संबंध में एन एच आर सी द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट में कहा गया था:

[34] अनु. जातियों के विरूद्ध अत्याचारों की रोकथाम संबंधी रिपोर्ट से उद्धरित (एन एच आर)

[35] आयोग की छठी रिपोर्ट

"सांविधिक आयोगों की रिपोर्टों के संबंध में निर्धारित प्रक्रिया यह है कि आयोग का नोडल मंत्रालय रिपोर्ट की सिफारिशें सरकार की संबंधित एजेन्सियों के बीच, जिनसे वे संबंधित हों, परिचालित करता है। उनके द्वारा प्रस्तुत टिप्पणियों को की गई कार्रवाई रिपोर्ट" में सम्मिलित किया जाता है, जिसे यह बताते हुए संसद में प्रस्तुत किया जाता है, कि क्या सिफारिश को स्वीकार किया गया है अथवा स्वीकार नहीं किया गया है और यदि स्वीकार किया गया है तो क्या कार्रवाई की जा रही है। यदि किसी सिफारिश विशेष के संबंध में कोई अन्तिम कार्रवाई नहीं की गई है तो शामिल की जाने वाली टिप्पणी यह होती है कि "यह विचाराधीन है" की गई कार्रवाई के संबंध में उन टिप्पणियों के साथ रिपोर्ट को संसद में प्रस्तुत किया जाता है । इससे पता चलता है कि आयोग द्वारा रिपोर्ट प्रस्तुत करने और संसद के समक्ष उन्हें प्रस्तुत किए जाने के बीच क्यों इतना अन्तराल होता है क्योंकि संबंधित सरकारी एजेन्सियों की टिप्पणियाँ प्राप्त करने में काफी समय लग जाता है। राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग के मामले में अन्तराल कभी-कभी तीन वर्ष तक का होता है। "

6.4.3.3 उसी रिपोर्ट में, इन आयोगों द्वारा की गई अनेक सिफारिशों की अस्वीकृति के मुद्दे की जाँच की गई तथा टिप्पणी की गई कि:

"सामान्यत: उन सिफारिशों के संबंध में जो उस विषय पर, विद्यमान प्रक्रियाओं/प्रथाओं/दृष्टिकोणों अथवा निर्णयों से आमूल रूप से भिन्न हैं, अफसरशाही प्रवृत्ति उसे अस्वीकार अथवा प्रभावहीन बना देते हैं और ऐसा करने के लिए किसी न किसी आधार का उल्लेख किया जाता है। तथापि, आयोग यह उम्मीद करते हैं कि रिपोर्ट पर चर्चा के दौरान कुछ सांसद महत्वपूर्ण सिफारिशों की अस्वीकृति का प्रश्न उठा सकते हैं जिसका उत्तर संबंधित मंत्री को देना होगा और यदि उस मुद्दे का बड़े पैमाने पर समर्थन होगा तो उसकी अस्वीकृति से कठिनाई हो सकती है। मामले को मिडिया अथवा एन जी ओ/जन भावना वाले नागरिकों/प्रभावशाली समूहों द्वारा उठाया जा सकता है जो उसकी स्वीकृति के लिए जनमत कायम कर सकते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि रिपोर्टों पर बिलकुल चर्चा नहीं होती जैसाकि संसद के समक्ष प्रस्तुत पिछली कुछ रिपोर्टों के संबंध में राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग के अनुभव से पता चलता है। इसका आंशिक कारण यह है कि जब तक ये रिपोर्टें की गई कार्रवाई रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत की जाती हैं तब तक ये पुरानी हो जाती हैं और कभी-कभी उनकी संदर्भगत संगतता समाप्त हो जाती है। नोडल मंत्रालय के बजटीय अनुदानों के संबंध में चर्चाओं के दौरान भी इन रिपोर्टों का हवाला नहीं दिया जाता क्योंकि समयाभाव और निम्न प्राथमिकता के कारण की वजह से गिलोटिनिंग के बाद बजट पारित हो जाता है। मंत्रालयों के संबंध में चर्चा नहीं की जाती। राष्ट्रीय महिला आयोग के सामने ऐसी ही समस्या होगी। यह ज्ञात नहीं है कि क्या राष्ट्रीय

मानवाधिकार आयोग की स्थिति इस संबंध में बेहतर है। उन विभिन्न आयोगों द्वारा की गई विशिष्ट सिफारिशों के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है जिन्हें सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया गया है और उनकी अस्वीकृति के संबंध में क्या कारण बताए गए। यद्यपि सरकार के सामने कुछेक सिफारिशों को स्वीकार करने में उनके व्यापक फलितार्थों व अन्य वैद्य कारणों की वजह से वास्तविक कठिनाई हो सकती है, तथापि बड़े पैमाने पर सिफारिशों का स्वीकार न किया जाना दुखद है और आयोग के लिए निराशाजनक है क्योंकि उसके द्वारा किए गए प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं।

इस विषय पर इस रिपोर्ट के अध्याय 14 में और आगे चर्चा की गई है।

6.5 सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा सलाह

6.5.1 सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनु. जाति और अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम 1989 के प्रावधानों को, अनन्य रूप से विशेष न्यायालयों की स्थापना के, जाँच अधिकारियों के संवेदीकरण की दिशा में, प्राथमिकी रिपोर्ट (एफ आई आर) विनिर्धारित अत्याचार प्रधान क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था के अनुरक्षण पर समुचित रूप से ध्यान देते हुए और लक्ष्य समूहों के बीच जागरूकता निर्मित करने के लिए अधिनियम के प्रावधानों का प्रचार करने के लिए, ई-मुद्रण व अन्य मिडिया के उपयोग करके तथा पंचायती राज संस्थानों और कुल मिलाकर सिविल सोसायटी की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए, मामलों का समय पर पंजीकरण और आरोप-पत्र दाखिल करके आवश्यक उपाय करने के वास्ते, सच्ची भावना के साथ कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों/संघ क्षेत्र के प्रशासनों को सम्बोधित करता रहता है।

6.5.2 अनुसूचित जातियों के विरूद्ध अस्पर्श्यता और अनुसूचित जातियों और अनु. जनजातियों के विरूद्ध अत्याचारों के मामलों के संबंध में 9.12.2006 को आयोजित अन्तर-राज्य परिषद की बैठक के अनुसरण में, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री ने 2007 में मुख्य मंत्रियों को पत्र लिखा था जिसमें विशिष्ट उपाए सुझाए गए जिनका ब्यौरा निम्न प्रकार है:

(क) अस्पर्श्यता और अत्याचारों का मुकाबला करने के विषय पर प्रकार डालते हुए हिन्दी व अन्य स्थानीय भाषाओं में इश्तहारों/पुस्तिकाओं का मुद्रण और वितरण।

(ख) आम जनता के लिए और विशेष रूप से स्कूलों और कालेजों मे, पंचायतों तथा शहरी स्थानीय निकायों के पदाधिकारियों की भागीदारी के साथ विशाल जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

(ग) स्वतन्त्रता दिवस, गणतन्त्र दिवस, संत रवि दास जयन्ती, महर्षि बाल्मिकी जयन्ती, गांधी जयन्ती, बाबू जगजीवन राम जयन्ती, डा. बी.आर. अम्बेडकर जयन्ती आदि के अवसर पर मुद्रण मिडिया में विशेष अभियान।

(घ) कान्सटेबुलरी और पुलिस स्टेशन स्तर के पुलिस अधिकारियों का, मुद्दे की संवेदनशीलता और सम्बद्ध कानूनी प्रावधानों के बारे में, प्रवेश स्तर पर और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण।

(ङ.) अस्पर्श्यता के उन्मूलन के लिए इसके स्वरूपों और कारणों का विनिर्धारण करने के लिए, आवश्यक उपायों हेतु अनुसंधान अध्ययनों का वित्त पोषण करना।

(च) जिले के अन्दर संकेन्द्रित ढंग से सही स्थानों/ पाकेटों के विनिर्धारण के लिए स्पष्ट रूप से तैयार किए गए प्रतिमानों के साथ एक चालू प्रक्रिया के रूप में अत्याचार-प्रधान क्षेत्रों का विनिर्धारण।

(छ) विनिर्धारित क्षेत्रों में विख्यात और उत्साही एन जी ओ का विनिर्धारण जो अत्याचारों मामलों को पंजीकृत कराने में और उनके नियमित अनुसरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। ये एन जी ओ पीड़ितों को सलाह प्रदान करेंगे तथा उन्हें दबावों का सामना करने के लिए सहायता तथा कानूनी मदद देंगे।

(ज) भू-सुधारों का प्रभावी कार्यान्वयन, अनु. जातियों/अनु.जनजातियों वाले भू-बल विवादों का प्राथमिकता के आधार पर निपटान तथा अत्याचार प्रधान क्षेत्रों में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का सख्ती के साथ प्रवर्तन।

(झ) विनिर्धारित अत्याचार-प्रधान/संवेदनशील क्षेत्रों के विकास के लिए एक विशेष पैकेज तैयार करना। पैकेज के अन्तर्गत उपयुक्त आय सृजक लाभभोगी उन्मुख स्कीमें सम्मिलित हो सकती हैं। स्वंयसेवी समूहों का प्रोत्साहन, विशेष रूप से महिलाओं के लिए और साथ ही संयोजन सड़कों जैसी आधारभूत सुविधाओं का भी उन्नयन।

(ञ) एक वर्ष से अधिक अवधि तक न्यायालयों में लम्बित मामलों की समीक्षा जिससे कि कड़ा दण्ड दिया जाना सुनिश्चित हो सके।

(ट) दोषमुक्ति के प्रत्येक मामले की बारीकी से जाँच की जानी चाहिए और जाँच एजेन्सियों की ओर से चूक के स्पष्ट मामलों में, अपील फाइल करने के अलावा, उपयुक्त अनुशास्नात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए।

(ठ) राज्य सरकारों द्वारा अनु. जाति उप योजना (एस सी एस पी) के लिए विनिश्चित परिव्यय में से संसाधनों का पर्याप्त प्रवाह ताकि न्यूनतम बुनियादी सेवाएं सुनिश्चित हो सकें अर्थात स्वास्थ्य, शिक्षा, आधारभूत सेवाएं, जैसे कि संयोजन सड़कें, सिंचाई और पेय जल।

(ड) मंत्रालय द्वारा जारी विशेष केन्द्रीय सहायता निधियों में से प्रमुख आधारभूत सुविधाओं को प्राथमिकता दी जानी चाहिए जैसे कि निकटतम पुलिस स्टेशन तक सड़कों का निर्माण और सड़कों को राजमार्गों के साथ मिलाना।

(छ) विनिर्धारित अत्याचार-प्रधान क्षेत्रों से लाभभोगियों को राष्ट्रीय अनुसूचित जाति वित्त तथा विकास निगत व राष्ट्रीय सफाई कर्मचारा वित्त तथा विकास निगम की लाभभोगी-उन्मुख आय सृजक स्कीमों के अन्तर्गत प्राथमिकता के आधार पर शामिल किया जाना चाहिए।

(ण) महिलाओं के बीच उनके अधिकारों तथा उपलब्ध कानूनी सहायता के बारे में प्रारम्भिक कानूनी जानकारी के प्रसार प्रयोजनार्थ स्वयंसेवी समूहों के गठन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए तथा विख्यात एन जी ओ को सम्मिलित किया जाए।

(व) क्योंकि अधिकांश अनु. जाति आबादी मजदूर श्रमिक हैं, इसलिए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का् कठोरतापूर्वक प्रवर्तन किया जाना चाहिए।

(थ) श्रम और रोजगार मंत्रालय की प्रस्तावित असंगठित कामगार सामाजिक सुरक्षा स्कीम के अन्तर्गत सामाजिक सुरक्षा के कवरेज का विस्तार।

(द) राज्य अनु. जाति आयोगों के सहयोग से सतर्कता और मानीटरन समितियां, विशेष रूप से अनु. जातियों की स्वामित्व वाली भूमियों की वेदखली से संबंधित मामलों की और साथ ही ऐसे मामलों की भी समीक्षा करना जहाँ पट्टे जारी किए जा चुके हैं किन्तु भूमि का वास्तविक कब्जा नहीं दिया गया है।

6.6 अपेक्षित प्रशासनिक कार्रवाई

6.6.1 राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग ने विगत में अनेक सिफारिशें की हैं। अनु. जातियों के विरूद्ध अत्याचारों की रोकथाम के संबंध में रिपोर्ट (एन एच आर सी) में भी अनु. जातियों की स्थितियों को सुधारने के लिए विस्तृत सिफारिशें की गई हैं। अत्याचारों और भेदभाव प्रथाओं की विशालता को देखते हुए आयोग का मत है कि एक बहु-आयामीय कार्यनीति तैयार की जानी चाहिए जिसमें निम्नलिखित को शामिल किए जाने की जरूरत है :

6.6.1.1 *इन प्रयोजनार्थ अधिनियमित विभिन्न कानूनों का प्रभावी कार्यान्वयन:* जैसाकि पैराग्राफ 6.3.5 में कहा गया है, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत मामलों की संख्या में कटौती से पता चल सकता है कि ऐसी घटनाओं की संख्या में कमी आ रही है। तथापि अनेक नागरिक अधिकार

कार्यकर्ताओं की दलील है कि यह कमी, रिपोर्ट करने और मामलों को पंजीकृत करने में सिविल तथा पुलिस प्रशासन की अरुचि के कारण है। इन संगठनों द्वारा किए गए अध्ययनों से पता चला है कि अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव और अत्याचार की बड़ी संख्या में घटनाएं कभी ध्यान में नहीं आती हैं जिसका कारण इन वर्गों के बीच विद्यमान भय और पुलिस स्टेशनों में एफ आई आर का रजिस्ट्रेशन न किया जाना है। हमारे समाज के सर्वाधिक कमजोर वर्गों के खिलाफ अपराधों का समाधान करने के लिए व्यावसायिकता और संवेदनशीलता के मिश्रण की जरूरत है ताकि उकसाने वालों के खिलाफ कठोर कार्रवाई सुनिश्चित हो सके। केवल एफ आई आर प्राप्त होने पर जाँच -पड़ताल शुरू करने का सामान्य दृष्टिकोण अनु. जातियों के विरूद्ध अत्याचारों के अपराधों से निपटने के लिए, पर्याप्त नहीं है। यह भी महत्वपूर्ण है कि प्रवर्तन एजेन्सियों को स्वयं ऐसे उल्लंघनों का पता लगाना चाहिए और कसूरवार को बुक करना चाहिए। "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट में आयोग ने निम्निलिखित सिफारिशें की है:

क- प्रशासन और पुलिस को अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की विशेष समस्याओं के प्रति संवेदी बनाया जाना चाहिए। संवेदी बनाने की प्रक्रिया में उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मदद मिल सकती है।

ख- कमजोर वर्गों के खिलाफ अपराधों का पता लगाने और जाँच करने में प्रशासन तथा पुलिस को और अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

ग- प्रवर्तन एजेन्सियों को साफ तौर पर बता दिया जाना चाहिए कि कमजोर वर्गों के अधिकारों के प्रवर्तन को और अधिक गड़बड़ी होने अथवा बदले के भय की वजह से कम नहीं जाना चाहिए और ऐसी किसी भी स्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से तैयारी की जानी चाहिए।

घ- प्रशासन को पीड़ितों के पुनर्वास पर भी बल देना चाहिए तथा विशेषज्ञों द्वारा परामर्श सहित सभी अपेक्षित सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

ङ- जहाँ तक सम्भव हो धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों के पर्याप्त अनुपात वाले पुलिस स्टेशनों में पुलिस कार्मिकों की तैनाती ऐसे पुलिस स्टेशन के स्थानीय क्षेत्राधिकार के अन्दर ऐसे समुदायों की आबादी के अनुपात में की जानी चाहिए। पर्याप्त अनुपात वाली अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की आबादी वाले स्थानों के मामलों में भी यही सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए।

6.6.1.2 *क्षेत्र कार्यकर्ताओं को अभिप्रेरित करना:* देखा गया हे कि राज्य सरकारों में क्षेत्र कार्यकर्ता, पुलिस सहित, अनु. जातियों को संरक्षण प्रदान करने वाले विभिन्न कानूनों के प्रावधानों का सक्रियतापूर्वक

प्रवर्तन नहीं करते। इस संबंध में कठोर अनुदेश जारी करने के अलावा कि ऐसे सामाजिक कानूनों पर और अधिक गड़बडी अथवा बदले के भय के कारण शिथिलता नहीं बरती जाए, प्रोत्साहनों की एक पद्धति लागू करना वांछनीय होगा जिनके तहत इन अधिकारियों द्वारा अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव/अत्याचारों के मामलों का पता लगाने और उनका सफलतापूर्वक अभियोजन करने के लाए उन्हें उपयुक्त रूप से सम्मानित किए जाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

6.6.1.3 *जिला स्तर मानीटरन समितियों द्वारा मानीटरन और समीक्षा:* यद्यपि अधिकांश जिलों में जिला स्तर मानीटरन समितियों का गठन किया गया है, तथापि उनका कार्यकरण सामान्य रूप से नेमी और निष्क्रियतापूर्ण है। इसलिए यह आवश्यक है कि जिला मजिस्ट्रेटों को यह सुनिश्चित करने के लिए कहा जाए कि ये समितियां विभिन्न सामाजिक विधानों के उल्लघंन के मामलों के समुचित मानीटरन के लिए एक प्रभावी मंच बन सकें। इन समितियों को, उन्हें संबंधित विभागों/एजेन्सियों द्वारा उपलब्ध कराए गए इनपुटों के अलावा, विभिन्न सामाजिक कानूनों के उल्लंघन के मामलों का विनिर्धारण/पता लगाने के लिए, अपनी ही पद्धति विकसित करनी चाहिए।

6.6.1.4 *पुलिस सुधार:* आयोग ने, अपनी पाँचवी रिपोर्ट सार्वजनिक व्यवस्था में व्यापक रूप से सिफारिशें की हैं । इसने, समाज के कमजोर वर्गों के विरूद्ध, जिनमें से बहुत से अनु. जातियों और अनु. जनजातियों से संबंधित हैं, किए गए भेदभाव और अत्याचारों के बारे में, अधिकारियों के प्रशिक्षण व अन्य क्षमता निर्माण उपायों के माध्यम से संवेदीकृत बनाए जाने की क्रान्तिक जरूरत पर भी बल दिया है। कार्यान्वित किए जाने पर इन सुधारों से पुलिस के कार्यकरण और आपराधिक न्याय पद्धति को सुधारने में और अन्ततः अनुसूचित जातियों के अधिकारों और सम्मान को बनाए रखने में बहुत मदद मिलेगी।

6.6.1.5 *सामाजिक भेदभाव के मामलों का पता लगाने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण आयोजित करने के वास्ते स्वतंत्र एजेन्सियों की सेवाएं प्राप्त करना :* जैसाकि पहले बताया गया है, अनु. जातियों के शोषण की घटनाएं सामन्यतः प्राथमिकी दर्ज किए जाने के बाद ही प्रकाश में आती हैं। तथापि, ऐसे मामलों की संख्या में वृद्धि हुई है जबकि ऐसी घटनाएं सतर्क सिविल संगठनों और मिडिया द्वारा प्रकाश में लाई जाती हैं। जिला प्रशासन को इन स्वतन्त्र एजेन्सियों द्वारा निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिका को समझना चाहिए तथा सामाजिक भेदभाव के मामलों का पता लगाने के लिए स्वतन्त्र क्षेत्र सर्वेक्षण आयोजित करने के लिए उनकी सेवाओं का उपयोग करना चाहिए।

6.6.1.6 *विभिन्न राष्ट्रीय और राज्य स्तर आयोगों के लिए समन्वय तंत्र:* अनुसूचित जातियों के शोषण के मामलों की जाँच करने के लिए अनेक आयोग हैं-राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग, राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग और राष्ट्रीय महिला आयोग। एजेन्सियों की बहुलता की समस्या राज्य स्तरों पर भी विद्यमान है। बहुत अधिक संख्या में पूछताछ और रिपोर्टें तथा बहुत कम कार्रवाई किया जाना वास्तविक है। एक ही आयोग के गठन की बात को छोड़कर, एक समन्वय तंत्र विकसित करने की जरूरत है जिससे कि इन संवैधानिक/सांविधिक निकायों के प्रयासों में दोहरापन न हो।

6.6.1.7 *पंचायती राज संस्थानों को शामिल करना:* पंचायती राज संस्थान तथा शहरी स्थानीय निकाय ऐसी सरकारी संस्थाएं हैं जो लोगों के काफी निकट हैं, जो कमजोर वर्गों के लिए अनेक विकास कार्यक्रम निष्पादित करती हैं। विभिन्न सामाजिक विधानों के प्रभावी प्रवर्तन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों में इन संस्थानों को सक्रियतापूर्वक शामिल किया जाना चाहिए।

6.6.1.8 *भू-सुधारों व अन्य सामाजिक विधानों का प्रभावी कार्यान्वयन:* बहुत से विधान हैं-बंधुआ श्रम उन्मूलन अधिनियम, बाल श्रम निषेध अधिनियम, भू-सुधार कानून, ऋण राहत अधिनियम आदि, जिनका उद्देश्य भिन्न-भिन्न सामाजिक उद्देश्य प्राप्त करना है। इन विधानों के प्रभावी कार्यान्वयन से अनु. जातियों की स्थिति सुधारने में काफी मदद मिलेगी। जिला मानीटरन समितियों को इन कानूनों के कार्यान्वयन पर निगरानी रखने की भी जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।

6.6.2 यूनाइटिड किंगडम में जाति और रंग के आधार पर हिंसा के कारण बहुत से दंगे हुए हैं। जातिगत भेदभाव को चैक करने के उद्देश्य से यू.के. संसद ने 1965 में जाति संबंध अधिनियम पारित किया जिसे 1965 और 1968 में और संशोधित किया गया। इस विधान और जाति संबंध बोर्ड तथा जातिगत समानता आयोग के गठन के बावजूद, जातिगत तनाव की घटनाएं घटी तथा ऐसी एक घटना ब्रिक्सटन दंगों की थी। सार्वजनिक प्राधिकारियों की सकारात्मक ड्यूटी को और सुदृढ़ करने के उद्देश्य से जाति संबंध (संशोधन) अधिनियम 2000 पारित किया गया। इस कानून के प्रमुख प्रावधान हैं:-

- क- जातिगत समानता प्रोत्साहित करने के लिए कतिपय सार्वजनिक प्राधिकारियों को सकारात्मक ड्यूटी सौंपना,
- ख- मुख्य कान्सटेबिलों को प्रतिनिधिक जिम्मेदारी का विस्तार पुलिस सेवा के सभी कार्यकलापों तक करना,

ग- सार्वजनिक प्राधिकरण कार्यों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भेदभाव को निषिद्ध करना। एक सार्वजनिक प्राधिकरण की परिभाषा "कोई निश्चित व्यक्ति जिसके कार्य सार्वजनिक प्रकृति के कार्य हों", के रूप में की गई है।

6.6.3 कुछ सकारात्मक प्रावधान हैं, विशेष रूप से वे जिनके तहत जातिगत समानता को प्रोत्साहित करने के लाए कतिपय सार्वजनिक प्राधिकारियों को एक विशिष्ट डयुटी सौंपी गई है क्योंकि इसके तहत उन पर जातिगत भेदभाव को सक्रियतापूर्वक नियंत्रित करने का दायित्व है। यद्यपि, सौभाग्यवश जातिगत भेदभाव भारत में विद्यमान नहीं है, तथापि यू.के. विधान की कुछेक बातें, जाति और धर्म के आधार पर भेदभाव को नियंत्रित करने के लिए, हमारी स्थिति में संगत है। इस संदर्भ में हमारे संगत कानूनों में एक प्रावधान शामिल करने का दृढ़ मामला है, जिनके अनुसार सार्वजनिक प्राधिकारियों पर सामाजिक समानता को प्रोत्साहित करने और जाति के आधार पर, विशेष रूप से इस संबंध में प्रवर्तन एजेन्सियों के पिछले असंतोषजनक रिकार्ड को देखते हुए, भेदभाव को रोकने का दायित्व सौंपा जा सकता है।

6.7 क्षमता निर्माण

6.7.1 राज्य सरकारों ने, नागरिक अधिकार प्रवर्तन को प्रभावी ढंग से प्रोत्साहित और मानीटरन हेतु नागरिक अधिकार प्रवर्तन प्रकोष्ठ कायम किए हैं। नागरिक अधिकार प्रवर्तन की समय-समय पर समीक्षा करने के लिए भी राज्य और जिला स्तर समितियां गठित की गई हैं। यद्यपि नागरिक अधिकार प्रवर्तन प्रकोष्ठ नेमी विनियामक संगठन बनकर रह गए हैं, तथापि राज्य और जिला स्तर समितियां, उच्चतम स्तर पर समीक्षा के अभाव में क्षीण हो गई हैं। इन प्रकोष्ठों और समितियों के महत्व को देखते हुए, नागरिक अधिकार प्रवर्तन प्रकोष्ठों और राज्य तथा जिला स्तर समितियों के कार्यकरण की समीक्षा करने तथा नागरिक अधिकार प्रवर्तन की प्रगति का मानीटरन करने के लिए अध्यक्ष के रूप में मुख्य मंत्री के साथ तथा उपाध्यक्ष के रूप में गृह और समाज कल्याण मंत्रियों के साथ, राज्य स्तर पर एक उच्च अधिकार-प्राप्त समिति स्थापित करना उपयोगी होगा।

6.7.2 सिविल अधिकार उपायों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने के लिए एक केन्द्र प्रायोजित स्कीम प्रचालन में है। इस स्कीम के अन्तर्गत, प्रशासन, प्रवर्तन और न्यायिक तंत्र को सुदृढ़ करने और साथ ही प्रभावित व्यक्तियों के लिए राहत और पुनर्वास के लिए भी वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस समय, स्कीम के अन्तर्गत अधिकांश व्यय स्टाफ और सम्बद्ध स्थापना व्यय पर किया जाता है जिसमें पी सी आर और पी ओ ए अधिनियमों के तहत विशेष न्यायालयों का व्यय शामिल है। क्योंकि अभी भी भेदभाव बरता जाता है, अत्याचार किए जाते हैं और नागरिक अधिकारों का उल्लंघन होता है इसलिए, केन्द्र प्रायोजित

स्कीमों के अन्तर्गत निधियों के एक भाग का जागरूकता निर्माण कार्यक्रमों के लिए, विशेष रूप से दूरवर्ती और ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ जागरूकता स्तर न्यून है और पीड़ित व्यक्ति शिकायत करने के लिए आगे नहीं आते, समायोजन करना आवश्यक है। इसके अलावा स्कीम से निधियों का उपयोग प्रवर्तन एजेन्सियों में स्टाफ के प्रशिक्षण के लिए किया जाना चाहिए। उन्हें अनुसूचित जातियों की समस्याओं और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई भी भेदभाव बगैर पता लगे न रहे और बगैर दण्डित न रहे, उनकी डयुटी और जिम्मेदारी के प्रति उपयुक्त रूप से संवेदी बनाए जाने के लिए किया जाना चाहिए।

6.7.3 केन्द्रीय सरकार की जिन एजेन्सियों को पेश आने वाली समस्याओं में से एक समय पर सूचनाभाव की है। राज्य सरकारें, अत्याचार संबंधी मामले की मासिक, त्रैमासिक और वार्षिक रिपोर्टें नेमी तौर पर भेजती हैं किन्तु ये रिपोर्टें कोई प्रभावी कार्रवाई करने से पहले काफी देर से प्राप्त होती है। सरकार के प्रचालनों में आई सी टी के बढ़ते उपयोग के साथ अब वास्तविक समय डाटा एकत्रित करना और विशलेषित करना तथा तत्काल कार्रवाई करना, सम्भव होना चाहिए। उदाहरण के लिए, "पोलनेट", एक उपग्रह आधारित पुलिस दूर-संचार नेटवर्क, पूर्णता के उच्च स्तर पर है और इसके एक बार पूर्ण हो जाने पर "पोलनेट" से थाना स्तर पर दूर-संचार संयोजकता उपलब्ध होनी चाहिए।

6.8 विनियामक और विकास कार्यक्रमों का अभिसरण

6.8.1 अनुसूचित जातियों के सदस्यों को अत्याचारों से रोकने व संरक्षण प्रदान करने के लिए विद्यमान विधानों व अन्य कानूनों के प्रभावी कार्यान्वयन के माध्यम से सामाजिक न्याय विवादों का समाधान करने के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक कि विकासात्मक स्कीमों का प्रभावी और समयबद्ध तरीके से कार्यान्वयन न किया जाए। सिफारिश की जाती है कि अनु. जातियों के लिए विकास स्कीमों के कार्यान्वयन के लिए एक दशकीय संदर्श योजना तैयार की जानी चाहिए।

6.9 सिविल सोसायटी संगठनों (सी एस ओ) को शामिल करना

6.9.1 बहुत से सिविल सोसायटी संगठन अनु. जातियों के लाभार्थ परियोजनाएं कार्यान्वित कर रहे हैं जिनमें सरकार से सहायता अनुदान और वित्तीय सहायता सम्मिलित है । यह भी समान रूप से महत्वपूर्ण है कि इन सी एस ओ को इन दुर्गम और दूरवर्ती क्षेत्रों में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित और संवेदीकृत बनाया जाना चाहिए जहाँ विकास परियोजनाएं आवश्यक हैं तथा सी एस ओ की विद्यमानता न्यूनतम है। सी एस ओ को, अनु. जातियों को अत्याचार, भेदभाव और शोषण के खिलाफ निडरता के साथ और इस विश्वास के साथ कि उनकी शिकायतों पर कानून के अनुसार तुरंत कार्रवाई की जाएगी, अपनी आवाज उठाने के लिए उनकी मदद करने के वास्ते भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

6.10 आपराधिक मामलों की शीघ्र विचारण

6.10.1 संबंधित उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश के नियंत्रण के तहत एक आन्तरिक निगरानी पद्धति को संस्थागत बनाना आवश्यक है। प्रत्येक मास के अन्त में, उपयुक्त न्यायालयों में विचारणाधीन लम्बित ऐसे मामलों की यह पता लगाने के लिए समीक्षा की जानी चाहिए कि क्या विचारण का स्थगन, जो प्रायः होता है, न्यायोचित कारणों से था। अनेक बार रक्षा वकीलों द्वारा व्यर्थ के आधारों पर, केवल अभियोजन गवाहों को तोड़ने के लिए, स्थगनों की मांग की जाती है। उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश द्वारा ऐसी समीक्षा से यह पता लगाने में मदद मिलेगी कि क्या किसी गवाह को, जिसे गवाही देने के लिए बुलाया गया था और न्यायालय में वास्तव में उपस्थित था, सुनवाई के उस दिन उसे बगैर गवाही लिए और जिरह किए बगैर वापस भेज दिया गया था।

6.11 सिफारिशें

क – सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–आयामीय प्रशासनिक कार्यनीति अपनानी चाहिए कि अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए किए गए संवैधानिक, कानूनी और प्रशासनिक प्रावधानों को सच्ची भावना के साथ कार्यान्वित किया जाए।

ख – अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित भेदभाव के मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के लिए ऐसे मामलों की समीक्षा करने के वास्ते, उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश के नियंत्रणाधीन एक आन्तरिक प्रणाली कायम की जानी चाहिए।

ग – सामाजिक और साम्प्रदायिक सामन्जस्य प्रोत्साहित करने तथा अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के विरूद्ध भेदभाव को रोकने के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों को सकारात्मक डयुटी सौंपे जाने की जरूरत है।

घ– सामाजिक भेदभाव के मामलों का पता लगाने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण आयोजित करने के लिए स्वतंत्र एजेन्सियों की सेवाएं प्राप्त करने की जरूरत है।

ड.– भेदभाव और अत्याचारों के लिए दण्डित करने संबंधी कानूनों और उपायों के बारे में जागरूकता का प्रसार करने की जरूरत है। उन क्षेत्रों में जहाँ जागरूकता स्तर निम्न है, एक सु–लक्षित जागरूकता अभियान आयोजित करना आवश्यक है। "भेद्य क्षेत्रों" का पता लगाने के लिए जिला प्रशासन को स्वतन्त्र सर्वेक्षण आयोजित करने चाहिए।

च– प्रशासन तथा पुलिस को, अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की विशेष समस्याओं के संबंध में, संवेदी बनाया जाना चाहिए। उन्हें, कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराधों का पता

लगाने और जाँच में और अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। संवेदी बनाने की प्रक्रिया में उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मदद मिल सकती है।

छ– प्रवर्तन एजेन्सियों को स्पष्ट शब्दों में यह बता दिया जाना चाहिए कि कमजोर वर्गों के अधिकारों के प्रवर्तन को और गड़बडी होने अथवा बदले के भय के कारण कम महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

ज– प्रशासन को पीड़ितों के पुनर्वास पर बल देना चाहिए तथा उन्हें परामर्श देने सहित सभी अपेक्षित सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

झ– जहाँ तक सम्भव हो, पर्याप्त संख्या में अनु. जाति और अनु. जनजाति आबादी वाले पुलिस स्टेशनों में पुलिस कार्मिकों की तैनाती ऐसे समुदायों की आबादी के अनुपात में की जानी चाहिए। उन स्थानों के मामलों में भी यही सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए जहाँ भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यकों का अनुपात काफी हो।

ञ – समानता को प्रोत्साहित करने तथा सामाजिक भेदभाव को सक्रियता के साथ चैक करने के लिए सभी सार्वजनिक प्राधिकारियों को सांविधिक डयुटी सौंपी जानी चाहिए।

ट– प्रोत्साहनों की एक पद्धति प्रारंभ करना वांछनीय होगा जिसके अन्तर्गत अधिकारियों द्वारा अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव/अत्याचारों का पता लगाने और उनके सफलतापूर्वक अभियोजन के लिए उन्हें उपयुक्त रूप से सम्मानित किया जाना चाहिए।

ठ – कानून प्रवर्तन एजेन्सियों को अनु. जातियों की समस्याओं के प्रति उपुक्त रूप से संवेदी बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रायोजित करने तथा कानूनों का सख्ती के साथ प्रवर्तन करने की जरूरत है।

ड – स्थानीय शासनों को नगरपालिकाओं और पंचायतों को विभिन्न सामाजिक विधानों के प्रभावी प्रवर्तन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रियतापूर्वक सम्मिलित किया जाना चाहिए।

ढ – अनु. जातियों के विकास के लिए सरकार के प्रयासों को पूरक बनाने में कम्पनी क्षेत्रक तथा एन जी ओ को शामिल किए जाने की जरूरत है। ऐसी स्वैच्छिक कार्रवाई न केवल अनु. जातियों के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण की दिशा में बल्कि उन्हें अत्याचारों, भेदभाव व शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की दिशा में भी की जानी चाहिए।

7

अनु. जनजातियों से सम्बद्ध मुद्दे

7.1 2001 की जनगणना के अनुसार, देश में अनु. जनजातियों की संख्या 84.32 मिलियन है जो कुल आबादी का 8.2 प्रतिशत है। [36] इनमें से लगभग 1.37 मिलियन (1.57 प्रतिशत) आदिम जनजातीय समूहों (पी टी जी) से है। अनु. जनजातियों के मानव विकास सूचक (एच डी आई), सभी प्रतिमानों, जैसेकि शिक्षा, स्वास्थ्य, आय आदि की दृष्टि से, शेष आबादी की तुलना में कम हैं। इसके अलावा, शेष क्षेत्रों की तुलना में जनजातीय क्षेत्रों में अवस्थापना में अन्तर में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। [37] जनजातियों की स्थिति सामाजिक संरचना के इर्द-गिर्द घूमती है। जनजातीय लोगों की सामाजिक असमानताओं के शोषण के विभिन्न रूप हैं, जैसे कि बंधुआ मजदूर, बलित श्रम और ऋणग्रस्तता, व्यापारियों, साहूकारों और वन ठेकेदारों द्वारा भी उनका शोषण किया जाता है।

चित्र 7.1 : निर्धनता अनुपात (ग्रामीण)

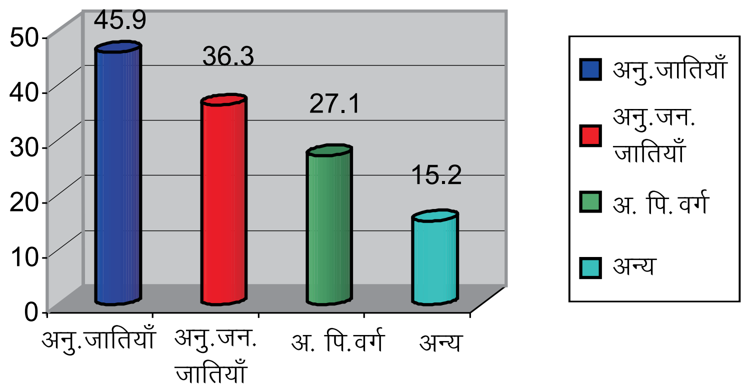

स्त्रोत : देखें पैराग्राफ 8.3

7.2 सामाजिक न्याय

7.2.1 अनु. जातियों के सदस्यों की तरह, जनजातियों का भी उत्पीड़न किया जाता है। न्यायालयों द्वारा अनु. जनजातियों के सदस्यों के विरूद्ध किए गए अपराधों के मामलों के निपटान के संबंध में स्थिति, अनु. जातियों के मामले से भिन्न नहीं है जैसाकि निम्नलिखित तालिका से पता चलता है:

[36] वार्षिक रिपोर्ट 2006-07, जनजातीय मामले मंत्रालय, भारत सरकार

[37] वार्षिक रिपोर्ट 2004-05, जनजातीय मामले मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका 7.1 : वर्ष 2006 के दौरान न्यायालयों द्वारा अनु. जनजातियों के विरूद्ध किए गए अपराधों के मामलों का निपटान

मामलों की संख्या								
					जिनमें विचारण पूरा हो गया है			
क्रम सं0	अपराध शीर्ष	विचारण के लिए मामलों की कुल संख्या, पिछले वर्ष से बकाया मामलों सहित	सरकार द्वारा वापस लिए गए मामले	संयोजित अथवा वापस लिए गए	सजा प्राप्त	दोषमुक्त अथवा छोड़ दिया गया	जोड़	वर्ष के अन्त में लम्बित विचारण
1	पी सी आर अधिनियम 1995	217	0	0	2	70	72	145
2	अनु. जाति/अनु. जनजाति अत्याचारों की रोकथाम अधिनियम, 1989	5621	0	40	255	716	1016	4565

स्त्रोत: "क्राइम इन इण्डिया", 2006 : एन सी आर बी

7.7.2 जैसा कि ऊपर बताया गया है, पी सी आर अधिनियम के अन्तर्गत अनु. जनजातियों के सदस्यों के विरूद्ध किए गए अपराधों के कुल लम्बित 217 मामलों में से वर्ष 2006 में केवल 70 मामलों में विचारण पूरे हुए, तथा केवल 2 मामले दोषसिद्धी में परिणत हुए और 2006 के अन्त में 145 मामले विचारण के लिए लम्बित थे। जहाँ तक अनु. जनजाति अत्याचार रोकथाम अधिनियम के प्रावधानों के तहत अनु. जातियों के सदस्यों के विरूद्ध किए गए अपराधों का संबंध है। विचाराधीन लम्बित 5621 मामलों में से 40 मामले

सरकार द्वारा संयोजित किए गए तथा केवल 255 मामले दोषसिद्धी में परिणत हुए, तथा वर्ष 2006 के अन्त में न्यायालयों में 4565 मामले लम्बित थे।

चित्र: 7.3 शिशु मृत्यु दर

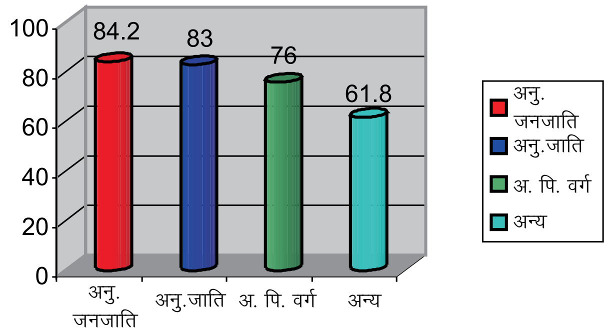

स्त्रोत : देखे पैराग्राफ 8.3

7.2.3 कानूनों के कार्यान्वयन और क्षमता निर्माण की दृष्टि से, आयोग द्वारा अनु. जातियों के मामले में की गई सिफारिशें अनु. जनजातियों के संबंध में भी सही हैं।

7.3 पंचायत (अनु. क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996

7.3.1 पंचायत (अनु क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम, 1996 (पेसा) एक महत्वपूर्ण विधान है जिससे न केवल सक्रिय भागीदारी के रूप में बल्कि एक प्रभावी निर्णय निर्माण, कार्यान्वयनकर्ताओं, मानीटरों और मूल्यांकनकर्ताओं के रूप में भी उनकी सशक्तिकरण प्रक्रिया में जनजातियों की भागीदारी सुनिश्चित होती है। अधिनियम की धारा 4 में प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा की स्थापना की व्यवस्था की गई है। ग्राम सभा, लोगों की परम्पराओं और रीति-रिवाजों, उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक संसाधनों और विवाद समाज की प्रथागत विधि को सुरक्षित और परिरक्षित करने के लिए सशक्त है। "पेसा" में यथा परिकल्पित ग्राम सभा में विवाद निपटान के वास्ते अन्तर निर्मित क्षमता मौजूद है।

7.3.2 जनजातीय समुदायों की एक निर्णय निर्माण परम्परा है जो प्रकृति से प्रजातान्त्रिक है। यदि जनजातीय लोगों को "पेसा" के प्रावधानों और संविधान के 73वें संशोधन की जानकारी प्रदान की जाए तो जनजातीय क्षेत्रों में अधिक भागीदारीपूर्ण प्रजातन्त्र कायम होगा। इसके लिए जागरूकता अभियान आयोजित करने की जरूरत है जिससे कि जनजातियां, निर्वाचित प्रतिनिधियों और सरकारी कार्यकर्ताओं से, विशेष रूप से उन मामलों के संबंध में जहाँ लिए गए अन्तिम निर्णय ग्राम सभा अथवा पंचायत द्वारा पारित संकल्पों के विपरीत हैं, जवाबदेही की मांग करने में समर्थ हो सकें। उस सीमा तक, जनजातियाँ अपने गाँवों के विकास से संबंधित मामलों के संबंध में निर्णय लेने में अपनी आवाज उठाने में समर्थ होंगी, जैसाकि "पेसा" में परिकल्पित है।

7.3.3 "पेसा" और इस विषय पर राज्यों द्वारा अधिनियमित विधानों के एक तुलनात्मक विशलेषण से पता चलता है कि राज्यों द्वारा अनुसमर्थन की प्रक्रिया में "पेसा" के प्रावधानों को काफी शिथिल बना दिया गया है तथा ग्राम सभा की अधिकांश शक्तियां जिला प्रशासन अथवा जिला परिषद को प्रदान कर दी गई हैं। "पेसा" के अधिनियमन का मुख्य उद्देश्य जनजातीय सोसायटी को आजीविकाओं पर नियंत्रण सम्भालने, प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन में अपनी राय व्यक्त करने और जनजातीय लोगों की पारम्परिक संस्कृति और अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने में समर्थ बनाना था। उपलब्ध सूचना से पता चलता है कि "पेसा" के मुख्य उद्देश्य को शिथिल बना दिया गया है जो जनजातीय लोगों के हितों के विरूद्ध है। महत्वपूर्ण मुद्दे, जैसे कि प्राकृतिक संसाधनों की सुलभता, विशेष रूप से लघु वन उत्पादों की परिभाषा और उन पर अधिकार, अभी भी असमाधित हैं, और सामान्य तौर पर ,"पेसा" के उद्देश्य बड़े जनजातीय आबादी वाले किसी भी राज्य में किसी खास ढंग से प्राप्त नहीं हुए हैं।

7.3.4 निचले स्तर पर आयोजना संबंधी विशेष दल की रिपोर्ट - ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के लिए एक कार्रवाई कार्यक्रम- से इस बात का पता चलता है कि ऐसे मामलों में क्या किया जाना चाहिए। "पेसा" को इसका संवैधानिक आधार अनुच्छेद 243 (ड) 4 (ख) और पाँचवी अनुसूची से प्राप्त होता है। केन्द्रीय सरकार पर यह सुनिश्चित करने का दायित्व है कि इसके प्रावधानों पर सख्ती के साथ अमल किया जाए। यदि कोई राज्य सच्ची भावना से "पेसा" के प्रावधानों पर अमल नहीं करता है तो भारत सरकार को, पॉचवी अनुसूची के भाग "क" के प्रावधान 3 के अन्तर्गत निर्देश जारी करने की अपनी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए विशिष्ट निर्देश जारी करने चाहिए। इसके अलावा, समिति ने सिफारिश की है कि एक तरीका, जिसके जरिए आधार स्तर पर "पेसा" के प्रावधानों का कार्यान्वयन सुनिश्चित किया जा सकता है, केन्द्रीय स्तर पर एक मंच स्थापित करने का है जिससे कि अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघनों को इस मंच पर उठाया जा सके तथा विचलनों पर प्रकाश डाला जा सके तथा आवश्यक सुधार लागू किए जा सकें। इसके अतिरिक्त, संविधान की पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत अपेक्षित है कि प्रत्येक राज्य का राज्यपाल एक वार्षिक रिपोर्ट भेजे किन्तु इस अपेक्षा का नियमित रूप से पालन नहीं किया जा रहा है। समिति ने सिफारिश की है कि राज्यपालों से नियमित वार्षिक रिपोर्टों की प्रथा को उचित महत्व दिया जाना चाहिए। ऐसी रिपोर्टों को प्रकाशित और सार्वजनिक किया जाना चाहिए।

7.4 जनजातियों का विस्थापन

7.4.1 बड़ी संख्या में विभिन्न विकास परियोजनाओं, जैसे कि सिंचाई बाँध, पन विद्युत और ताप विद्युत संयंत्रों, कोयला खानों और खनिज आधारित उद्योगों के कारण बड़ी संख्या में जनजातियों का

विस्थापन हुआ है। सत्रह प्रतिमानों के राहत पैकेज के साथ, जिन्हें विस्थापन की अनुमति देने से पहले पूरा किया जाना चाहिए, परियोजना प्रभावित परिवारों (पी ए एफ) के लिए राहत और पुनर्वास के संबंध में एक राष्ट्रीय नीति फरवरी, 2004 में अधिसूचित की गई थी। उसके बाद, भारत सरकार ने अक्तूबर 2007 में एक नई राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनः स्थापन नीति अनुमोदित की किन्तु पी ए एफ के संबंध में ईमानदारीपूर्वक कार्रवाई अभी की जानी शेष है। जनजातियों को न केवल सार्वजनिक प्रयोजनार्थ भूमि के अधिग्रहण द्वारा बल्कि धोखाधड़ीपूर्ण हस्तान्तरणों, जबरन बेदखली, रेहन, पट्टों और अतिक्रमणों के द्वारा भी उनकी भूमियों से वंचित किया जाता है। ग्रामीण विकास मंत्रालय ने विभिन्न राज्यों में जनजातीय भूमि के अन्यसंक्रामण की सीमा का अनुमान लगाया है : आन्ध्र प्रदेश (2.79 लाख एकड़), मध्य प्रदेश (1.58 लाख एकड़), कर्नाटक (1.3 लाख एकड़), गुजरात (1.16 लाख एकड़) । विकास परियोजनाओं अथवा उद्योगों द्वारा विस्थापित अधिकांश जनजातीय लोगों का पुनर्वास संतोषजनक ढंग से नहीं हो पाया है। किए गए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि वर्ष 1990 तक विस्थापित जनजातीय लोगों की संख्या लगभग 85.39 लाख थी जिनमें से 64% का अभी पुनर्वास किया जाना है। विस्थापित लोगों को नए क्षेत्रों में जाने के लिए बाध्य होना पड़ता है और वे प्रायः अनजाने में वन भूमियों का अतिक्रमण करते हैं तथा रिकार्ड पर उन्हें गैर-कानूनी कब्जे वाला समझा जाता है। इस प्रकार के विस्थापन के अनेक दीर्घगामी नकारात्मक और आर्थिक परिणाम हुए हैं। इस विस्थापन और उनके भविष्य से संबंधित अनिश्चितता से ऐसे विस्थापित जनजातीय लोग उग्रवादियों के सहज शिकार हो जाते हैं।

7.4.2 "पेसा" के अन्तर्गत भूमि के अन्यसंक्रामण के रोकने के लिए विशिष्ट रूप से प्रावधान किया गया है। इसके अन्तर्गत उस क्षेत्र के राज्य विधान मंडलों द्वारा ऐसा कानून बनाने की मनाही की गई है जो जनजातीय भूमि के अन्यसंक्रामण को रोकने के उद्देश्य के अनुरूप हो। इसके अन्तर्गत प्रत्येक गाम सभा को अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि के अन्यसंक्रामण को रोकने के लिए सशक्त बनाया गया है और अनु. जनजाति की किसी गैर-कानूनी अन्यसंक्रामित भूमि की बहाली करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करने के वास्ते सशक्त बनाया गया है। तथापि, विडम्बना है कि "पेसा" का उपयोग जनजातियों की कीमत पर औद्योगिक विकास को प्रोत्साहित करने के लिए अविवेकपूर्ण और गलत ढंग से किया गया है। स्थानीय शक्तिशाली वर्गों द्वारा जोड़-तोड़ करने के अनेक उदाहरण भी सामने आए हैं जिन्होंने अपने वैयक्तिक मौद्रिक लाभों के बढ़ावा देने हेतु जनजातीय समूहों को उनके संसाधनों से वंचित कर दिया है जो उन्हें पारम्परिक और संवैधानिक रूप से गांरटीशुदा हैं।

7.4.3 अनुसूचित/जनजातीय क्षेत्रों में खनन और उद्योगों के संबंध में अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न कानून हैं। यह आवश्यक है कि ये कानून संविधान की पाँचवीं और छठी अनुसूचियों के सिद्धान्तों के अनुरूप हों।

7.4.4 राज्य सरकारों को भू-सीमा के संबंध में विद्यमान कानूनों का प्रवर्तन करना चाहिए। कुछ राज्यों में ऐसा प्रावधान हैं कि यदि भूमि पाँच वर्ष तक बगैर जोती पड़ी है तो सरकार ऐसी भूमि पर कब्जा कर सकती है। ऐसी सभी अनजोत भूमि के संबंध में सरकार का डाटाबेस अद्यतन होना चाहिए। यदि इसे ऐसे ही छोड़ दिया तो इसका लाभ उग्रवादियों द्वारा उठाया जा सकता है जो जनजातीय लोगों के हितकारी के रूप में कार्य कर सकते हैं और ऐसी भूमि को उनके बीच बाँट सकते हैं जिसके फलस्वरूप जनजातीय लोग उसके लिए उग्रवादियो के प्रति ऋणी महसूस कर सकते है।

7.4.5 स्थानीय प्रशासन द्वारा अनुरक्षित भू-अभिलेखों की असंतोषजनक स्थिति निराशा और विवाद का एक अन्य स्त्रोत है। भू-अभिलेखों की अनुलब्धता और बहुत से मामलों में भूमि की वास्तविक मिल्कियत के बारे में जानकारी प्रदान करने में प्रशासन की स्पष्ट हिचकिचाहट की वजह से जनजातियों के लिए अपनी मिल्कियत सिद्ध करने के लिए राज्य द्वारा भूमि के अधिग्रहण का विरोध करना कठिन हो जाता है। विद्यमान भू-अभिलेखों की पूर्णरूपेण परिवर्तन और व्यवस्थित ढंग से योजना बनाने तथा ऐसी जानकारी मुक्त रूप से सुलभ कराए जाने का सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा तथा विवादास्पद स्थितियों से बचा जा सकेगा।

7.5 कानूनों और नीतियों के कार्यान्वयन में तालमेल का अभाव

7.5.1 जनजातीय अधिकारों को अधिशासित करने वाले कानूनों की बुनियादी पद्धति अभी भी अस्पष्ट है। इसलिए एक ऐसा कार्य बल गठित करना आवश्यक है जो - (क) केन्द्रीय अधिनियमों और स्थानीय भूमि कानूनों की बीच, (ख) वन और राजस्व अभिलेखों के बीच, और (ग) न्यायालय निर्णयों व अन्य कानूनों के बीच "कानूनों को सामन्जस्यपूर्ण" बनाने का काम करे। जिस समिति ने आधार स्तर पर योजना तैयार करने की जाँच की थी उसने जनजातियों के हितों को प्रोत्साहित करने के लिए ऐसे कानूनों और नीतियों के तालमेलपूर्ण ढंग से प्रचालन की जरूरत का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया था। "पेसा" के कार्यान्वयन में एक महत्वपूर्ण मुद्दा इसके प्रावधानों को केन्द्रीय विधानों के साथ सामन्जस्यपूर्ण बनाने तथा केन्द्रीय मंत्रालयों/ विभागों की संगत नीतियों और स्कीमों की पुनर्संरचना करने का है। इन पाँचवीं अनुसूची क्षेत्रों के प्रति विभिन्न केन्द्रीय कानूनों की संगतता की जाँच करने और "पेसा" के उद्देश्यों और लक्ष्यों के साथ उनका तालमेल बिठाने के लिए अभी तक कोई एकीकृत कार्यवाही नहीं की गई है। ऐसी कार्यवाही की जानी चाहिए। जिन कानूनों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना आवश्यक है वे हैं: भू-अधिग्रहण अधिनियम, 1894, खान और खनिज (विकास विनियमन) अधिनियम, 1957 भारतीय वन अधिनियम 1927, वन संरक्षण अधिनियम 1980 और भारतीय पंजीकरण अधिनियम। जहां तक नीतियों और सी एस एस ।

केन्द्रीय स्कीमों का संबंध है, परती भूमि, जन संसाधन और पाँचवी अनुसूची क्षेत्रों में भूमियों से खनिजों के निष्कर्षण का संबंध है, उनमें "पेसा" के उद्देश्य और प्रयोजन परिलक्षित प्रतीत नहीं होते। इन नीतियों से, जैसा कि उनकी व्याख्या और उनके कार्यान्वयन से पता चलता है, प्राय: जनजातीय लोगों और प्रशासन के बीच विवाद उत्पन्न होते हैं। विशेष रूप से राष्ट्रीय खनिज नीति, 2003, राष्ट्रीय वन नीति, 1988, वन्य जीवन संरक्षण कार्यनीति 2003 और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 के मसौदे की "पेसा" के प्रावधानों के साथ उनका अनुपालन सुनिश्चित करने की दृष्टि से विस्तृत रूप से जाँच किए जाने की जरूरत है।

7.6 प्रशासन में क्षमता निर्माण

7.6.1 जनजातीय लोगों से संबंधित विवादों के साथ डील करने की मुख्य समस्या यह है कि उन्हें संरक्षण प्रदान करने के लिए किए गए विद्यमान संवैधानिक प्रावधानों और कानूनों का इष्टतम रूप से उपयोग नहीं किया जाता है। कतिपय क्षेत्रों में समझा जाता है कि राज्य जनजातियों के हितों के संरक्षण प्रदान करने में सुस्त और असंवेदनशील है तथा सरकारी कार्यकर्ताओं की तैनाती के स्थान पर अनुपस्थिति से समस्या और भी गम्भीर हो जाती है। पर्याप्त संख्या में जनजातीय लोगों को उग्रवादियों ने धीरे-धीरे मुख्यधारा से अलग कर दिया है। जनजातीय लोग उस ढंग से नाराज हैं जिस ढंग से उन्हें प्रवर्तन एजेन्सियों द्वारा उनकी भूमियों और वनों से वंचित कर दिया गया है। ऐसी स्थिति में आवश्यकता इस बात की है कि राज्य का उसकी सच्ची दृष्टि से निर्माण किया जाए। यह आवश्यक है कि प्रशासन अपने मूल कार्य निष्पादित करने में सावधानी बरते तथा जनजातीय क्षेत्रों में आधारभूत सेवाओं की व्यवस्था करे। यह भी आवश्यक है कि सरकार ऐसे क्षेत्रों में कार्य करने के लिए केवल ऐसे पुलिस, राजस्व, वन और विकास अधिकारियों की तैनाती करे जो अपेक्षित प्रशिक्षण प्राप्त हों तथा अपने कार्य के प्रति प्रतिबद्ध हों और जिनकी जनजातीय लोगों के साथ सहानुभूति हो। अधिकारियों को भी ऐसे क्षेत्रों में कार्य करने के लिए अभिप्रेरित किए जाने की जरूरत है। ऐसा करने का एक तरीका यह हो सकता है कि जनजातीय क्षेत्रों में विशिष्ट पदों के लिए अधिकारियों के लिए कठिनाई वेतन, आवास और शिक्षा आदि प्रदान करने में प्राथमिकता प्रदान करके उनका चयन किया जाना चाहिए। इन सभी से अधिकारी ऐसी तैनाती के लिए अपने आपको स्वैच्छा से पेश करेंगे।

7.6.2 किसी प्रकार की कानूनी व्यवस्था अथवा योजना प्रक्रिया को तेज करने से न तो जनजातीय लोगों के अधिकारों के संरक्षण में और न ही अनुसूचित क्षेत्रों के विकास से बेहतर अनुपालन सुनिश्चित होगा जब तक कि स्थानीय स्तर पर प्रशासन को "पेसा" के उद्देश्यों की दिशा में प्रशिक्षित अथवा चुस्त न बनाया जाए। इसलिए प्रत्येक राज्य को पाँचवीं अनुसूची क्षेत्रों में प्रशासनिक तंत्र को सुदृढ़ करने के लिए एक जाँच दल गठित किए जाने की जरूरत है।

7.7 विनियामक और विकास कार्यक्रमों का अभिसरण

7.7.1 अनु. जातियों के मामले की तरह विद्यमान विधानों व अन्य विनियामक उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन के माध्यम से अनु. जनजातियों के लिए सामाजिक न्याय संबंधी उपाय विवादों का समाधन करने में तभी सफल हो सकते हैं यदि उनके साथ-साथ अनु. जनजातियों के लिए विकासात्मक स्कीमों का प्रभावी और समयबद्ध कार्यान्वयन किया जाए। इस प्रयोजनार्थ एक दशकीय विकास योजना तैयार और मिशन मोड़ के जरिए कार्यान्वित की जानी चाहिए।

7.8 जनजातीय नीति

7.8.1 जनजातीय विकास के संबंध में दिशा-निर्देश और अनिवार्यताएं निर्धारित करते हुए कोई स्पष्ट राष्ट्रीय जनजातीय नीति नहीं है। पिछला कार्यक्रम स्वर्गीय प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रतिपादित जनजाति विकास के लिए पंचशील कार्यक्रम था। अब समय है कि जनजाति - विशिष्ट व्यापक विकास हेतु एक राष्ट्रीय कार्रवाई योजना तैयार की जाए जो एक मार्गदर्शी कल्याण उपाय के रूप में कार्य करे।

7.9 अनु. जनजातियों की सूची में समावेशन से सम्बद्ध विवाद

7.9.1 अनु. जनजातियों की सूची में शामिल किए जाने के लिए मांग प्रस्तुत करते समय अनेक, कभी-कभी हिंसक, आन्दोलन हुए हैं। राजस्थान में गुज्जरों द्वारा तथा असम में कुछ समूहों द्वारा ऐसे विवादों के कुछ नवीनतम उदाहरण हैं।

7.9.1.1 संविधान के अनुच्छेद 342 में विनिर्धारित है:

(1) राष्ट्रपति, किसी राज्य अथवा संघ क्षेत्र के संबंध में और जहाँ कहीं राज्य हो, उस मामले में उसके राज्यपाल के साथ परामर्श करने के बाद, एक सार्वजनिक नोटिस द्वारा जनजातियों अथवा जनजातीय समुदायों अथवा जनजातियों के अन्दर किसी भाग अथवा समूह को अथवा जनजातीय समुदायों को अधिसूचित कर सकते हैं जो इस संविधान के प्रयोजनार्थ उस राज्य अथवा संघ राज्य क्षेत्र की दृष्टि से अनु. जनजाति समझी जाएगी, जैसा भी मामला हो।

(2) संसद, कानून के जरिए, खण्ड (1) के अन्तर्गत जारी किसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनु. जनजाति को किसी जनजाति अथवा जनजाति समुदाय के अन्दर शामिल अथवा अलग कर सकती है किन्तु यथोपरोक्त को छोड़कर उक्त खण्ड के तहत जारी अधिसूचना में बाद में किसी अधिसूचना के जरिए भिन्नता नहीं होगी।

7.9.2 जून 1999 में, सरकार ने अनु. जनजातियों की सूचियों में सम्मिलित किए जाने अथवा उसमें से अलग करने के संबंध में प्रक्रियाएं अनुमोदित की थी। इन अनुमोदित मार्गनिर्देशों के अनुसार, केवल उन्हीं दावों को विचारार्थ और सरकार के अनुमोदन के बाद, उठाया जाएगा, जिनपर संबंधित राज्य सरकार, भारत के महापंजीयक और राष्ट्रीय अनु. जनजाति आयोग की सहमति हो, उसे संसद के समक्ष, राष्ट्रपति आदेश में संशोधन करने के लिए, एक विधेयक के रूप में, प्रस्तुत किया जाएगा। इस प्रकार अब पालन की जाने वाली प्रक्रिया काफी व्यापक है। तथापि, जनजातीय मामलों से सम्बद्ध प्रत्येक प्राधिकारी उसमें अन्तर्निहित मुद्दों को अपने ही परिप्रेक्ष्य में देखता है तथा अपनाई जाने वाली प्रकिया मूलतः क्रमिक होती है। इस प्रकार, ऐसे सभी प्राधिकारियों को इकठा करने की एक पद्धति होनी चाहिए, जिसके अन्तर्गत प्रमुख रूप से जनजातीय आबादी वाले राज्यों के परामर्श से, स्पष्ट रूप से परिभाषित प्राचलों के साथ, एक व्यापक क्रियाविधि तय करने का प्रयास किया जाना चाहिए। यह भली-भाँति विदित है कि सूची में किसी जनजाति को शामिल किए जाने से सामान्यत: और अधिक मांग तथा विवाद पैदा होंगे। एक परामर्श तंत्र अपनाने और एक व्यापक प्रक्रिया विकसित करने का प्रयोजन विवाद की गुंजाइश को कम करना तथा एक उचित समयावधि के अन्दर किसी निर्णय पर पहुँचना है।

7.10 सिफारिशें

क– यद्यपि पाँचवीं अनुसूची में सभी राज्यों ने "पेसा" की दृष्टि से अनुपालन विधान अधिनियमित किए हैं, तथापि ग्राम सभा से अन्य निकायों को उनकी शक्तियां प्रदान करके, उनके प्रावधानों को शिथिल कर दिया गया है। विषय मामला कानूनों और साहूकारी से संबंधित नियमों, वन, खनन और उत्पाद शुल्क के संबंध में भी संशोधन नहीं किए गए हैं। यह किया जाना चाहिए। चूक के मामले में, भारत सरकार द्वारा, उल्लंघनों की जाँच करने तथा सुधारात्मक उपाय अपनाने के लिए केन्द्रीय स्तर पर एक मंच स्थापित करने के वास्ते, पाँचवी अनुसूची के भाग "क" के उपबंध 3 के तहत विशिष्ट निर्देश जारी किए जाने की जरूरत है। आयोग संविधान की पाँचवी अनुसूची के अन्तर्गत राज्यपालों की वार्षिक रिपोर्टों के महत्व पर पुनः बल देना चाहेगा।

ख– जागरूकता अभियान आयोजित किए जाने चाहिए, जिससे कि जनजातीय लोगों को "पेसा" के प्रावधानों और संविधान के 73वें संशोधन से अवगत कराया जा सके, जिससे कि उन मामलों में जवाबदेही की मांग की जा सके जिनमें लिए गए अन्तिम निर्णय ग्राम सभा अथवा पंचायत के निर्णयों के विपरीत हों।

ग– भू–जोतों के बारे में जानकारी की मुक्त सुलभता के साथ विद्यमान भू–अभिलेखों में आमूल रूप से परिवर्तन अथवा व्यवस्थित ढंग से उनका पुनर्गठन किया जाना चाहिए।

घ– जनजातीय क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही सरकारी नीतियों और विभिन्न विधानों को "पेसा" के प्रावधानों के साथ सामन्जस्यपूर्ण बनाए जाने की जरूरत है। जिन कानूनों में तालमेल बिठाए जाने की जरूरत है वे हैं : भू–अधिग्रहण अधिनियम 1894, खान और खनिज (विकास तथा विनियमन) अधिनियम, 1957, भारतीय वन अधिनियम, 1927, वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और भारतीय पंजीकरण अधिनियम। राष्ट्रीय नीतियों जैसे कि राष्ट्रीय जल नीति, 2002 राष्ट्रीय खनिज नीति, 2003, राष्ट्रीय वन नीति 1988, वन्य जीवन संरक्षण कार्यनीति, 2002 और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 के मसौदे का "पेसा" के साथ तालमेल बिठाया जाना जरूरी है।

ड. अनु. जनजातीय क्षेत्रों के लिए लागू होने वाले कानूनों का निर्माण संविधान की पाँचवी और छठी अनुसूचियों के सिद्धान्तों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

च– सरकार को ऐसे पुलिस, राजस्व और वन अधिकारियों का चयन करना चाहिए जो प्रशिक्षित हों और जो जिन लोगों की उन्हें सेवा करनी है उन्हें समझें तथा उनके प्रति सहानुभूति बरते।

छ– जनजातियों के कल्याण के लिए एक मार्गदशी चित्र के रूप में कार्य करने के लिए व्यापक विकास हेतु एक राष्ट्रीय कार्रवाई योजना तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए।

ज– जनजातीय क्षेत्रों में विनियामक और विकास कार्यक्रमों का अभिसरण किया जाना चाहिए। इस प्रयोजनार्थ, विवादों के समाधान और समायोजनों के लिए उपयुक्त तंत्र के साथ एक दशकीय विकास योजना तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए।

झ– अनु. जनजातियों की सूची में जनजातियों को शामिल करने और उनके निष्कासन के निर्धारण में लगे प्राधिकारियों को, बड़ी अनु. जाति के लोगों की आबादी वाले राज्यों के साथ, स्पष्ट रूप से परिभाषित प्राचलों के साथ एक व्यापक प्रक्रिया के आधार पर, परामर्श करने की एक पद्धति अपनानी चाहिए।

अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बद्ध मुद्दे

8

8.1 प्रस्तावना

8.1.1 अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों के बीच, अल्पसंख्यकों सहित, बड़ी नाराजगी है कि उन्हें अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के मामले में प्रदान किए गए व्यापक सुधारात्मक पैकेजों के लाभ नहीं दिए गए हैं। इस वजह से प्राय: संघर्ष हुए हैं जो हिंसा में परिणत हुए हैं।

8.1.2 संविधान के अनुच्छेद 15(4), 16 (4) और 340 (1) में उन्हें "पिछड़ा वर्ग" कहा गया है। यद्यपि अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के तहत राज्यों को नागरिकों के सामाजिक तथा शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान करने के लिए, शक्ति प्राप्त है, तथापि अनुच्छेद 340 (1) के तहत पिछड़े वर्गों की स्थितियों की जाँच करने के लिए आयोग गठित करने का प्राधिकार दिया गया है। उपनिवेश काल के दौरान मूलत: प्रयुक्त "पिछड़ा वर्ग" शब्द के अनेक संदर्भ दिए गए किन्तु सामूहिक रूप से पिछड़े के रूप में वर्णित समूहों के समावेशन और निष्कासन के संबंध में कोई स्पष्टत: परिभाषित प्राचल नहीं था। वस्तुत: इस शब्द के अन्तर्गत, कम से कम प्रारम्भिक प्रयोग में, सभी मिले-जुले वर्ग को शामिल किया गया जिसके अन्तर्गत असुविधाप्राप्त और मार्जिनकृत जातियां, जनजातियां तथा समुदाय सम्मिलित थे। [38]

8.1.3 ऐसे समय पर भी जबकि संविधान का निर्माण किया जा रहा था और बहस चल रही थी, इस शब्द की परिभाषा अनिश्चित रही। संविधान सभा की बहस में मौटेतौर पर दो तरह से शब्द का इस्तेमाल किया गया। एक, समाज के सभी वर्गों का समावेशी समूह था, जिसे प्राथमिकतापूर्ण दर्जा दिया जाना था। ऐसे प्रयोग में "पिछड़े वर्ग" के अन्तर्गत "अस्पर्श्य" सम्मिलित थे। अन्य प्रयोग में, शब्द का प्रयोग "अन्य पिछड़े वर्ग" के रूप में किया गया। किन्तु तथ्य यह है कि "पिछड़ा वर्ग" श्रेणी की परिभाषा उतनी निश्चित रूप से नहीं की गई जितनी कि अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के संबंध में की गई, किन्तु इसका तात्पर्य लोगों के अन्य वर्गों से था जो असुविधाप्राप्त और मार्जिनकृत थे।

8.1.4 अनुच्छेद 340(1) राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की स्थिति की जाँच करने और इस प्रयोजनार्थ आयोग गठित करने की शक्ति प्रदान करता है। अनुच्छेद 340 (1) के तहत गठित पहले पिछड़े आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की। रिपोर्ट में, पिछड़ी समझी गई 2399

[38] सच्चर समिति रिपोर्ट, 2007

जातियों और समुदायों की एक सूची प्रस्तुत की गई। इनमें से 237 को सर्वाधिक पिछड़ा समझा गया जिन पर विशेष ध्यान दिए जाने की जरूरत थी। इस प्रकार, "पिछड़े वर्ग" श्रेणी को दो श्रेणियों में बाँटा गया-पिछड़े तथा सर्वाधिक पिछड़े। केन्द्रीय सरकार ने रिपोर्ट को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि रिपोर्ट में पिछड़े वर्गों का विनिर्धारण करने के लिए आर्थिक मापदण्ड का नहीं बल्कि "जाति" का इस्तेमाल किया गया।

8.1.5 द्वितीय अखिल भारत पिछड़ा वर्ग आयोग - मंडल आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1980 में प्रस्तुत की। आयोग ने सामाजिक व शैक्षिक पिछडेपन का आकलन करने के लिए 11 संकेतक तय किए- जाति और वर्ग विशेषताओं का एक मिश्रण। इसने 3473 जातियों की एक विस्तृत सूची तैयार की जिन्हें पिछड़े के रूप में घोषित किया गया। पिछड़े के रूप में किसी जाति अथवा किसी सामाजिक समूह का पता लगाने के लिए प्रत्यक्ष संकेतकों में, श्रेणी परम्परा में उनकी निम्न स्थिति, समूह के अन्दर विवाह के समय कम आयु, अधिक महिला कार्य भागीदारी, अधबीच में पढ़ाई छोड़ देने वालों की ऊँची दर, पेय जल की अनुलब्धता, पारिवारिक सम्पत्तियों का निम्न औसत मूल्य, कच्चे मकानों की प्रचुरता आदि। मंडल आयोग की रिपोर्ट को 1991 में अंशतः कार्यान्वित किया गया।

8.1.6 भारत सरकार की दिनांक 8 सितम्बर 1993 की अधिसूचना की दृष्टि से "अन्य पिछड़े वर्गों" में वे जातियां और समुदाय शामिल हैं जो द्वितीय अखिल भारत पिछड़ा वर्ग आयोग (मंडल आयोग) की रिपोर्ट में दी गई सूची में और अलग-अलग राज्य सरकारों की सूची दोनों में सम्मिलित हैं। इसलिए अ.पि. वर्गों के बारे में ऐतिहासिक डाटा के संबंध में एक बड़ी सीमा है। भारत के महापंजीयक और जनगणना आयुक्त ने जाति-वार सूचना एकत्र करने की प्रथा को (अनु. जातियों और अनु. जनजातियों को छोड़कर) 1931 की जनगणना से बन्द कर दिया। परिणामस्वरूप अ. पि. वर्गों के जनांकिकीय प्रसार और सुविधाओं तक उनकी पहुंच के संबंध में कोई समय-श्रृंखला डाटा उपलब्ध नहीं है। मंडल आयोग ने भी, जिसने "अ.पि. वर्ग" आबादी का अनुमान देश की कुल आबादी का 52 प्रतिशत लगाया था, 1931 की जनगणना डाटा का इस्तेमाल किया था।

8.2 समाजार्थिक सर्वेक्षण

8.2.1 देश में अन्य पिछड़े वर्गों के सम्बन्ध में कोई समाजार्थिक सर्वेक्षण आयोजित नहीं किया गया है। कुछ राज्यों ने "अन्य पिछड़े वर्गों" के विशिष्ट संघटकों का समाजार्थिक सर्वेक्षण आयोजित किया है किन्तु देश में अन्य पिछड़े वर्गों की समाजार्थिक स्थितियों

चित्र 8.1 :निर्धनता अनुपात (शहरी)

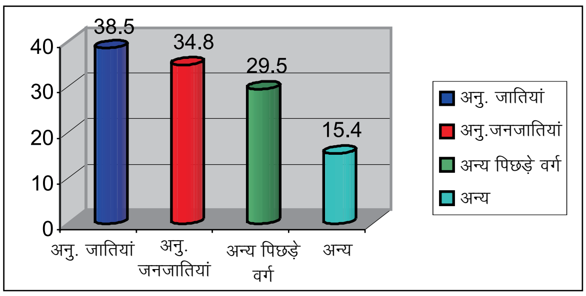

की कोई विस्तृत तस्वीर प्राप्त करना कठिन है। इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार तुरंत "अन्य पिछड़े वर्गों" का एक समाजार्थिक सर्वेक्षण आयोजित करे।

8.3 समाजार्थिक संकेतक

8.3.1 वर्ष 1998-99 से, अ. पि. वर्गों के विकास की समाजार्थिक स्थिति/दर्जे से संबंधित कुछ डाटा विभिन्न सर्वेक्षणों में प्राप्त होना शुरू हो गया है, यथा

(क) 1998-99 - राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण,

(ख) 1999-2000 - एन एस एस ओ का खपत व्यय प्रतिदर्श सर्वेक्षण,

(ग) 1999-2000 - रोजगार के संबंध में एन एस एस ओ रिपोर्ट

(घ) 1999-2000 - भू-जोतों के संबंध में एन एस एस ओ रिपोर्ट

(ङ.) 2002-03 - पारिवारिक सम्पत्तियों और देनदारियों अथवा परिसम्पत्ति और ऋण सर्वेक्षण के संबंध में एन एस एस ओ रिपोर्ट

(च) 2004-05 - रोजगार के संबंध में एन एस एस ओ रिपोर्ट का मसौदा

एन एस एस ओ डाटा के एक विश्लेषण में विभिन्न सर्वेक्षण और रिपोर्टें सम्मिलित हैं तथा अ. पि. वर्गों की समाजार्थिक स्थिति का चित्र निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है (चित्र 8.1 से 8.6):

चित्र 8.2 : पाँच वर्ष से कम मृत्यु दर

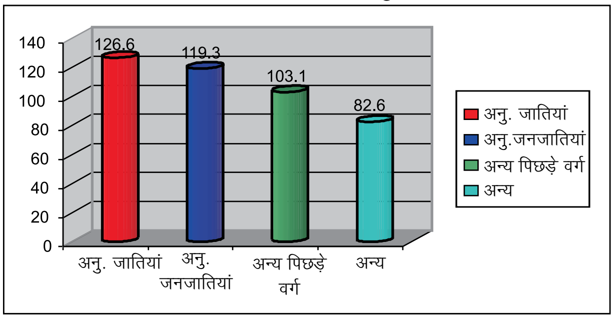

चित्र 8.3 बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या/1000 सामान्य सिद्धान्त स्थिति के अनुसार – ग्रामीण

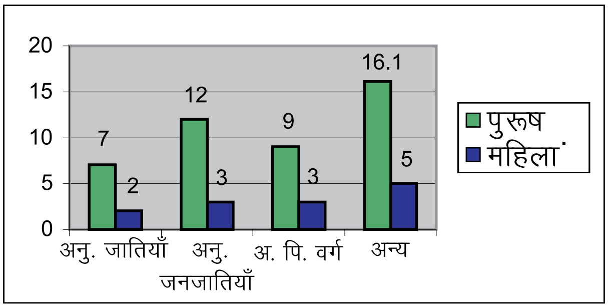

चित्र 8.4 बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या/1000 सामान्य/सिद्धान्त स्थिति के अनुसार – शहरी

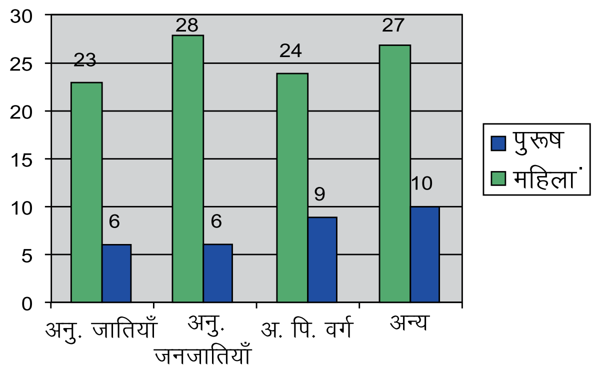

- **निर्धनता**
  - अन्य पिछड़े वर्गों के बीच निर्धनता का भार, एक ओर अनु. जातियों (अनु. जनजातियों के बीच और दूसरी ओर गैर-अनु. जाति, अनु. जनजाति-अन्य पिछड़ा वर्ग (अन्य) की तुलना में मध्यवर्ती है। सामान्यत: अनु. जातियों/अनु. जनजातियों की निर्धनता "अन्यों" की तुलना में तीन गुणा है, जबकि अ. पि. वर्गों के संबंध में यह "अन्यों" की तुलना में दुगनी है।

चित्र 8.5 परिसम्पत्ति मिल्कियत

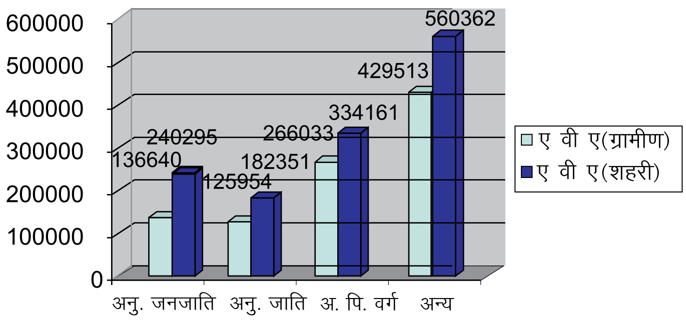

* ए वी ए-परिसम्पत्तियों का औसत मूल्य

चित्र 8.6 ऋणग्रस्तता

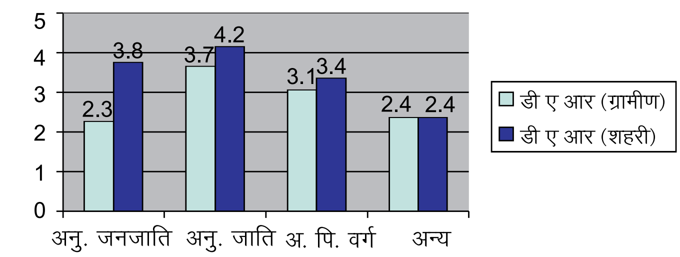

* डी ए आर -ऋण परिसम्पत्ति अनुपात

- स्वास्थ्य संकेतक
  - जहाँ तक स्वास्थ्य संकेतकों का संबंध है, अ. पि. वर्ग, अनु. जातियों/अनु. जनजातियों की तुलना में "अन्यों" के कहीं अधिक निकट हैं, जो काफी पीछे हैं।
- बेरोजगारी
  - मुक्त बेरोजगारी, सामान्य सिद्धान्त स्थिति (यू पी एस) द्वारा यथामापित, अ. पि. वर्गों के बीच, "अन्यों" के बीच की तुलना में कुल मिलाकर सतत रूप से उच्च है।
  - बेरोजगारी, अल्प रोजगार सहित, चालू दैनिक स्थिति (सी डी एस) द्वारा यथा मापित, ग्रामीण क्षेत्रों में सभी सामाजिक समूहों के बीच शहरी क्षेत्र में न्यूनतम है तथा अनु. जनजातियों की तुलना में कोई खास न्यून नहीं, किन्तु "अन्यों" की तुलना में कम है।
- परिसम्पत्ति मिल्कियत
  - अ. पि. वर्गों की प्रति परिवार परिसम्पत्ति मिल्कियत ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में (भूमि सहित), अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की तुलना में दुगनी है, किन्तु "अन्यों" की तुलना में लगभग केवल दो-तिहाई है।

- ऋणग्रस्तता
  - तथापि, ऋणग्रस्तता का भार, और परिणामत: ऋण के अनुपात में परिसम्पत्ति, सभी सामाजिक समूहों की तुलना में अ. पि. वर्गों के बीच सर्वाधिक है। यह भी प्रतीत होता है कि अ. पि. वर्ग कम अनुपात में अपना ऋण संस्थागत स्त्रोतों से लेते हैं तथा सभी अन्य सामाजिक समूहों की तुलना में अनौपचारिक स्त्रोतों पर अधिक निर्भर रहते हैं।

8.4 सामाजिक सशक्तीकरण

8.4.1 स्पष्टत: अ. पि. वर्गों की समाजार्थिक स्थितियां ऐसी हैं कि इसके लिए उन्हें अन्यों के समान लाने के लिए तथा उन्हें मुख्यधारा के साथ जोड़ने के लिए, उपाय करने की जरूरत होगी। मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्ति की केन्द्र प्रायोजित स्कीम जैसी स्कीमें, जो अनु. जातियों के लिए उपलब्ध हैं, अ.पि. वर्गों के लिए भी, अल्पसंख्यक सहित, लागू की जा सकती हैं। अन्यों के साथ-साथ, बाबासाहेब अम्बेडकर राष्ट्रीय समाज विज्ञान संस्थान (2000), टाटा समाज विज्ञान संस्थान (1999) और अनुसंधान कार्रवाई तथा प्रशिक्षण केन्द्र (2000) द्वारा स्कीम के संबंध में आयोजित विभिन्न मूल्यांकन अध्ययनों में सिफारिश की गई है कि इस लाभ को अन्य आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े समुदायों के लिए अल्पसंख्यक समुदायों सहित, लागू किया जा सकता है।

8.4.2 2001 जनगणना से पता चलता है कि मुसलमानों के बीच 59.1 प्रतिशत साक्षरता 64.8 प्रतिशत के राष्ट्रीय औसत से कम है। 50.1 प्रतिशत साक्षरता दर के साथ मुस्लिम महिलाओं की शैक्षिक स्थिति बहुत निम्न है। मुसलमानों के, विशेष रूप से बालिकाओं के शैक्षिक उत्थान के लिए यह सुनिश्चित करना जरूरी है कि मुस्लिम समुदाय की बहुल आबादी वाले स्थानों पर पर्याप्त संख्या में प्राथमिक स्कूल स्थापित किए जाएं।

8.4.3 कुल मिलाकर, अ. पि. वर्गों के सामाजिक सशक्तीकरण के लिए अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के लिए स्कीमों की तरह ही विशेष स्कीमें प्रारंभ किए जाने की जरूरत है।

8.5 आर्थिक सशक्तीकरण

8.5.1 जैसाकि पहले बताया गया है, एन एस एस ओ सर्वेक्षणों से पता चलता है कि अ. पि. वर्गों के बीच निर्धनता का भार, एक ओर अनु. जातियों/अनु. जनजातियों के बीच और दूसरी ओर "अन्यों" के बीच मध्यवर्ती है। हमने यह भी देखा कि किस प्रकार मुक्त बेरोजगारी "अन्यों" की तुलना में सतत रूप से अन्य पिछड़े वर्गों के बीच अधिक है। जहाँ तक परिसम्पत्ति मिल्कियत, भूमि सहित, का संबंध है, मिल्कियत,

ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में "अन्यों" की तुलना में लगभग दो-तिहाई है। ऋणग्रस्तता का भार और परिणामत: परिसम्पत्ति की तुलना में ऋण का अनुपात सभी सामाजिक समूहों में अ. पि. वर्गों के बीच सबसे अधिक है।

8.5.2 स्पष्टत:, यदि अ. पि. वर्गों को "अन्यों" के समान लाया जाए तथा मुख्य धारा का एक भाग बनाया जाए तो उन्हें रोजगार व आय सृजन कार्यकलापों तथा निर्धनता उपशमन के जरिए आर्थिक रूप से सशक्त बनाना होगा। अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के लिए तैयार की गई स्कीमों की तरह ही, स्कीमों के एक विस्तृत पैकेज की जरूरत है जिससे कि अ. पि. वर्ग एक योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया के माध्यम से सामाजिक परिवर्तनों के एजेन्टों के रूप में अपनी क्षमता और योग्यताओं का विकास करने में समर्थ हो सकें।

8.5.3 संविधान के अनुच्छेद 15(4) के तहत राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों की उन्नति के लिए विशेष प्रावधान करने की शक्ति प्राप्त है। अनुच्छेद 46 के तहत राज्य पर कमजोर वर्ग के लोगों के आर्थिक और शैक्षिक हितों को विशेष सावधानी के साथ प्रोत्साहित करने का दायित्व सौंपा गया है। इसलिए, राज्य, अ. पि. वर्गों के क्षमता निर्माण की दिशा में, अल्पसंख्यक सहित, एक व्यापक स्कीम तैयार और कार्यान्वित करने में, अपने संवैधानिक दायित्व की पूर्ति करेंगे जिससे उनकी समाजार्थिक स्थिति में सुधार होगा तथा इस प्रकार उन्हें शेष समाज के बराबर लाया जा सकता है। इससे "अन्यों" के साथ अ. पि. वर्गों के संघर्षों में कमी आएगी।

8.6 **सिफारिशें**

क–सरकार, एक सर्वेक्षण की क्रियाविधि तय कर सकती है और अन्य पिछड़े वर्गों का राज्य–वार समाजार्थिक सर्वेक्षण आयोजित कर सकती है जो उनकी स्थिति सुधारने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का एक आधार बन सकता है।

ख– सरकार द्वारा अ. पि. वर्गों के क्षमता निर्माण के लिए एक व्यापक स्कीम तैयार और कार्यान्वित करने की जरूरत है जिससे वे शेष समाज के बराबर आ सकेंगे।

धार्मिक संघर्ष

9

9.1 प्रस्तावना

9.1.1 हमारे संविधान के आमुख में, सभी नागरिकों के लिए "विचारण, अभिव्यक्ति, विश्वास, श्रद्धा और पूजा" करने के इरादे की स्पष्ट रूप से घोषणा की गई है। अनुच्छेद 25 में विवेक और मुक्त रूप से धर्म अपनाने, पालन और प्रचार करने की आजादी की गारंटी दी गई है। अनुच्छेद 26 के तहत धार्मिक संस्थानों और धार्मिक मामलों का प्रबंध करने का अधिकार सुनिश्चित है। अनुच्छेद 29 के तहत सभी नागरिकों को अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति बनाए रखने का अधिकार प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 30 के तहत, धार्मिक और भाषाई अल्पसंख्यकों को अपनी पसंद के शैक्षिक संस्थान स्थापित और संचालित करने का अधिकार प्रदान करके उनके हितों के संरक्षण की व्यवस्था है तथा राज्य को सहायता प्रदान करने के मामले में अल्पसंख्यकों के संस्थानों के विरूद्ध भेदभाव न बरतने का निदेश दिया गया है। इसके अलावा, अनुच्छेद 350 "क" के तहत राज्य को शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मातृभाषा में शिक्षा हेतु सुविधाएं प्रदान करने का निदेश दिया गया है।

9.1.2 आजादी के बाद, देश में बड़े पैमाने पर साम्प्रदायिक हिंसाएं हुई हैं। आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट में साम्प्रदायिक दंगों पर चर्चा करते हुए कहा है कि :

"2.2.1.1 मौटे तौर पर साम्प्रदायिकता का अर्थ अपने साम्प्रदायिक समूह, धर्म, भाषाई और वंश - के प्रति, बड़े समाज अथवा पूरे राष्ट्र के प्रति न होकर अन्ध निष्ठा है। अपने उग्र रूप में साम्प्रदायिकता के शत्रु समझे जाने वाले समूहों के प्रति घृणा की भावना अन्तर्निहित है, जो अन्तत: अन्य समुदायों पर हिंसक हमलों का रूप ले लेती है। भारत में सामान्य एकता और विभिन्न मतों के शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व को सभ्य विश्व में ईर्ष्या की दृष्टि से देखा जाता है। फिर भी, हमारे समाज की विविधता और हमारी जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखते हुए हमारे अन्दर साम्प्रदायिक तनाव छिपा है जो कभी-कभी हिंसा का रूप ले लेता है। कभी-कभी, या तो धर्मान्धता और रूढ़िवादी नेतृत्व अथवा अराजक राजनीतिक कार्यकर्ता, अल्पकालिक मत लाभ पर नजर रखते हुए, जानबूझकर अथवा दुर्भावना के साथ साम्प्रदायिक विचारों, घृणा और यहाँ तक कि हिंसा भड़का देते हैं ताकि मतों का ध्रुवीकरण हो सके। अधिकांश साम्प्रदायिक दंगे हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच हुए हैं, यद्यपि अन्य समुदायों के बीच भी कभी-कभी संघर्ष हुए हैं। इसी प्रकार, समय-समय पर अन्य जातिगत संघर्ष भी हुए हैं।

2.2.1.2 यद्यपि अनेक साम्प्रदायिक दंगों को प्रभावी ढंग से निपटाया गया है, तथापि प्रशासन द्वारा तुरंत और प्रभावी ढंग से साम्प्रदायिक स्थितियों से निपटने में अनेक गम्भीर असफलताएं भी हुई हैं। अनेक जाँच आयोगों ने, जैसे कि जस्टिस रघुबीर दयाल आयोग (रांची दंगे, 1967), जस्टिस पी. जगमोहन रेड्डी आयोग (अहमदाबाद दंगे, 1969), जस्टिस डी.पी. मडोन आयोग (भिवन्डी दंगे, 1970), जस्टिस रंगनाथ मिश्रा आयोग (दिल्ली दंगे, 1984), जस्टिस बी.एन. श्रीकृष्णा आयोग (बम्बई दंगे 1992-93) और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा भी इन दंगों के कारणों की जाँच की गई है तथा कारणों और उनसे निपटने में प्रशासन व पुलिस की प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया गया है।"

9.1.3 आयोग ने विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों की जाँच की जिन्होंने विभिन्न साम्प्रदायिक दंगों की जाँच की थी तथा पाया कि उन्होंने निम्नलिखित समस्याओं और कमियों का उल्लेख किया (सार्वजनिक व्यवस्था पर रिपोर्ट का पैराग्राफ 2.2.1.5):

"व्यवस्था संबंधी समस्याएं

- विवाद निपटान तंत्र अपर्याप्त हैं;
- एकत्र की गई आसूचना पूर्णत: सही, सामयिक और कार्रवाई-योग्य नहीं होती ; और
- घटिया कार्मिक नीतियाँ-अधिकारियों का असंतोषजनक चयन और अल्प कार्यावधि - जिसकी वजह से स्थानीय स्थितियों की अपर्याप्त समझ होती है।

प्रशासनिक कमियां

- प्रशासन और पुलिस उन संकेतकों का अन्दाजा नहीं लगा पाते और उन्हें समझ नहीं पाते जिनकी वजह से पहले हिंसा हुई थी ;
- प्रथम संकेत मिलने के बाद भी, प्रशासन और पुलिस धीमी प्रतिक्रिया करते हैं;
- क्षेत्रीय कार्यकर्ता अपने वरिष्ठ अधिकारियों से अनुदेश प्राप्त करते हैं और उनकी प्रतीक्षा करते हैं तथा वरिष्ठ अधिकारी स्थानीय पहल और प्राधिकारी की अवहेलना करते हुए मामले में दखल देते हैं ;
- कभी-कभी प्रशासन और पुलिस पक्षपातपूर्ण ढंग से कार्रवाई करती है; और
- कभी-कभी नेतृत्व असफल रहता है, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति बिलकुल अनदेखी कर देते हैं।

दंगा-पश्चात प्रबंधन कमियां

- प्राय: पुनर्वास की उपेक्षा की जाती है, जिसकी वजह से गुस्सा और बचा-कुचा आक्रोश पैदा होता है ; और

- अधिकारियों को उनकी असफलताओं के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाता, इस प्रकार सुस्ती और अक्षमता बढ़ती है।"

9.1.4 सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण के संदर्भ में, आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट में, पुलिस तथा दाण्डिक न्याय पद्धति में सुधारों के संबंध में वृहद रूप से सिफारिश करते हुए इन मुद्दों की व्यापक रूप से जाँच करते हुए इन मुददों की व्यापक रूप से जाँच की थी। जहाँ तक संघर्षों के समाधान के लिए क्षमता निर्माण का संबंध है, संघर्षपूर्ण स्थितियों से निपटने के लिए आन्तरिक पद्धतियाँ विकसित करने में नागरिकों की और भागीदारी की जरूरत है। इन नागरिक-केन्द्रिक पहलों में निम्नलिखित सम्मिलित होंगी:

i) पुलिस के साथ सहयोग और समन्वयन (सामुदायिक पुलिस व्यवस्था)

ii) प्रशासन के साथ सहयोग और समन्वय (नागरिक समितियां)

9.2 सामुदायिक पुलिस व्यवस्था

9.2.1 ऊपर सुझाए गए उपायों की सफलता तय करने के लिए, पुलिस तथा अन्य प्रशासनिक तंत्र की निष्पक्षता में विभिन्न समुदायों का विश्वास एक महत्वपूर्ण कारक है। समुदाय की जरूरतों के अति प्रतिक्रियाशील ढंग से पुलिस की भागीदारी तथा बदले में समुदाय द्वारा अपनी पुलिस व्यवस्था में भाग लेना तथा पुलिस की सहायता करना, साम्प्रदायिक विवादों से निपटने के लिए एक आदर्श स्थिति है। सामुदायिक पुलिस व्यवस्था की अवधारणा दक्षिण अफ्रीका गणराज्य के संविधान में सम्मिलित है। संविधान के प्रावधानों के अनुरूप, दक्षिण अफ्रीका पुलिस अधिनियम, 1995 में पुलिस स्टेशन स्तर पर सामुदायिक पुलिस मंच कायम करने का प्रावधान सम्मिलित है। अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, ये पुलिस तथा समुदाय के बीच समन्वय के लिए मंचों के रूप में कार्य करेंगे। समन्वय का उद्देश्य निम्नलिखित है :

क- समुदाय तथा पुलिस के बीच भागीदारी कायम करना और उसे बनाए रखना।

ख- पुलिस और समुदाय के बीच संचार और सहयोग प्रोत्साहित करना।

ग- समुदाय में पुलिस सेवाएं प्रदान करने में सुधार।

घ- सेवा में पारदर्शिता तथा समुदाय के प्रति सेवा की जवाबदेही में सुधार करना।

ड.- पुलिस और समुदाय द्वारा संयुक्त समस्या विनिर्धारण और समस्या समाधान को प्रोत्साहित करना।

9.2.2 **पुलिस नागरिक अन्योन्यक्रिया :** अनेक देशों में, जहाँ संघर्ष सम्भावित है, पुलिस बल ने नागरिकों को संवेदी बनाने के लिए, अनेक कार्यक्रम शुरू किए हैं। ऐसे कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य नागरिकों की आत्मरक्षा क्षमता का विकास करना तथा उन्हें ऐसे संघर्षों के मूल कारणों की जानकारी देकर उनकी भेद्यता को कम करना तथा उन्हें यह समझने में समर्थ बनाना है कि इनमें से अधिकांश स्थितियों को "पूर्ण अधिकारों और गलतियों" के बीच सीमित नहीं बनाया जा सकता। कनाडा में ओनटारियो पुलिस द्वारा ऐसा एक कार्यक्रम अनुकरणीय है। इसे "ओनटारियो पुलिस अल्पसंख्यक अन्योन्यक्रिया" के नाम से जाना जाता है तथा इसका उद्देश्य, विशेष रूप से अल्पसंख्यक समुदाय का विश्वास प्राप्त करना है। इस कार्यक्रम से, लक्ष्य समुदाय के सदस्यों को सतत आधार पर एक अनौपचारिक व भयभीत रहित वातावरण में पुलिस के साथ विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त होता है। कार्यक्रम के अन्तर्गत, एक मुक्त मंच शैली प्रारूप के साथ, ढाई-ढाई घन्टे की अवधि के आठ सत्र होते हैं। सत्रों के अन्तर्गत पुलिस द्वारा गिरफतारी, नजरबंदी, सामुदायिक पुलिस व्यवस्था, महिलाओं के साथ बर्ताव, उपलब्ध पुलिस सेवांए, युवा और पुलिस नागरिकों के अधिकार और दायित्व जैसे विषय सम्मिलित होते हैं। जो पुलिस अधिकारी ऐसे सत्र आयोजित करते हैं उनकी निष्ठा, पुलिस की साम्यता संवर्धन भूमिका के बारे में अल्पसंख्यकों में विश्वास निर्माण करने में बहुत मददगार होती है। इससे लोगों को लम्बे अर्से से बकाया रहते स्थानीय विवादों के प्रति और अधिक संतुलित दृष्टिकोण अपनाने में भी सुविधा होती है।

9.2.3 आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट में सामुदायिक पुलिस व्यवस्था से जुड़े मामलों पर भी चर्चा की है : यह नीचे पुन: उद्धरित है:

"5.15.1 सामुदायिक पुलिस पद्धति की निम्न प्रकार परिभाषा की गई है:

> *"सामुदायिक पुलिस पद्धति, अपराध की रोकथाम और पता लगाने , सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने और स्थानीय विवादों का निपटान करने के लिए समुदाय के साथ कार्य करने की एक क्षेत्र विशिष्ट सक्रिय प्रक्रिया है जिससे कि बेहतर जीवन और सुरक्षा की भावना प्रदान की जा सके"।*

5.1.5.2 डेविड एच. बेली के अनुसार[39] सामुदायिक पुलिस पद्धति के चार घटक हैं :

1) *समुदाय आधारित अपराध रोकथाम;*
2) *जनता के साथ आपात स्थिति-भिन्न अन्योन्यक्रिया हेतु पेट्रोल तैनाती:;*

[39] स्त्रोत: कम्युनिटी पालिसिंग इन आस्ट्रेलिया-एन एप्राइजल, वर्किंग पेपर www.acpr.gov.au

3) *सेवा के लिए अनुरोधों की सक्रियतापूर्वक चाहत जिसमें अपराध संबंधी मामले सम्मिलित न हों; और*

4) *समुदाय से आधारभूत फीडबैक प्राप्त करने के लिए पद्धतियाँ कायम करना।*

5.15.3 सामुदायिक पुलिस पद्धति में अन्तर्निहित बुनियादी सिद्धान्त है कि "पुलिसकर्मी वर्दी में एक नागरिक है तथा एक नागरिक बिना वर्दी वाला पुलिसकर्मी है"। "सामुदायिक पुलिस पद्धति" शब्द एक बजवर्ड बन गया है, किन्तु इसमें कुछ नया नहीं है। इसका मूल उद्देश्य नागरिकों को एक ऐसा परिवेश कायम करने में शामिल करना है जिससे सामुदायिक सुरक्षा और बचाव में वृद्धि हो।

5.15.4 सामुदायिक पुलिस पद्धति एक दर्शन है जिसके अन्तर्गत पुलिस और नागरिक, समुदाय को सुरक्षा प्रदान करने और अपराध को नियंत्रित करने में भागीदारों के रूप में कार्य करें। इसके अन्तर्गत दोनों के बीच निकट रूप से कार्य करना शामिल है जिसमें एक ओर लोगों से सुझाव प्राप्त करना तथा दूसरी ओर नागरिकों का उपयोग रक्षा की प्रथम पंक्ति के रूप में कार्य करना सम्मिलित है।

5.15.5 भारत में अनेक राज्यों ने किसी न किसी रूप में सामुदायिक पद्धति प्रारंभ की है। चाहे यह आन्ध्र प्रदेश में "मैत्री" हो, तमिलनाडु में "फ्रेण्डस आफ पुलिस" हो, भिवन्डी (महाराष्ट्र) में "मोहल्ला समितियाँ" हों, पूरे देश में अनेक सफल कहानियाँ सामने आई हैं। इनमें से प्रत्येक के विवरण की जाँच किए बगैर आयोग कुछेक सिद्धान्तों का उल्लेख करना चाहेगा जिनका सामुदायिक पुलिस पद्धति में पालन किया जाना चाहिए:

- *यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिए कि सामुदायिक पुलिस पद्धति एक दर्शन है और न कि कुछेक पहलों की एक पद्धति मात्र।*

- *सामुदायिक पुलिस पद्धति की सफलता नागरिकों में एक ऐसी भावना पैदा करने में निहित है कि उनके इलाके में पुलिस पद्धति में इनका योगदान है और वे समुदाय की रक्षा की पहली पंक्ति भी बनाते हैं। सामुदायिक पुलिस पद्धति मात्र एक "सार्वजनिक संबंध" प्रयास बन कर न रह जाए बल्कि इसे एक पुलिस नागरिक विचार-विमर्श का एक प्रभावी मंच बनना चाहिए।*

- *विभिन्न स्तरों पर "सामुदायिक सम्पर्क समूहों" अथवा नागरिक समितियों के माध्यम से लोगों के साथ विचार-विमर्श आयोजित किया जाना चाहिए। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि*

ये समूह वस्तुतः प्रतिनिधिक हों। यदि वे पुलिस प्रेरित न होकर जन प्रेरित हों तो सामुदायिक पुलिस पद्धति का विचार सफल हो सकता है।

- *अन्य विभागों और संगठनों के कार्यकलापों के साथ अभिसरण का प्रयास किया जाना चाहिए।*

9.2.4 इस प्रकार सामुदायिक पुलिस व्यवस्था एक ऐसी अवधारणा है जिसके अन्तर्गत समुदाय को सुरक्षा प्रदान करने के लिए पुलिस और नागरिकों को एक साथ मिलकर कार्य करना चाहिए। यह एक सक्रियतापूर्ण प्रक्रिया है जिसके तहत पुलिस विवादों का निपटान करने तथा सभी नागरिकों को सुरक्षा की भावना प्रदान करने में समुदाय के साथ कार्य करती है। आयोग, इस बात पर पुनः बल देता है कि "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट के पैराग्राफ 5.15.5 निर्धारित सिद्धान्तों का सामुदायिक पुलिस व्यवस्था में पालन किया जाना चाहिए जिससे धार्मिक संघर्षों के संदर्भ में सामाजिक और साम्प्रदायिक धैर्य कायम होगा।

9.3 जिला प्रशासन तथा नागरिक शान्ति समितियां

9.3.1 बहुत से इलाकों में जिलों में नागरिक शान्ति समितियां उपयोगी पाई गई हैं। साम्प्रदायिक तनाव के समय जिलों में कार्यरत प्रशासकों ने शान्ति समितियां गठित की, जिनमें राजनीतिज्ञ तथा विभिन्न समुदायों के प्रभावशाली सदस्य सम्मिलित थे जिन्होंने शान्ति समितियों के विचार-विमर्श में और शान्ति मोर्चों में सार्थक रूप से भाग लिया। इस प्रक्रिया में, शान्ति समितियां तनाव को कम करने में सफल रही हैं। जिला प्रशासन पहलों को औपचारिक बनाने, सिविल सोसायटी पहलों को प्रोत्साहित करने की जरूरत तथा साम्प्रदायिक तालमेल को प्रोत्साहित करने के लिए समझौता प्रयासों के महत्व को समझते हुए, आयोग का विचार है कि साम्प्रदायिक तनाव उत्पन्न करने के सम्भावित मुद्दों का समाधान करने के लिए जिला शान्ति समितियों को प्रभावी साधन बनाया जाना चाहिए। इन समितियों का पुलिस अधीक्षक के परामर्श से जिला मजिस्ट्रेट द्वारा गठन किया जाना चाहिए। विभिन्न समुदायों से प्रतिनिधित्व ऐसा होना चाहिए जिससे समिति की कारगरता के बारे में नागरिकों में विश्वास कायम किया जा सके। पुलिस आयुक्त वाली व्यवस्था में इन समितियों का गठन पुलिस आयुक्त द्वारा म्युनिसिपल आयुक्त के परामर्श से किया जाना चाहिए। इन समितियों को समूहों और समुदायों के बीच विवाद निपटान के लिए एक महत्वपूर्ण मंच के रूप में संस्थागत बनाया जाना चाहिए। ऐसी समितियों को स्थानीय संगतता वाले मुददों की भी पहचान करनी चाहिए जिनसे असंतोष भड़क जाने की सम्भावना हो तथा उनसे निपटने के लिए

उपाय सुझाने चाहिए। उदाहरणार्थ ये समितियाँ धार्मिक जुलुसों के मार्गों को अन्तिम रूप देने से सम्बद्ध मामलों की जाँच कर सकती हैं तथा उनका विनियमन कर सकती हैं। सार्वजनिक सम्पत्तियाँ आदि के अतिक्रमण पर भी इन समितियों द्वारा विचार किया जा सकता है।

9.3.2 ऊपर सुझाई गई जिला शान्ति समितियों की तरह ही "मोहल्ला समितियाँ" आयोजित करने की भी जरूरत है। सामान्यत: भारत में धार्मिक संघर्ष शहर-केन्द्रिक होते हैं जिनका निकटवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों तक प्रसार होता है। साम्प्रदायिक हिंसा के बाद भिवण्डी में एक उद्यमी पुलिस अधीक्षक द्वारा "मोहल्ला समितियों" के (स्थानीय स्तर बहु-समुदाय मंच)सफल प्रयोग से इन दृष्टिकोण की कार्यकुशलता का पर्याप्त रूप में पता चलता है। यद्यपि ऐसी समितियां प्राय: साम्प्रदायिक हिंसा के कारण उत्पन्न तनाव को कम करने के लिए गठित की गई थी तथापि भिवण्डी दृष्टिकोण से पारस्परिक साम्प्रदायिक अन्योन्य-क्रिया को संस्थागत रूप प्राप्त हुआ जहाँ सामान्य हित के मामलों पर नियमित रूप से चर्चा की गई जिससे पारस्परिक विश्वास और भरोसे को बढ़ावा मिला। नियमित रूप से बैठक करने से, बजाए इसके कि केवल साम्प्रदायिक तनाव, पैदा होने पर ही बैठक की जाए, धार्मिक समुदायों के सदस्यों को सामान्य हित के मामलों पर चर्चा करने के लिए इकट्ठा होने का अवसर प्राप्त हुआ। यह पारस्परिक भरोसा और समझ, 1992-93 में भिवण्डी में साम्प्रदायिक हिंसा की घटना को रोकने में अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई जबकि महाराष्ट्र में बहुत से अन्य स्थानों पर गम्भीर और लम्बी अवधि तक साम्प्रदायिक हिंसा देखी गई।

9.3.3 संविधान के कार्यकरण की समीक्षा करने संबंधी राष्ट्रीय आयोग (एन सी आर डब्ल्यु सी) ने अपनी रिपोर्ट में अन्तर-धार्मिक विवादों के समाधान के संबध में निम्नलिखित सिफारिश की :

"पूर्व चेतावनी लक्षणों को ध्यान में रखने व प्रशासन को उन्हें रोकने के लिए सजग बनाने के वास्ते विभिन्न समुदायों की भागीदारी के साथ "मोहल्ला समितियों" की स्थापना के सतत लाभप्रद परिणाम प्राप्त हुए हैं। विशेष रूप से महाराष्ट्र राज्य में, भिवण्डी में, दुखद दंगों के पश्चात, किए गए प्रयासों में ऐसे उपायों के महत्व पर बल दिया गया।"

आयोग इस दृष्टिकोण का समर्थन करता है।

9.4 सच्चर समिति

9.4.1 "भारत में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति" का पता लगाने के लिए श्री जस्टिस राजिन्दर सच्चर की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय समिति मार्च 2005 में गठित की

गई थी। सच्चर समिति, मुस्लिम समुदाय की विशिष्ट पहलुओं से संबंधित अनेक डाटा का विश्लेषण करने के लिए, एक तथ्य पता लगाने वाली समिति थी - ऐसे विश्लेषण से सामने आई समस्याओं को दूर करने के लिए उपाय सुझाने का कार्य प्रत्यक्ष रूप से समिति के विचारार्थ विषयों में सम्मिलित नहीं था; फिर भी समिति ने अपने अथक प्रयासों के जरिए विश्लेषण से तर्कसंगत रूप से उभरी अनेक सिफारिशें की हैं। इसने मुस्लिम समुदाय को पेश आ रहीं लगभग सभी समस्याओं पर विचार किया तथा उनके सशक्तीकरण के लिए व्यापक सिफारिशें की हैं तथा इन समुदायों की सापेक्ष वंचना से निपटने के लिए अनेक नीतिगत सुझाव दिए हैं ताकि उनके तीव्र विकास को प्रोत्साहित किया जा सके और उन्हें मुख्यधारा के साथ जोड़ा जा सके। आयोग, मुस्लिम समुदाय के भावी विकास के लिए मापदण्ड की बैंच मार्किंग में समिति द्वारा निभायी गई भूमिका की सराहना करती है।

9.5 साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक, 2005

9.5.1 एक धर्मनिरपेक्ष भारत के लिए मजबूत संवैधानिक प्रावधानों और साम्प्रदायिक अपराधों से निपटने के लिए अनेक विधिक व प्रशासनिक प्रावधानों के बावजूद, दंगे बार-बार होते रहते हैं तथा हमारे देश के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने, एकता और आन्तरिक सुरक्षा के लिए खतरा बने हुए हैं। साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने तथा नियंत्रित करने के लिए, ऐसी हिंसा से पीड़ितों के पुनर्वास सहित, शीघ्र जाँच-पड़ताल और विचारण अनिवार्य बनाने और वृद्धिकारी दण्ड आरोपित करने के लिए एक वृहद दृष्टिकोण की व्यवस्था करने के लिए, केन्द्रीय और राज्य सरकारों को और सशक्त बनाने के उद्देश्य से, भारत सरकार ने 2005 में संसद में एक विधेयक प्रस्तुत किया था। इस विधेयक में :

(i) राज्य सरकारों द्वारा कतिपय इलाकों को साम्प्रदायिक रूप से अशांत क्षेत्र घोषित करने की व्यवस्था है;

(ii) साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने वाले कार्यों को रोकने के लिए उपाय निर्धारित किए गए हैं;

(iii) साम्प्रदायिक हिंसा तथा कतिपय अन्य अपराधों से संबंधित अपराधों के लिए और अधिक दण्ड की व्यवस्था है;

(iv) विशेष न्यायालयों के माध्यम से अपराधों की शीघ्र जांच-पड़ताल और विचारण के लिए प्रावधान किए गए हैं;

(v) साम्प्रदायिक हिंसा के पीड़ितों के लिए राहत और पुनर्वास उपायों के संबंध में संस्थागत व्यवस्थाएं की गई हैं;

(vi) साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार लोगों के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था की गई है तथा कतिपय मामलों में केन्द्रीय सरकार को विशेष शक्तियां प्रदान की गई हैं;

(vii) एक राष्ट्रीय साम्प्रदायिक अशान्ति राहत और पुनर्वास परिषद, राज्य साम्प्रदायिक अशान्ति राहत और पुनर्वास परिषद, जिला साम्प्रदायिक अशान्ति राहत और पुनर्वास परिषद की स्थापना करने की व्यवस्था है; और

(viii) लिंग, जाति, समुदाय अथवा धर्म के आधार पर साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार लोगों को क्षतिपूर्ति और राहत प्रदान करने में किसी भेदभाव को निषिद्ध किया गया है।

9.5.2 विधेयक में प्रस्तावित प्रावधान व्यापक हैं और इसके अन्तर्गत निवारक उपायों को पीड़ितों के पुनर्वास तक साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए विभिन्न पहलुओं को कवर किया गया है। विधेयक का खण्ड 3, राज्य सरकार को कतिपय परिस्थितियों में किसी इलाके को साम्प्रदायिक रूप से अशांत क्षेत्र घोषित करने की शक्ति से संबंधित है। खण्ड 4 में, किसी साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र में साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने और नियंत्रित करने के लिए राज्य सरकार द्वारा किए जाने वाले उपायों का निर्धारण किया गया है। खण्ड 5 में, उत्पन्न किसी स्थिति के मामले में, जिससे शान्ति भंग होने और विभिन्न समूहों, जातियों अथवा समुदायों के सदस्यों के बीच वैमनस्य पैदा होने की आशंका है जिला मजिस्ट्रेट को निवारक उपाय करने की शक्ति प्रदान की गई है। खण्ड 6 से 10तक में किसी अधिसूचित साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र में निवारक उपाय अपनाने के लिए सक्षम प्राधिकारी की शक्तियों का उल्लेख किया गया है।

9.5.3 विधेयक में साम्प्रदायिक हिंसा के मामले में विभिन्न अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था की गई है। खण्ड 11 से 15 में विभिन्न अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था है, जैसे कि आदेशों के उल्लंघन में निषिद्ध स्थानों के निकट आवारागर्दी करना, बिना लाइसेंस को शस्त्र आदि रखना, अपराधकर्ताओं की सहायता करना, कतिपय अपराध करने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करना तथा गवाहों को धमकाना। खण्ड 16 में, प्राधिकृत से अधिक व्यक्तियों को ले जाने के लिए माल परिवहन वाहन के ड्राइवर, मालिक अथवा किसी प्रभारी व्यक्ति के लिए दण्ड का प्रावधान है। खण्ड 17 में गलत ढंग से कार्य करने वाले और जानबूझ किसी कार्य को करने अथवा न करने के जरिए अपने कर्त्तव्यों के निपटान में असफल रहने के लिए सरकारी सेवकों के लिए दण्ड की व्यवस्था है। खण्ड 18 में दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के तहत आदेशों के उल्लंघन के लिए दण्ड की व्यवस्था है। खण्ड 19 में साम्प्रदायिक अपराध के संबंध में मापदण्ड और साम्प्रदायिक हिंसा करने के लिए और अधिक

दण्ड निर्धारित किया गया है। खण्ड 20 में व्यवस्था है कि अनुसूचित अपराध प्रस्तावित विधान के प्रयोजनार्थ संज्ञेय अपराध होंगे।

9.5.4 विधेयक में समीक्षा समितियों और जाँच दलों के गठन और अपराधों के शीघ्र विचारण को सुकर बनाने तथा कसूरवार को दण्ड देने के लिए विशेष न्यायालय स्थापित करने के लिए व्यापक प्रावधान किए गए हैं। खण्ड 22 के तहत राज्य सरकार को, अनुसूचित अपराधों के उन मामलों की समीक्षा करने के लिए, जहाँ विचारण दोषमुक्ति में परिणत होता है, पुलिस महानिरीक्षक स्तर के एक अधिकारी की अध्यक्षता में एक समीक्षा समिति गठित करने और आवश्यक होने पर अपील फाइल करने के लिए आदेश जारी करने के लिए शक्ति प्राप्त है। समिति को इसके निष्कर्षों के संबंध में तथा प्रत्येक मामले में की गई कार्रवाई के बारे में पुलिस महानिदेशक को रिपोर्ट करनी आवश्यक है। खण्ड 23 में, राज्य सरकार द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचने पर कि किसी साम्प्रदायिकता अशांत क्षेत्र में किए गए अपराध की जाँच निष्पक्ष रूप से और उचित ढंग से नहीं की गई है, एक अथवा अधिक विशेष जाँच दल गठित करने की व्यवस्था है। खण्ड 24 में व्यवस्था है कि राज्य सरकार, सरकारी राजपत्र में अधिसूचना के जरिए, गड़बड़ी की अवधि के दौरान किए अनुसूचित अपराधों के विचारण के लिए एक अथवा अधिक विशेष न्यायालयों की स्थापना कर सकती है। खण्ड 25 से 33 में, अपराधों के शीघ्र विचारण को सुकर बनाने और कसूरवार को दण्ड देने के लिए विशेष न्यायालयों के संबंध में विभिन्न प्रशासनिक तथा प्रक्रियात्मक पहलू निर्धारित किए गए हैं। इन पहलुओं में सम्मिलित हैं : (i) विशेष न्यायालयों का गठन और न्यायाधीशों की नियुक्ति; (ii) विशेष न्यायालयों की स्थापना का स्थान; (iii) मामले स्थानान्तरित करने के संबंध में उच्चतम न्यायालय की शक्ति; (iv) गवाहों का संरक्षण; (v) मामलों को नियमित न्यायालयों को स्थानान्तरित करने की शक्ति। खण्ड 34 से 36 में, साम्प्रदायिक असंतोष वाले इलाकों में लोगों के आवागमन पर कतिपय प्रतिबंध लगाने और ऐसे प्रतिबंधों के विरूद्ध अपीलों से निपटने के लिए प्रक्रिया निर्धारित की गई है। खण्ड 37 में, किसी अधिसूचित इलाके के साम्प्रदायिक रूप से अशान्त क्षेत्र न रहने पर कुछ विशेष न्यायालयों को समाप्त करने की व्यवस्था है।

9.5.5 विधेयक में, साम्प्रदायिक हिंसा के पीड़ितों के लिए राहत और पुनर्वास के लिए पद्धति की व्यवस्था है। खण्ड 38 से 48 में, राज्य साम्प्रदायिक अशांत राहत और पुनर्वास परिषद के गठन के माध्यम से राहत और पुनर्वास उपायों के संबंध में संस्थागत व्यवस्था कायम करने, इसके गठन और कार्यों (खण्ड 38 से 40), साम्प्रदायिक सामन्जस्य प्रोत्साहित करने तथा साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने

के लिए राज्य योजना (खण्ड 41) जिला परिषदों के गठन, उनकी संरचना और कार्यों (खण्ड 42-44) राष्ट्रीय परिषद के गठन और उसकी संरचना (खण्ड 43), राष्ट्रीय परिषद के सदस्यों की सेवा शर्तें (खण्ड 46); राष्ट्रीय परिषद की शक्तियां तथा कार्य (खण्ड 47), और राष्ट्रीय परिषद द्वारा केन्द्रीय सरकार को रिपोर्ट प्रस्तुत करने (खण्ड 48) की व्यवस्था है। खण्ड 49 से 51 में राहत और पुनर्वास के लिए निधियां कायम करने की व्यवस्था है जिसमें सम्मिलित है: (1) राज्य निधि, प्रयोजन तथा राष्ट्रीय परिषद को वार्षिक रिपोर्ट का प्रस्तुतीकरण (खण्ड 49); (ii) राहत अथवा तत्काल राहत प्रदान करने की स्कीम (खण्ड 50) और जिला निधि की स्थापना (खण्ड 51) । खण्ड 52 में निर्धारित किया गया है कि जिला परिषदें, राज्य परिषद के अधीन काम करेंगी। खण्ड 53 में साम्प्रदायिक हिंसा के शिकार लोगों को जिला परिषद के माध्यम से क्षतिपूर्ति की अदायगी करने के लिए प्रक्रियाएं निर्धारित की गई हैं।

9.5.6 प्रस्तावित विधेयक का एक महत्त्वपूर्ण प्रावधान, कतिपय मामलों में साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए केन्द्रीय सरकार की विशेष शक्तियां हैं। खण्ड 55 के अनुसार, केन्द्रीय सरकार को साम्प्रदायिक गड़बड़ी के मामले में राज्य सरकार को निर्देश देने तथा किसी राज्य के अन्दर किसी इलाके को साम्प्रदायिक अशांत क्षेत्र के रूप में घोषित करते हुए अधिसूचनाएं जारी करने और जहाँ कहीं आवश्यक हो सशस्त्र बल तैनात करने (राज्य सरकार के अनुरोध पर) की शक्ति प्रदान की गई है। सशस्त्र बल तैनात करने के संबंध में निर्णय ले लिए जाने पर ऐसी तैनाती के समन्वयन और मानीटरन के प्रयोजनार्थ, केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार द्वारा एकीकृत कमान के रूप में ज्ञात एक प्राधिकारी का गठन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य के अन्दर किसी क्षेत्र को एक साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र घोषित करने वाली प्रत्येक अधिसूचना को संसद के प्रत्येक पटल पर रखा जाना चाहिए। विधेयक के खण्ड 56 में व्यवस्था है कि ऐसी अधिसूचना में उस अवधि का भी उल्लेख किया जाएगा जिसके लिए वह इलाका इस प्रकार अधिसूचित रहेगा, जो प्रारंभ में 30 दिन से अधिक नहीं होगी। केन्द्रीय सरकार इस अवधि को एक अधिसूचना द्वारा बढ़ा सकती है किन्तु कुल अवधि जिसके लिए इलाका साम्प्रदायिक रूप से अशांत क्षेत्र रहेगा, लगातार कुल 60 दिन की अवधि से अधिक नहीं होगी।

9.5.7 विधेयक के विभिन्न खण्डों के संबंध में आयोग की संक्षिप्त टिप्पणियां तालिका रूप में विवरण (तालिका 9.1) में दी गई हैं।

तालिका 9.1 साम्प्रदायिक हिंसा (निवारण, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005 का विश्लेषण

क्रम सं.	धारा/खण्ड का उद्देश्य	धारा	प्र. सु. आ. की टिप्पणियां
1.	2.	3.	4.
1.	कतिपय इलाकों को साम्प्रदायिक अशांत क्षेत्र के रूप में घोषित करना	3.(1) जब भी राज्य सरकार का मत हो कि किसी क्षेत्र में किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा एक अथवा अधिक अनुसूचित अपराध किए जा रहे हैं- (क) ऐसे ढंग से और इतने पैमाने पर जिसके तहत किसी समूह अथवा समुदाय के विरूद्ध आपराधिक ताकत अथवा हिंसा का प्रयोग करना शामिल है, जिसके फलस्वरूप मौत अथवा सम्पत्ति की बरबादी हुई है; (ख) आपराधिक ताकत अथवा हिंसा का ऐसा इस्तेमाल विभिन्न समूहों, जातियों और समुदायों के बीच असामन्जस्य अथवा शत्रुता की भावना, घृणा अथवा दुर्भावना पैदा करने के उद्देश्य से किया गया है; और (ग) यदि तत्काल उपाय नहीं किए गए तो भारत के धर्म-निरपेक्ष ताने-बाने, अखण्डता, एकता अथवा आन्तरिक सुरक्षा को खतरा हो सकता है, तो वह अधिसूचना द्वारा- (i) ऐसे इलाके को साम्प्रदायिक रूप से अशांत क्षेत्र घोषित कर सकती है; (ii) ऐसे इलाके को एकल न्यायिक क्षेत्र में अथवा अनेक न्यायिक क्षेत्रों में गठित कर सकती है, जैसा वह उपयुक्त समझे।	अचानक साम्प्रदायिक हिंसा भड़कने की स्थिति में ऐसी अधिसूचना जारी करने के लिए हो सकता है कि पर्याप्त समय न मिले।

क्रम सं.	धारा/खण्ड का उद्देश्य	धारा	प्र. सु. आ. की टिप्पणियां
1.	2.	3.	4.
2.	अधिनियम के तहत सक्षम प्राधिकारी की नियुक्ति	4. उप-धारा (1) के तहत अधिसूचना जारी होने पर, राज्य सरकार अपने एक अथवा दो अधिकारियों को इस अधिनियम के प्रयोजनार्थ सक्षम प्राधिकारी के रूप में नियुक्त कर सकती है तथा इस अधिनियम के भिन्न-भिन्न प्रयोजनों हेतु भिन्न-भिन्न सक्षम प्राधिकारी नियुक्त किए जा सकते हैं।	एक से अधिक सक्षम प्राधिकारी की विद्यमानता से कमान और जिम्मेदारी की एकता में कमी आ सकती है। इसके अलावा, डी एम को सक्षम प्राधिकारी की सभी शक्तियां पहले ही प्राप्त हैं।
3.	जिला मजिस्ट्रेट की शक्तियां	(2) धारा 6,7,9, और 10 में दी गई किसी बात के बावजूद, जिला मजिस्ट्रेट को भी वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो उक्त धाराओं के प्रावधानों की दृष्टि से उसके क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत इलाके में समक्ष प्राधिकारी को प्राप्त हैं।	
4.	अधिनियम के अन्तर्गत प्रदत्त शक्तियां; क- शस्त्र जमा करना ख-तलाशी लेने की शक्ति ग-कतिपय कार्य निषिद्ध करने की शक्ति घ- व्यक्तियों के आचरण के संबंध में आदेश देने की शक्ति		क्योंकि ये सभी शक्तियां द. प्र. सं. और पुलिस अधिनियमों के तहत विद्यमान हैं इसलिए समानान्तर रूप से ऐसी शक्तियां प्रदान करने की जरूरत नहीं है। इसके अलावा इस प्रस्तावित विधान में ऐसी शक्तियां तभी प्रचालन में आएंगी जबकि इलाके को साम्प्रदायिक अशांत क्षेत्र घोषित कर दिया जाएगा।
5.	अधिनियम के तहत परिभाषित अपराध: क-शस्त्र जमा कराने के आदेशों का उल्लंघन ख- सक्षम प्राधिकारियों के कानूनी आदेशों का पालन न करना ग- निषिद्ध क्षेत्रों के इर्द-गिर्द आवारागर्दी करना ड.- गवाहों को धमकाना च- वाहनों में अधिक यात्री ले जाना छ- द. प्र. सं. की धारा 144 के अन्तर्गत निषेधात्मक आदेशों का उल्लंघन		ये सभी विद्यमान कानूनों के तहत अपराध हैं।

क्रम सं.	धारा/खण्ड का उद्देश्य	धारा	प्र. सु. आ. की टिप्पणियां
1.	2.	3.	4.
6.	दुर्भावनापूर्ण कार्यों के लिए सरकारी सेवकों के लिए दण्ड	17. (1) कोई भी सरकारी सेवक के नाते अथवा सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस अधिनियम के किसी प्रावधान अथवा इसके तहत किए गए किसी आदेश के तहत कोई अन्य प्राधिकृत व्यक्ति। (क) इस अधिनियम के अन्तर्गत उसमें विहित कानूनी प्राधिकार का इस्तेमाल दुर्भावनापूर्ण ढंग से करता है जिससे किसी व्यक्ति अथवा सम्पत्ति को कोई नुकसान या चोट पहुँचती है अथवा पहुंचने की सम्भावना हो; अथवा (ख) इस अधिनियम के तहत उसमें विहित कानूनी प्राधिकार का इस्तेमाल जानबूझकर नहीं करता है और इस प्रकार किसी साम्प्रदायिक हिंसा की घटना, सार्वजनिक व्यवस्था के भंग होने अथवा सेवाओं के अनुरक्षण में और समुदाय के लिए जरूरी आपूर्ति में बाधा को रोकने में असफल रहता है, सजा के साथ दण्डित किया जाएगा जो एक वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना अथवा दोनों द्वारा दण्डित किया जा सकता है। व्याख्या: इस धारा के प्रयोजनार्थ कोई भी पुलिस अधिकारी, जो जानबूझ कर मना करता है: (i) साम्प्रदायिक हिंसा के किसी पीड़ित को संरक्षण प्रदान करना अथवा उसको संरक्षण देना; (ii) किसी अधिसूचित अपराध के घटित होने से संबंधित संहिता की धारा 154 की उप धारा (1) के अन्तर्गत किसी सूचना को अथवा इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी अपराध को रिकार्ड करना। (iii) किसी अनुसूचित अपराध अथवा इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी अन्य अपराध की जाँच-पड़ताल अथवा अभियोजन, उसमें विहित कानूनी प्राधिकार का इस्तेमाल जान- बूझकर न करने का दोषी समझा जाएगा। (2) संहिता में दी गई किसी बात के बावजूद, कोई भी न्यायालय, राज्य सरकार की पूर्व मंजूरी को छोड़कर, इस धारा के तहत किसी अपराध का संज्ञान नहीं लेगा; बशर्ते कि इस धारा के तहत मंजूरी प्रदान करने के प्रत्येक अनुरोध का निपटान राज्य सरकार द्वारा अनुरोध की तारीख से 30 दिन के अन्दर कर दिया जाएगा।	देखा गया है कि सरकार की मंजूरी सहज रूप में प्राप्त नहीं होती। एक पद्धति होनी चाहिए - ऐसी मंजूरियों पर तत्काल कार्रवाई करने के लिए एक अधिकार - प्राप्त समिति।

क्रम सं.	धारा/खण्ड का उद्देश्य	धारा	प्र. सु. आ. की टिप्पणियां
1.	2.	3.	4.
7.	साम्प्रदायिक हिंसा के लिए और अधिक सजा	19(1) कोई भी व्यक्ति जो ऐसे पैमाने अथवा ऐसे ढंग से कोई कार्य करता है अथवा नहीं करता जिससे राज्य के किसी भाग में आन्तरिक अशान्ति पैदा हो सकती है अथवा राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने, एकता, अखण्डता अथवा आन्तरिक सुरक्षा को खतरा पैदा करता है, साम्प्रदायिक हिंसा पैदा करने वाला कहा जाएगा। (2) भारतीय दण्ड संहिता में अथवा अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अन्य अधिनियम में आजीवन कारावास के साथ दण्डनीय किसी अपराध के मामले को छोड़कर, ऐसी अवधि की सजा से दण्डित किया जाएगा जो सजा की सबसे लम्बी अवधि से दुगनी और उस अपराध के लिए भारतीय दण्ड संहिता में अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अन्य अधिनियम में, जैसा भी मामला हो, अपराध के लिए व्यवस्थित सर्वाधिक जुर्माने का दुगना होगा: बशर्ते कि कोई भी व्यक्ति एक सरकारी सेवक होने के नाते अथवा कोई अन्य व्यक्ति जो सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस अधिनियम के किसी प्रावधान अथवा इसके तहत किए गए आदेशों के तहत प्राधिकृत है, साम्प्रदायिक हिंसा करता है, पूर्वोक्त प्रावधानों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए बिना, ऐसी सजा के साथ दण्डनीय होगा जो पाँच वर्ष से कम नहीं होगी। (3) कोई भी व्यक्ति जो उप-धारा (1) के तहत अपराध के लिए कसूरवार है, ऐसी सजा की तारीख से छः वर्ष की अवधि तक के लिए सरकार के अधीन कोई पद अथवा कार्यालय धारित करने के लिए पात्र नहीं होगा।	इससे सजा और अधिक कड़ी हो जाएगी।
8.	जाँच पड़ताल के लिए प्रावधान क - आरोपी को ज्युडिशियल अथवा कार्यकारी मजिस्ट्रेटों के समक्ष पेश किया जा सकता है। ख- एक समीक्षा समिति का गठन ग- विशेष जाँच दलों का गठन		इससे कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को आरोपी को रिमांड पर लेने अथवा जमानत पर रिहा करने की शक्ति प्राप्त होगी। समीक्षा समिति और विशेष जाँच दल स्थापित करना प्रशासनिक व्यवस्था की तरह अधिक है।

क्रम सं.	धारा/खण्ड का उद्देश्य	धारा	प्र. सु. आ. की टिप्पणियां
1.	2.	3.	4.
9.	विशेष न्यायालय	24(1) राज्य सरकार, गड़बड़ी की अवधि के दौरान किए गए सूचित अपराधों के विचारण के लिए इस प्रयोजनार्थ एक अधिसूचना जारी करके, एक अथवा अधिक विशेष न्यायालय स्थापित कर सकती है। (2) उप-धारा (1) में दी गई किसी बात के बावजूद, यदि राज्य में प्रचलित स्थिति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए सरकार का यह मत है कि किसी साम्प्रदायिक गड़बड़ी वाले क्षेत्र में किए गए ऐसे अनुसूचित अपराधों के विचारण के लिए, राज्य से बाहर अतिरिक्त विशेष न्यायालय स्थापित करना उपयोगी होगा, जिसके राज्य के अन्दर विचारण- (क) सम्भवत: निष्पक्ष अथवा उचित नहीं होगा अथवा पर्याप्त तीव्रता के साथ पूरा नहीं होगा; अथवा (ख) शान्ति भंग किए बगैर अथवा आरोपी, गवाहों, सरकारी अभियोजक और जज अथवा उनमें से किसी की सुरक्षा को गम्भीर खतरा पहुँचाए, ऐसे साम्प्रदायिक रूप से गड़बड़ी वाले क्षेत्र के संबंध में एक राज्य से बाहर एक अतिरिक्त विशेष न्यायालय स्थापित करने का अनुरोध कर सकती है तथा केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत सूचना को ध्यान में रखते हुए तथा ऐसी पूछताछ करने के बाद, यदि कोई, जिसे वह उपयुक्त समझे, अधिसूचना द्वारा राज्य से बाहर ऐसे स्थान पर, जैसा अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जए, अतिरिक्त विशेष न्यायालय स्थापित कर सकती है।	यह प्रावधान केन्द्रीय सरकार को राज्य से बाहर (राज्य सरकार के अनुरोध पर) विशेष न्यायालय स्थापित करने के लिए सशक्त बनाता है।

10.	राहत और पुनर्वास के लिए संस्थागत व्यवस्था	38. प्रत्येक राज्य सरकार, एक अधिसूचना के जरिए, एक परिषद स्थापित करेगी जिसे राज्य साम्प्रदायिक अशान्ति राहत और पुनर्वास परिषद कहा जाएगा। 42(1) राज्य सरकार, एक अधिसूचना के जरिए राज्य में प्रत्येक जिले के लिए एक जिला साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास परिषद स्थापित करेगी। 45(1) केन्द्रीय सरकार, एक अधिसूचना के जरिए, ऐसी तारीख से जैसा ऐसी अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किया जाए, एक परिषद गठित कर सकती है जिसे राष्ट्रीय साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास परिषद के नाम से जाना जाएगा, जिसमें अधिकतम ग्यारह सदस्य होंगे, जो इस अधिनियम के तहत इसे सौंपी गई शक्तियों का इस्तेमाल करेगी तथा ऐसे कार्य निष्पादित करेगी जो इसे इस अधिनियम के अन्तर्गत सौंपे जाएं।	इससे राहत और पुनर्वास से डील करने के लिए एक संस्थागत तंत्र कायम होगा।
11.	पीड़ितों को क्षतिपूर्ति	53(1) जब कभी कोई विशेष न्यायालय इस अधिनियम के अन्तर्गत दण्डनीय किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति को सजा देता है तो वह एक वाक्य के जरिए एक आदेश पारित कर सकता है कि अपराधकर्ता ऐसी मौद्रिक क्षतिपूर्ति करेगा जैसाकि उप-धारा (5) में उल्लिखित व्यक्ति के लिए, ऐसे अपराध से हुए नुकसान अथवा क्षति के लिए, विनिर्दिष्ट किया जाए। 54(1) जिला परिषद, साम्प्रदायिक हिंसा से प्रभावित व्यक्तियों द्वारा अथवा उनकी ओर से दावों को स्वीकार करेगी तथा जिला परिषद, पीड़ित को अथवा उसके आश्रितों को, जैसा भी मामला हो, दावे की तारीख के एक मास की अवधि के अन्दर उचित पूछताछ करने के बाद, प्रदान की जाने वाली तत्काल क्षतिपूर्ति की मात्रा तय करेगी।	

12.	केन्द्रीय सरकार की विशेष शक्तियां	55.(1) जब कभी केन्द्रीय सरकार का मत हो कि किसी राज्य के अन्दर किसी व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा ऐसे ढंग से और ऐसे पैमाने पर किसी क्षेत्र में एक अथवा अधिक अनुसूचित अपराध किए जा रहे हैं, जिनके अन्तर्गत किसी समूह, जाति अथवा समुदाय के सदस्यों के विरूद्ध आपराधिक ताकत अथवा हिंसा का इस्तेमाल करना शामिल है, जिसके फलस्वरूप मौत अथवा सम्पत्ति की बरबादी हुई है और आपराधिक ताकत अथवा हिंसा का इस्तेमाल, विभिन्न समूहों, जातियों अथवा समुदायों के बीच असामन्जस्य अथवा शत्रुता की भावना, घृणा अथवा दुर्भावना पैदा करने के उद्देश्य से किया गया है और भारत के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने, एकता, अखण्डता अथवा आन्तरिक सुरक्षा के लिए एक अनिवार्य खतरा हो, जिसके लिए यह आवश्यक है कि संबंधित राज्य सरकार द्वारा तात्कालिक उपाय किए जाएंगे, यह : (क) उस क्षेत्र में विद्यमान स्थिति की ओर राज्य सरकार का ध्यान आकर्षित करेगी; और (ख) राज्य सरकार को ऐसी हिंसा अथवा आपराधिक ताकत के इस्तेमाल को दबाने के लिए इस संबंध में विनिर्दिष्ट समय के अन्दर सभी तात्कालिक उपाय करने के लिए राज्य सरकार को निर्देश देगी। (2) राज्य सरकार, उप-धारा (1) के तहत निदेश जारी होने पर साम्प्रदायिक हिंसा को रोकने अथवा नियंत्रित करने के लिए उपयुक्त कार्रवाई करेगी। (3) यदि केन्द्रीय सरकार का यह मत हो कि उप-धारा (2) के अन्तर्गत जारी निदेशों का पालन नहीं किया गया है तो वह ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो आवश्यकत हो, जिसमें निम्नलिखित सम्मिलित है: (क) राज्य के अन्दर किसी क्षेत्र को "साम्प्रदायिक रूप से अशान्त क्षेत्र" के रूप में घोषित करने की अधिसूचना जारी करना; (ख) राज्य सरकार से ऐसा करने के लिए अनुरोध प्राप्त होने पर, हिंसा को रोकने और नियंत्रित करने के लिए सशस्त्र बलों की तैनाती।	इसका अर्थ होगा कि केन्द्र संबंधित राज्य की सहमति के बगैर अपने सशस्त्र बल तैनात नहीं कर सकता। खण्ड, "सक्षम प्राधिकारी" के बारे में मौन है। यदि केन्द्रीय सरकार किसी क्षेत्र को अशान्त घोषित करती है तो "सक्षम प्राधिकारी" भी नियुक्त करेगी?

13.	अनुसूचित अपराध	अनुसूची (देखें धारा 2 की उप-धारा (1)का खण्ड(1) 1. भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध: धारा 120 ख, 143, 144, 145, 147, 148, 150, 151, 152, 153, 153 क, 153 ख, 154, 155, 156, 157, 158, 160, 295, 295 क, 296, 297, 298, 302, 303, 304, 307, 308, 323, 324, 325, 326, 327 से 335, 341 से 348, 352, 353, 354, 355 से 358, 363 से 369, 376, 379, 380, 383, 384, से 387, 392, 402, 411, 412, 426, 427, 431, 435, 436, 440, 447 से 462, 504 से 506 और 509. 2. शस्त्र अधिनियम 1959 (1959 का 54) के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध-धारा 25, 26, 27, 28 से 30 3. विस्फोटक अधिनियम, 1884 के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध - धारा 6(3), 8(2) और 9 ख। 4. सरकारी सम्पत्ति की क्षति की रोकथाम अधिनियम, 1984 (1984 का 3) के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध-धारा 3 और 4 5. पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 (1991 का 42) के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध- धारा 6 6. धार्मिक संस्थान (दुरूपयोग की रोकथाम) अधिनियम, 1988 (1988 का 41) के निम्नलिखित प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध-धारा 7	

9.5.8 उपरोक्त संक्षित विश्लेषण से पता चलता है कि साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए सम्भवतः किसी अलग विधान की जरूरत नहीं है क्योंकि साम्प्रदायिक हिंसा के सभी पहलुओं से निपटने के लिए पर्याप्त प्रावधान मौजूद हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय दण्ड संहिता में अनेक प्रावधान हैं जो धार्मिक, जातीय, भाषाई अथवा क्षेत्रीय समूहों, जातियों और समुदाय से संबंधित अपराधों पर व्यापक रूप से डील करते हैं। उदाहरण के लिए भा. द. सं. की धारा 153(क) में निम्नलिखित निर्धारित है:-

"153 क-धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, रिहाइश, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता को प्रोत्साहित करना तथा ऐसे कार्य करना जो सामन्जस्य बनाए रखने के लिए प्रतिकूल हों।

(1) कोई व्यक्ति

(क) शब्दों द्वारा, या तो बोलकर अथवा लिखित में अथवा संकेतों द्वारा अथवा दृश्यक प्रतिनिधित्व अथवा अन्यथा धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, रिहाइश, भाषा, जाति अथवा समुदाय या किसी प्रकार के अन्य आधार पर, विभिन्न धार्मिक, जातिगत, भाषा अथवा क्षेत्रीय समूहों अथवा जातियों अथवा समुदायों के बीच असामन्जस्य अथवा शत्रुता की भावना, धृणा अथवा दुर्भावना को बढ़ावा देता है अथवा बढ़ावा देने का प्रयास करता है, अथवा

(ख) कोई कार्य करता है जो विभिन्न धर्मों, नस्लों, भाषा अथवा क्षेत्रीय समूहों अथवा जातियों अथवा समुदायों के बीच सामन्जस्य बनाए रखने के विपरीत हो और जो सार्वजनिक शान्ति में व्यवधान पैदा करता है अथवा पैदा होने की सम्भावना हो; अथवा

(ग) कोई व्यायाम, आन्दोलन, ड्रिल अथवा अन्य ऐसा ही कार्यकलाप आयोजित करता है, जिसका उद्देश्य ऐसे कार्यकलाप में भाग लेने वालों द्वारा हिंसा, आपराधिक ताकत अथवा हिंसा के उपयोगार्थ अथवा प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित करने हेतु किया जाएगा, अथवा ऐसे कार्यकलाप में भाग लेता है जिसका उद्देश्य आपराधिक ताकत अथवा हिंसा के उपयोगार्थ अथवा प्रयोग करने के लिए प्रशिक्षित करने हेतु किया जाएगा, अथवा यह जानते हुए कि ऐसी सम्भावना है कि ऐसे कार्यकलाप में भाग लेने वालों द्वारा, किसी धार्मिक, जातिगत, भाषाई अथवा क्षेत्रीय समूह के विरूद्ध आपराधिक ताकत अथवा हिंसा के लिए उसका उपयोग किया जाएगा अथवा प्रयोग करने हेतु प्रशिक्षित करने के लिए किया जाएगा अथवा जिससे ऐसे धार्मिक, जातिगत, भाषाई अथवा क्षेत्रीय समूह या जाति अथवा समुदाय के सदस्यों के बीच भय अथवा चिन्ता अथवा असुरक्षा की भावना पैदा होने की सम्भावना हो, सजा के साथ दण्डित किया जाएगा जो तीन वर्ष की हो सकती है अथवा जुर्माना किया जा सकता है अथवा दोनों किए जा सकते हैं।

पूजा स्थल आदि पर किए गए अपराध के लिए, जो कोई किसी पूजा स्थल पर अथवा धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक उत्सवों के आयोजन में लगी किसी सभा में, उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई अपराध

करता है, सजा के साथ दण्डित किया जाएगा जो पाँच वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना भी किया जा सकता है।

9.5.9 इसी प्रकार से, धर्म, नस्ल, भाषा अथवा धार्मिक समूह, जाति अथवा समुदाय के विरूद्ध पूर्वाग्रह पर आधारित कतिपय अपराध तथा जो राष्ट्रीय एकीकरण के लिए हानिकारक हों, उन पर भा.द.सं. की धारा 153 ख में डील किया गया है।

"153 ख - राष्ट्रीय एकता के हित खिलाफ लांछन, दृढकथन। जो कोई शब्दों द्वारा, या तो बोलकर अथवा लिखित में अथवा संकेतों द्वारा अथवा दृश्यक प्रतिनिधित्व द्वारा अथवा अन्यथा द्वारा-

(क) ऐसा कोई लांछन लगाता है अथवा प्रकाशित करता है कि व्यक्तियों की कोई श्रेणी, अपने किसी किसी धर्म, नस्ल भाषा अथवा क्षेत्रीय समूह अथवा जाति अथवा समुदाय के सदस्य होने के नाते, कानून द्वारा यथा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्चा विश्वास और निष्ठा नहीं रखेगा अथवा भारत की प्रभुसत्ता और अखण्डता को कायम नहीं रखेगा, अथवा

(ख) इस बात पर बल, परामर्श देता है, प्रचार करता है अथवा प्रकाशित करता है कि व्यक्तियों की किसी श्रेणी को उनके किसी धर्म, नस्ल, भाषा अथवा क्षेत्रीय समूह अथवा जाति अथवा समुदाय के सदस्य होने के नाते, भारत के नागरिक के रूप में उनके अधिकारों से वंचित नहीं किया जाएगा अथवा मनाही की जाएगी, अथवा

(ग) किसी धर्म, नस्ल, भाषा अथवा क्षेत्रीय समूह या जाति अथवा समुदाय के सदस्य होने के नाते, वयक्तियों की किसी श्रेणी के नाते, व्यक्तियों की किसी श्रेणी के दायित्वों से संबंधित कोई दृढ़कथन, परामर्श, दलील अथवा अपील करता है या प्रकाशित करता है और ऐसे कथन, परामर्श, दलील अथवा अपील के कारण ऐसे सदस्यों व अन्य व्यक्तियों के बीच शत्रुता अथवा घृणा अथवा दुर्भावना पैदा होती है अथवा पैदा होने की सम्भावना हो।

सजा के साथ दण्डित किया जाएगा जो तीन वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना किया जा सकता है अथवा दोनों किए जा सकते हैं।

जो कोई किसी पूजा स्थल पर अथवा धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक उत्सवों के आयोजन मे लगी किसी सभा में उप-धारा (1) में विनिर्दिष्ट कोई अपराध करता है, सजा के साथ दण्डित किया जाएगा जो पाँच वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना किया जा सकता है।"

9.5.10 उपरोक्त के अतिरिक्त, भा. द. सं. की धारा 505 की उप-धारा 1(ग), 2 और 3 भी, धर्म, नस्ल, जन्म स्थान आदि के आधार पर श्रेणियों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा दुर्भावना को प्रोत्साहित करने से सम्बद्ध अपराधों के साथ डील करती है।

"505. सार्वजनिक शरारत को अभिप्रेरित करने वाले वक्तव्य-(1) जो कोई व्यक्ति कोई वक्तव्य, अफवाह अथवा रिपोर्ट करता है, उसे प्रकाशित अथवा परिचालित करता है:

(ग) जिसका उद्देश्य किसी श्रेणी के व्यक्तियों अथवा समुदाय को किसी अन्य श्रेणी अथवा समुदाय के विरूद्ध किसी अपराध करने के लिए भड़काना अथवा भड़काने की सम्भावना हो,

उसे सजा के साथ दण्डित किया जाएगा, जो तीन वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना किया जा सकता है अथवा दोनों किए जा सकते हैं।

(2) श्रेणियों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा दुर्भावना पैदा अथवा प्रोत्साहित करने वाले वक्तव्य-जो कोई व्यक्ति, धर्म, नस्ल, जन्म स्थान, रिहाइश, भाषा, जाति अथवा समुदायों के बीच शत्रुता, घृणा अथवा दुर्भावना की भावना पैदा अथवा प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से अफवाह या चिन्ताजनक विचारों वाला कोई वक्तव्य अथवा रिपोर्ट करता है प्रकाशित अथवा परिचालित करता है अथवा पैदा, प्रोत्साहित होने की सम्भावना हो, सजा के साथ दण्डनीय होगा जो तीन वर्ष तक की हो सकती है अथवा जुर्माना किया जा सकता है अथवा दोनों किए जा सकते हैं।

(3) पूजा स्थल आदि पर उप धारा (2) के अन्तर्गत किए गए अपराध जो कोई व्यक्ति, किसी पूजा स्थल पर अथवा धार्मिक पूजा के अथवा धार्मिक सम ारोहों के निष्पादन में लगी सभा में उप-धारा (2) में विनिर्दिष्ट अपराध करता है, सजा के साथ दण्डनीय होगा, जो पांच वर्ष तक की हो सकती है तथा जुर्माना भी किया जा सकता है।

अपवाद- इस धारा के अर्थ की दृष्टि से यह अपराध नहीं है यदि ऐसा वक्तव्य, अफवाह अथवा रिपोर्ट करने, प्रकाशित अथवा परिचालित करने वाले व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का उचित आधार हो कि ऐसा वक्तव्य, अफवाह अथवा रिपोर्ट सच्ची है और सदाश्यता के साथ यथोपरोक्त बिना किसी आशय के, दी गई प्रकाशित अथवा परिचालित की गयी है। "

9.5.11 उपरोक्त के अलावा, भा.द.सं. के अध्याय XV में, धर्म से संबंधित अपराधों के संबंध में व्यवस्थाएं दी गई हैं। संक्षेप में इनमें सम्मिलित हैं:

(i) धारा 295 किसी श्रेणी के धर्म को बेइज्जत करने के उद्देश्य से धर्म स्थल को नुकसान पहुंचाना अथवा अपवित्र करना।

(ii) धारा 295 क -किसी श्रेणी के धार्मिक विश्वास अथवा धर्म को बेइज्जत करके उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के उद्देश्य से जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण कार्य।

(iii) धारा 296 - धार्मिक सभा में गड़बड़ी करना।

(iv) धारा 297 - कब्रगाह स्थलों आदि पर अतिक्रमण।

(v) धारा 298 - किसी व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने के उद्देश्य से, शब्द उच्चारित करना आदि।

9.5.12 उपरोक्त से, यह स्पष्ट है कि भारतीय दण्ड संहिता में साम्प्रदायिक अपराधों के साथ डील करने के लिए अनेक प्रावधान सम्मिलित हैं। वस्तुतः यह अन्य देशों के कानूनों के साथ तुलनीय है जो घृणा अपराधों के रूप में संदर्भित अपराधों से निपटने के लिए हैं। साम्प्रदायिक अपराध जैसे घृणा अपराध, जिस समूह से वे संबंधित हैं अथवा उनकी पहचान होती है अथवा जिससे वे संबंधित अथवा पहचाने जाते हैं, उसकी वजह से लोगों, सम्पत्ति अथवा संगठनों के विरूद्ध किए गए आपराधिक कार्य हैं। इसलिए आधार या तो नस्ल, रंग, मत, धर्म अथवा लिंग हो सकता है। कनाडा की दण्ड संहिता में, उदाहरणार्थ धारा 319 हमारी भारतीय दण्ड संहिता की धारा 298 के समान है क्योंकि इसमें किसी सार्वजनिक स्थान पर दिए गए ऐसे किसी वक्तव्य के विरूद्ध दण्ड की व्यवस्था है जिससे किसी पहचान योग्य समूह के विरूद्ध घृणा भड़कती है।

9.5.13 यद्यपि साम्प्रदायिक अपराधों और साम्प्रदायिक प्रकृति के कार्यों से निपटने के लिए भा. द. सं. /द. प्र. सं. में पर्याप्त प्रावधान हैं तथापि कुछेक प्रावधानों का अनेक अपराधों के मामले में प्रभावी ढंग से इस्तेमाल नहीं किया गया है, उदाहरणार्थ, धारा 153 क, 153 ख, 295 क और 505 भा. द. सं. के अन्तर्गत दण्डनीय अपराध, 190 द. प्र. सं. के प्रावधानों के अनुसार, न्यायालयों द्वारा केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार अथवा जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व मंजूरी के बिना कोई संज्ञान नहीं लिया जा सकता (धारा 153 ख और धारा 505 की उप-धारा (2) और (3) के तहत अपराधों के मामले में) ऐसी मंजूरियाँ प्राप्त करना सामान्यतः कठिन होता है। आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी रिपोर्ट के पैराग्राफ 6.1.7 में इस मुद्दे पर विचार किया था जो नीचे पुनः उद्धरित है:

> *"6.1.7.3 मडोन आयोग के समक्ष एक सुझाव दिया गया था कि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 153 ए के अन्तर्गत अभियोजन के लिए किसी मंजूरी की जरूरत नहीं होनी चाहिए। तथापि मडोन आयोग इस सुझाव के लिए सहमत नहीं हुआ और उसने कहा कि अभियोजन मंजूर करने की शक्ति केवल केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार में निहित होनी चाहिए जैसाकि अब द.प्र.सं. की धारा 196(i) द्वारा प्रदत्त है।*
>
> *6.1.7.4 इस मुद्दे की आयोग द्वारा जाँच की गई है। अनुभव किया गया है कि द. प्र. सं. की धारा 196 के तहत निर्धारित मंजूरी से कोई उपयोगी प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। इसके अलावा, पुलिस द्वारा मामले में एक बार आरोप-पत्र दाखिल किए जाने पर, मजिस्ट्रेट आरोप तय करेगा यदि प्रथमदृष्टया कोई मामला है, और किसी दुर्भावनापूर्ण अभियोजन के विरुद्ध यह पर्याप्त और उचित संरक्षण है। इसके अलावा, पुलिस कामकाज के संबंध में इस रिपोर्ट में सुझाए गए चैकों और संतुलनों को देखते हुए ऐसा प्रावधान और भी अनावश्यक है। इसलिए अभियोजन के लिए ऐसी मंजूरी आवश्यक नहीं होनी चाहिए।"*

9.5.14 तदनुसार, आयोग ने निम्नलिखित सिफारिश की (पैरा 6.1.7.9 क) :

> *"धारा 153(क) के तहत अभियोजन हेतु केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकार की कोई मंजूरी आवश्यक नहीं होनी चाहिए। द.प्र.सं. की धारा 196 को तदनुसार संशोधित किया जाना चाहिए। "*

9.5.15 इन सिफारिशों को ध्यान में रखते हुए, आयोग का मत है कि साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए किसी पृथक विधान की जरूरत नहीं है तथा इससे बुनियादी कानूनों के सारवान प्रावधानों का प्रयोग प्रतिबंधित भी हो सकता है। जहाँ आवश्यक हो, मूल कानूनों को मजबूत बनाना बेहतर होगा।

9.5.16 इस संदर्भ में, साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005 में कुछ नूतन प्रावधान हैं जिनसे साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने में एक सामाजिक संदर्भ में ऐसी हिंसा से जुड़ी कुरीतियों को नकारने में सरकार के हाथ और मजबूत होंगे, यदि उन्हें विद्यमान कानूनों में शामिल कर लिया जाए। विधेयक में कुछेक प्रावधान निम्न प्रकार हैं:

- *खण्ड 19(1) : जो कोई व्यक्ति ऐसे पैमाने पर अथवा ऐसे ढंग से कोई ऐसा कार्य करता है अथवा नहीं करता है जो एक अनुसूचित अपराध है, जिससे राज्य के किसी भाग में आन्तरिक असंतोष पैदा होने की प्रवृत्ति हो, तथा राष्ट्र के धर्मनिरपेक्ष ताने-बाने, एकता, अखण्डता अथवा आन्तरिक सुरक्षा के लिए आशंका हो, साम्प्रदायिक हिंसा ।*
- *खण्ड 19(2) : भारतीय दण्ड संहिता अथवा अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अन्य अधिनियम में दी गई किसी बात के बावजूद, जो कोई व्यक्ति कोई कार्य करता है अथवा नहीं करता है, जो साम्प्रदायिक हिंसा है, मृत्यु अथवा आजीवन कारावास के साथ दण्डनीय किसी अपराध के मामले को छोड़कर, ऐसी सजा के साथ दण्डनीय होगी जो भा. द. सं. में अथवा अनुसूची में विनिर्दिष्ट किसी अन्य अधिनियम में सजा की सबसे लम्बी अवधि से दुगनी और उस अपराध के लिए सर्वाधिक जुर्माने से दुगनी हो सकती है, जैसा मामला हो:*

  बशर्तें कि यदि कोई व्यक्ति सरकारी सेवक अथवा इस अधिनियम के किन्हीं प्रावधानों अथवा उसके तहत बनाए गए आदेशों के अन्तर्गत सक्षम प्राधिकारी द्वारा कार्य करने के लिए प्राधिकृत कोई अन्य व्यक्ति साम्प्रदायिक हिंसा करता है, ऊपर वर्णित प्रावधानों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किए बगैर, सजा के साथ दण्डनीय होगा, जो पाँच वर्ष से कम नहीं होगी।
- *खण्ड 19(3) : कोई भी व्यक्ति जो उप-धारा (1) के तहत किसी अपराध का कसूरवार हो, सरकार के अधीन कोई पद अथवा सेवा धारित करने के लिए, ऐसी सजा की तारीख से छः वर्ष की अवधि के लिए, अपात्र होगा।*
- *खण्ड 20(3): संहिता की धारा 167, इस संशोधन के अध्यधीन कि "ज्युडिशियल मजिस्ट्रेट" के विषय में उसकी उप-धारा (1) में संदर्भ को "ज्युडिशियल मजिस्ट्रेट अथवा अनुसूचित अपराध वाले मामले की दृष्टि से लागू होगी ("संहिता" का संदर्भ दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 से है, तथा व्यवहार्यतः इसका अर्थ है कि आरोपी को कार्यकारी मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है)*

- *खण्ड 24(1) : राज्य सरकार, इस प्रयोजनार्थ एक अधिसूचना जारी करके अव्यवस्था की अवधि के दौरान किए गए अनुसूचित अपराध के विचारण के लिए एक अथवा अधिक विशेष न्यायालय स्थापित करेगी।*
- *खण्ड 24(2): उप-धारा (1) में दी गई किसी बात के बावजूद, यदि किसी राज्य में विद्यमान स्थिति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, यदि सरकार का मत हो कि किसी साम्प्रदायिक गड़बड़ी वाले क्षेत्र में किए गए ऐसे अनुसूचित अपराधों के विचारण हेतु, राज्य से बाहर अतिरिक्त विशेष न्यायालय सथापित करना उचित होगा, राज्य के अन्दर उसका विचारण -*

(क) उचित अथवा निष्पक्ष अथवा अत्यंत शीघ्रता से पूरा होने की सम्भावना नहीं है, अथवा

(ख) शान्ति भंग हुए बिना व्यवहार्य होने की सम्भावना नहीं है अथवा अभियुक्त, गवाहों, सरकारी अभियोजक और जज अथवा उनमें से किसी एक की सुरक्षा को गम्भीर खतरा हो; अथवा

(ग) अन्यथा न्याय के हित में नहीं है, वह केन्द्रीय सरकार से, ऐसे साम्प्रदायिक अशान्त क्षेत्र की दृष्टि से , राज्य से बाहर एक अतिरिक्त विशेष न्यायालय स्थापित करने का अनुरोध कर सकती है और उसके बाद केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार द्वारा प्रस्तुत जानकारी को ध्यान में रखते हुए और ऐसी पूछताछ करने के बाद, जिसे वह उपयुक्त समझे, एक अधिसूचना द्वारा, राज्य से बाहर ऐसे स्थान पर, जैसाकि अधिसूचना में विनिर्दिष्ट हो, ऐसा विशेष न्यायालय स्थापित कर सकती है।

- *इसके अतिरिक्त, खण्ड 17(1) में दण्ड की व्यवस्था है यदि कोई सरकारी सेवक दुर्भावपूर्ण ढंग से काम करता है अथवा कोई कानूनी प्राधिकार जानबूझकर इस्तेमाल नहीं करता है।*

9.5.17 इन्हें भा. द. सं. और द. प्र. सं. में ही सम्मिलित किया जाना चाहिए, विशेष रूप से क्योंकि सरकारी व्यवस्था के अनुरक्षण से संबधित अनेक समर्थनकारी और पूरक प्रावधान विद्यमान हैं जिनसे उपरोक्त प्रावधानों का प्रभावी कार्यान्वयन सुकर हो सकता है। यह इस आधार पर भी न्यायोचित है कि सरकारी व्यवस्था से संबंधित अपराधों से निपटने के लिए अनेक अन्य उपाय इन दोनों संहिताओं में सम्मिलित हैं।

9.5.18 विधेयक की एक अन्य व्यवस्था यह है कि इसके अन्तर्गत सामुदायिक गड़बड़ियों द्वारा प्रभावित व्यक्तियों के पुनर्वास और राहत प्रदान करने के प्रयोजनार्थ एक विस्तृत संस्थागत प्रणाली की व्यवस्था है। यद्यपि यह पहल इसके आशय और प्रयोजन की दृष्टि से सराहनीय है, एक प्रकार से यह एकसमान कार्यों के लिए समानान्तर प्रणालियां कायम करने के समान है। इस मुद्दे को स्पष्ट करने के लिए "आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 (डी एम ए) द्वारा सृजित प्रणालियों और वर्तमान विधेयक द्वारा सृजित करने के लिए प्रस्तावित प्रणालियों की एक तुलना नीचे तालिका 9.2 में प्रस्तुत है:

तालिका 9.2: राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005 और साम्प्रदायिक हिंसा(रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005 में राहत और पुनर्वास से सम्बद्ध प्रावधानों की तुलना

क्रम सं0	**प्राधिकारी/निकाय/योजना/मार्गदशी रूपरेखा/निधि**	**आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005**	**साम्प्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण, और पीड़ितों का पुनर्वास) विधेयक 2005**
1.	राष्ट्रीय स्तर प्राधिकरण/निकाय	1. पदेन अध्यक्ष के रूप में प्रधान मंत्री व अन्य सदस्यों के साथ राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण। 2. पदेन अध्यक्ष के रूप में आपदा के प्रशासनिक नियंत्रण वाले मंत्रालय अथवा विभाग के प्रभारी भारत सरकार के सचिव के साथ और पदेन सदस्यों के रूप में कृषि, परमाणु, ऊर्जा, रक्षा, पेय जल आपूर्ति, पर्यावरण और वन, वित्त (व्यय), स्वास्थ्य, विद्युत, ग्राम विकास, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, अन्तरिक्ष, दूर-संचार, शहरी विकास, जल संसाधनों पर नियंत्रण रखने वाले केन्द्रीय मंत्रालयों/ विभागों में सचिव और स्टाफ समिति के प्रमुखों वाले एकीकृत रक्षा स्टाफ के प्रमुख के साथ राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद	राष्ट्रीय साम्प्रदायिक अशान्त राहत और पुनर्वास परिषद में, गृह मंत्रालय, रक्षा और वित्त मंत्रालयों में भारत सरकार के सचिव, पदेन सदस्यों के रूप में तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत अन्य सदस्यों के साथ ग्यारह सदस्य, (खण्ड 45)
2.	राज्य स्तर प्राधिकरण/निकाय	1. पदेन अध्यक्ष के रूप में मुख्य मंत्री के रूप में राज्य आपदा प्रबंध प्राधिकरण। 2. पदेन अध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव और पदेन सदस्यों के रूप में राज्य सरकारों के चार सचिवों के साथ राज्य कार्यकारी समिति	पदेन अध्यक्ष के रूप में मुख्य सचिव और गृह तथा वित्त और राहत तथा पुनर्वास, समाज कल्याण, जनजातीय कल्याण, अल्पसंख्यक तथा महिला और बाल विकास से सबंधित मंत्रालयों/विभागों में राज्य सरकार के सचिव तथा अन्यों के साथ पुलिस महानिदेशक, पदेन सदस्यों के साथ राज्य साम्प्रदायिक अशांत राहत और पुनर्वास परिषद (खण्ड 39)।
3.	जिला स्तर प्राधिकरण/निकाय	पदेन अध्यक्ष के रूप में जिले के कलेक्टर/ जिला मजिस्ट्रेट/ उपायुक्त के साथ जिला आपदा प्रबंध प्राधिकारी और सात अन्य सदस्य, स्थानीय प्राधिकरण के निर्वाचित प्रतिनिधि सहित (पदेन सह-अध्यक्ष) और जिला प्राधिकरण के सी ई ओ, पुलिस अधीक्षक, मुख्य मेडिकल अधिकारी, पदेन सदस्यों के रूप में।	पदेन अध्यक्ष के रूप में जिले के कलेक्टर/उपायुक्त और पुलिस अधीक्षक, मुख्य मेडिकल अधिकारी, समाज कल्याण, जनजातीय कल्याण, अल्पसंख्यक कल्याण, महिला और बाल विकास विभागों के अन्य जिला स्तर अधिकारी, पदेन सदस्यों के साथ जिला साम्प्रदायिक अशांत राहत और पुनर्वास परिषद (खण्ड 42)।
4.	राष्ट्रीय योजना/मार्गनिर्देश	राष्ट्रीय योजना, एन ई सी द्वारा तैयार तथा राष्ट्रीय प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित, राहत के न्यूनतम मानकों के संबंध में मार्गनिर्देशों की सिफारिश करने के लिए राष्ट्रीय प्राधिकरण।	राहत, पुनर्वास और क्षतिपूर्ति के संबंध में उपयुक्त सरकार को सिफारिश करने के लिए राष्ट्रीय परिषद (खण्ड 47)।

5.	राज्य योजना/मार्गनिर्देश	राज्य जिला प्रबंध योजना, एस ई सी द्वारा तैयार व राज्य प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित।	राज्य साम्प्रदायिक सामन्जस्य योजना (राज्य योजना), जिसे राज्य परिषद द्वारा तैयार किया जाएगा (खण्ड 41) क्षतिपूर्ति, राहत आदि के लिए मार्गनिर्देशों के संबंध में राज्य सरकार को सलाह देने के लिए राज्य परिषद (खण्ड 40)।
6	जिला योजना	जिला योजना, जिला प्राधिकरण द्वारा तैयार और राज्य प्राधिकरण द्वारा अनुमोदित।	साम्प्रदायिक सामन्जस्य और साम्प्रदायिक हिंसा की रोकथाम के लिए जिला योजना, जिला परिषद द्वारा तैयार और राज्य परिषद को सिफारिश (खण्ड 44)।
7.	राष्ट्रीय निधि	1. आपातिक प्रतिक्रिया राहत और पुनर्वास के लिए खर्च वहन करने हेतु एन ई सी के साथ उपलब्ध राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया निधि।	लागू नहीं।
8.	राज्य निधि (यां)	1. राज्य आपदा प्रतिक्रिया निधि 2. राज्य आपदा न्यूनता निधि	राज्य साम्प्रदायिक अशांत राहत और पुनर्वास निधि (खण्ड 49)।
9.	जिला निधि (यां)	1. जिला आपदा प्रतिक्रिया निधि 2. जिला आपदा न्यूनता निधि	जिला परिषद के निपटान पर प्रत्येक जिले में पीड़ित सहायता निधि (खण्ड 50)।

9.5.19 इस तुलना से यह स्पष्ट है कि विधेयक के तहत ऐसी पद्धतियां कायम करने का प्रस्ताव है जो सामान्य रूप से एकसमान कार्यकर्ताओं और प्राधिकारियों की भागीदारी की परिकल्पना करते हुए, डी एम ए के तहत पहले से अनिवार्य पद्धतियों के लगभग समान हैं। एक के अन्तर्गत राहत और पुनर्वास सहित, आपदा प्रबंधन से सम्बद्ध उपायों के साथ डील किया गया है, दूसरी, साम्प्रदायिक हिंसा के कारण आवश्यक राहत और पुनर्वास से संबंधित है। वस्तुतः ऐसे ही कारणों की वजह से, आपदा प्रबंधन से सम्बद्ध मुद्दों पर विचार करते समय आयोग ने संकट प्रबंधन पर अपनी रिपोर्ट के पैराग्राफ 4.3.3.3 में सिफारिश की है कि "आपदा प्रबंधन अधिनियम, 2005 के तहत यथानिर्धारित "राष्ट्रीय कार्यकारी परिषद" गठित करने की जरूरत नहीं है और "राष्ट्रीय संकट प्रबंधन समिति (एन सी एम सी)" को शीर्ष समन्वय निकाय के रूप में कार्य करते रहना चाहिए। इसी प्रकार, राज्य स्तर पर आयोग ने, मुख्य सचिव के अधीन विद्यमान समन्वय तंत्र को जारी रखने की सिफारिश की है। आयोग का मत है कि साम्प्रदायिक हिंसा के पीड़ितों के पुनर्वास और राहत प्रदान करने के लिए "आपदा प्रबंधन अधिनियम 2005" के अन्तर्गत सृजित की जाने वाली प्रस्तावित पद्धतियों का उपयोग किया जा सकता है जो उनके साथ प्रभावी ढंग से डील करने के लिए पर्याप्त हैं। वस्तुतः, "आपदा" शब्द की परिभाषा डी एम ए 2005 की धारा 2 (घ) में की गई है, जिसका अर्थ अन्य बातों के साथ-साथ "एक गम्भीर घटना" है जो मानव सृजित कार्यों से अथवा दुर्घटना द्वारा अन्यथा लापरवाही के कारण हो सकती है जिसके फलस्वरूप जीवन की पर्याप्त हानि हो, अथवा मनुष्यों को कठिनाईयाँ हों अथवा सम्पत्ति को क्षति पहुँचे अथवा बरबादी हो तथा जो उतनी मात्रा में अथवा ऐसी प्रकृति की हो जो प्रभावित क्षेत्र के समुदाय की वहन क्षमता से परे हो। इसलिए साम्प्रदायिक हिंसा का प्रतिकूल प्रभाव इस परिभाषा के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आता है

जो इसे "आपदा प्रबंधन" से संबंधित प्रावधानों के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत लाएगी, राहत और पुनर्वास सहित {डी एम ए 2005 की धारा 2 (ड.)(viii)}।

9.6 सिफारिशें

क- सामुदायिक पुलिस व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आयोग द्वारा "सार्वजनिक व्यवस्था" पर उसकी रिपोर्ट के पैराग्राफ 5.15.5 में निर्धारित सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए।

ख- जिला शान्ति समितियों/एकता परिषदों को साम्प्रदायिक असामन्जस्य पैदा करने की सम्भावना वाले मुद्दों का समाधान करने के कारगर साधन बनाए जाए। पुलिस आयुक्त वाली प्रणाली में इन समितियों की स्थापना पुलिस आयुक्त द्वारा पुलिस आयुक्त के साथ परामर्श करके की जा सकती है। ये समितियां स्थायी किस्म की होनी चाहिए। इन समितियों को साम्प्रदायिक संघर्षों के रूप में बदलने की क्षमता वाली स्थानीय समस्याओं का पता लगाना चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र उनसे निपटने के लिए साधन सुझाने चाहिए। इसके अलावा, इसी प्रकार से मोहल्ला समितियां भी गठित की जानी चाहिए।

ग- संघर्ष प्रधान क्षेत्रों में, पुलिस को ऐसे कार्यक्रम तैयार करने चाहिए जिनमें लक्ष्य आबादी वाले सदस्यों को, विश्वास निर्माण पद्धति के रूप में पुलिस के साथ विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

घ- साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए एक पृथक कानून की जरूरत नहीं है, भारतीय दण्ड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता के विद्यमान प्रावधानों को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए। यह निम्नलिखित की व्यवस्था करके प्राप्त किया जा सकता है:

(i) साम्प्रदायिक अपराधों के लिए वर्धित दण्ड।

(ii) साम्प्रदायिक हिंसा से सम्बद्ध मामलों के शीघ्र विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना।

(iii) साम्प्रदायिक अपराधों के मामलों में कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को रिमांड की शक्तियां प्रदान करना।

(iv) राहत और पुनर्वास के मानदण्डों का निर्धारण।

उपरोक्त के अलावा, जैसी कि आयोग की "सार्वजनिक व्यवस्था" पर रिपोर्ट के पैरा 6.1.7.9 में सिफारिश की गई है, इसके साथ ही द. प्र. सं. की धारा 196 में दिए गए प्रावधानों को समाप्त किया जाना चाहिए जिनके तहत भा. द. सं. की धारा 153 क, 153 ख, 295 क और धारा 505 की उप-धारा (1) (ग), (2) और (3) के अन्तर्गत अपराधों के लिए अभियोजन शुरू करने के लिए केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार अथवा जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व-अनुमति आवश्यक है।

ड.-साम्प्रदायिक हिंसा के पीड़ितों के पुनर्वास और राहत प्रदान करने के लिए जिला प्रबंधन अधिनियम 2005 के अन्तर्गत व्यवस्थित प्रणाली का कारगर ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।

10

राजनीति और विवाद

10.1 प्रस्तावना

10.1.1 प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया में राजनीतिक दल महत्वपूर्ण होते हैं तथा इस सीमा तक विवाद समाधान के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। भारत जैसे विषम देश में जहाँ भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों की शिकायतें होती हैं जो असमाधित सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं, यह महत्वपूर्ण है कि ऐसी शिकायतों के समाधान के लिए प्रजातान्त्रिक पद्धति का इस्तेमाल किया जाए। इस संबंध में, राजनीतिक दलों को बड़ी अहम भूमिका निभानी है। जब राजनीतिक प्रक्रिया के तहत ऐसी वैध मांगों का समाधान नहीं हो पाता, तब विवाद उत्पन्न होते हैं। आजकल वाम उग्रवाद आन्दोलन से प्रभावित क्षेत्रों में यह राजनीतिक प्रक्रिया की असफलता है जिसकी वजह से आन्दोलन को लोगों को जुटाने में और उन्हें अपने साथ मिलाने में सफलता मिली। 1960 और 1990 के दशकों के दौरान, केरल और प. बंगाल जैसे राज्यों में राजनीतिक दल लोगों को समझने में सफल रहे और फिर उन्होंने उनके हितों व आकांक्षाओं का समाधान और अनुमान लगाने के फलस्वरूप ठोस कार्यक्रम मूर्त रूप में तैयार किए जिनसे ऐसी स्थिति से बचाव हो गया जहाँ उनके कुछ वर्ग उग्रवादी तत्वों के प्रभाव में आ सकते थे। आजकल विवादों का समाधान करने के लिए प्रजातान्त्रिक पद्धति का इस्तेमाल करना कठिन हो गया है। इसका एक कारण बाध्यकर राजनीति है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक राजनीतिक समूह की बहु-पहचान है और विवाद क्षेत्रीय मुद्दों पर हावी हो जाते हैं तथा उन मुद्दों को क्षेत्रीय रूचि की वजह से लगभग सभी राजनीतिक दल कठोर रूख अपनाते हैं जिसकी वजह से विवाद "ठण्डे" पड़ जाते हैं। जल के संबंध में अन्तर-राज्य विवाद, केन्द्रीय परियोजनाओं की स्थापना आदि इनके उदाहरण हैं जहां एक राज्य के राजनीतिक दल, राष्ट्रीय दलों सहित, दूसरे राज्य के खिलाफ एक आम रूख अपनाते हैं और इस प्रकार क्षेत्र में एक विवाद का स्त्रोत बन जाता है।

10.1.2 उपरोक्त स्थिति के कारण, विवाद समाधान के हित में यह आवश्यक है कि सभी राजनीतिक दल और उनके कार्यकर्ता प्रजातान्त्रिक संयम बरतें। इसे संस्थागत रूप देने का एक प्रभावी तरीका सभी राजनीतिक दलों के लिए एक प्रवर्तनीय आचरण संहिता तैयार करना हो सकता है जिसमें एक प्रजातान्त्रिक पद्धति में अनुमत्य विसम्मति के स्वरूपों का उल्लेख किया जाए तथा यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाएं कि इनका अनुपालन किया जाए।

10.1.3 संहिता का निर्माण खुद राजनीतिक दलों द्वारा किया जाना चाहिए। तत्पश्चात उसे कानून में सम्मिलित करने पर विचार किया जा सकता है। इस संहिता के प्रवर्तन का कार्य भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में कानून के अन्तर्गत इस बात पर बल दिया जाना चाहिए कि सार्वजनिक मामलों में संवैधानिक प्रावधानों का कठोर रूप से पालन किया जाए। परिप्रेक्ष्य यह होना चाहिए कि हमारे संविधान में विवादों के समाधान की गुंजाइश है क्योंकि उसका निर्माण उस समय किया गया था जब बड़े विवाद थे। कानून के अन्तर्गत विवादपूर्ण स्थितियों में हिंसा का सहारा लेने, हिंसा भड़काने और प्रजातान्त्रिक विसम्मति के निर्धारित स्वरूपों को पार करने के लिए राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं के विरूद्ध, मामले दर्ज करने की आपराधिक मामलों की व्यवस्था करके और रोधकों के रूप में भारी जुर्माने की दण्डात्मक कार्रवाई की भी व्यवस्था की जानी चाहिए ।

10.2 पहचान संबंधी मुद्दे

10.2.1 हाल ही के समय में, विवाद किस प्रकार उत्पन्न और भड़कते हैं, उनमें पहचान संबंधी मुद्दों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। पहचान संबंधी मुद्दे वे मुद्दें हैं जिनसे सामूहिक पहचान होती है, जैसे कि भाषा, धर्म, मत, जाति और जनजाति पर आधारित मुद्दे प्राथमिकता प्राप्त करते हैं।[40] पहचान संबंधी मुद्दे भारत में अनूठे नहीं हैं, यह एक विश्वव्यापी लक्षण है। यद्यपि ये आज के भारत में विशेष तीव्रता के साथ विद्यमान हैं जहाँ समुदायों ने भाषा, धर्म, मत, जाति और जनजाति के आधार पर अपनी पहचान को सुदृढ़ किया है। ऐसे पहचान मुद्दों के आधार पर विवाद प्रायः हिंसा का रूप ले लेते हैं। हाल ही का एक उदाहरण जनजातियों के रूप में पहचाने जाने की समाज के कुछ वर्गों द्वारा मांग, एक बढ़ता विवाद है, जैसा कि राजस्थान में गुज्जर समुदाय द्वारा किए गए आन्दोलन और मीणा समुदाय द्वारा इसका विरोध किए जाने से स्पष्ट है। आदर्शतः ऐसे विवादों के संबंध में इस प्रयोजनार्थ व्यवस्थित संस्थागत पद्धतियों द्वारा अधिनिर्णयन किया जाना चाहिए जैसे कि राष्ट्रीय अनुसूचित जाति, अनु. जनजाति और पिछड़ा वर्ग आयोग तथा इन आयोगों के निर्णय अन्तिम व सभी संबंधितों द्वारा स्वीकार्य होने चाहिए।

10.2.2 मामला इस तथ्य से और गम्भीर हो जाता है कि पहचान संबंधी मुद्दे प्रमुख रूप से यह तय करते हैं कि राजनीतिक दलों को किस प्रकार आचरण और कार्य करना चाहिए। चाहे चुनाव का समय हो अथवा विधानमण्डलों में अथवा राजनीतिक दलों के बीच गठबंधन गठित करने की बात हो, पहचान संबधी मुद्दों पर आधारित समीकरण मार्गदर्शी सिद्धान्त बन जाते हैं। राजनीतिक समर्थन जुटाने के लिए जिस प्रकार से

[40] आन्द्रे बेते, "क्लासिज एण्ड कम्यूनिटीज, इकोनोमिक एण्ड पालिटिकल वीकली", 17 मार्च 2007

जाति और समुदाय की अन्तर्निहित वफादारियों का दोहन किया जाता है, उसका कारण भारतीय समाज में कतिपय मूलभूत विशेषताओं का होना है।

10.2.3 ऐतिहासिक दृष्टि से, भारत में पहचान संबंधी राजनीति के बीज उपनिवेशी शासन के दौरान बोए गए। ब्रिटिश लोगों ने मिले-जुले उद्देश्यों से काम किया। उनमें से कुछ ने धार्मिक अल्पसंख्यकों और पिछड़े समुदायों के प्रति पालनकर्ता का, लगभग संरक्षणवादी रूख अपनाया और मानवीय आधरों पर अपने हितों को बढ़ावा दिया। इसके साथ ही वे विभाजित करो और शासन करो की आदर्श नीति के माध्यम से भारत में अपना अधिकार बनाए रखने की बात भी नहीं भूलते थे।

10.2.4 इस प्रकार बोए गए बीज विभाजन के समय फलीभूत हुए और बाद में भारत ने संसदीय प्रजातन्त्र के रूप में अपनी जड़ें जमाई। भाषा, धर्म और जाति पर आधारित पहचान को उभारने में प्रजातान्त्रिक नीतियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है क्योंकि प्रजातान्त्रिक राजनीति के प्रमुख हित समाज के लाभों और भार को विभिन्न संघटक इकाइयों में विभाजित और पुन: विभाजित करने पर केन्द्रित थे। उस सीमा तक, पहचान राजनीति, जिसका मूल उद्देश्य विद्यमान सामाजिक प्रणाली के अन्दर और अधिक अनुकूल पुन: विभाजन कायम करना राजनीतिज्ञों के लिए दोहन का एक तत्काल साधन बन गया।

10.2.5 पहचान राजनीति ने मूलभूत परिवर्तन प्रेरित किए हैं कि किस प्रकार राजनीतिक दल मतदाताओं को लुभाते हैं। आजादी के शुरू के दिनों में, राजनीतिक दल, जाति, धर्म, समुदाय अथवा श्रेणी के बगैर सभी वर्गों को लुभाते थे। वे, किसी एक वर्ग के हित की बजाए समावेशी राष्ट्रीय छवि प्रस्तुत करते थे। राजनीतिज्ञों ने, मतदाताओं को आकर्षित करने के लिए समग्र विकास और साथ ही गरीबी-रोधी, ग्रामीण विकास अथवा रोजगार कार्यक्रमों की जरूरत का इस्तेमाल किया। जब कुछ धार्मिक पुनरूद्धारकर्ताओं और जातिगत समूहों ने पृथक स्वरूप और "बाह्य व्यक्तियों" के साथ विवाद पर बल देकर समूह के अन्दर तालमेल करने पर, परिवर्तन आया। कुल मिलाकर सोसायटी के बिखराव के साथ इन समूहों को मजबूती प्राप्त हुई। आजकल, बहुत से राजनीतिक दलों की उत्तरजीविता किसी न किसी अलग-थलग समूह से तालमेल बनाए रखने पर निर्भर है। राजनीतिक दल खुलेआम अपनी संकीर्ण पहचान को उभारते हैं, यह विशिष्टवादिता अब सशक्तीकरण की प्रक्रिया के एक भाग के रूप में देखी जाती है। किसी विशेष सामाजिक घटक पर बल देने का एक सकारात्मक पहलू यह है कि कुछ समूह अथवा हित जो पहले,

मार्जिनकृत थे उन्हें अब राजनीतिक और सामाजिक पद्धतियों के अन्दर अधिक महत्व प्राप्त हो रहा है। विगत की तुलना में अब उनकी सौदेबाजी की ताकत अधिक है और वे अब अधिकाधिक मुख्यधारा के भाग बनते जा रहे हैं किन्तु एक नकारात्मक पहलू सभी मामलों में समूह-आधारित दृष्टिकोण का विकास होना है।

10.2.6 संकीर्ण और स्थानीय पहचानों के फैलाव पर आधारित राजनीतिक दल पद्धति का बिखराव अविरत रूप से जारी रह सकता है। प्रत्येक घटक अपनी राजनीतिक पहचान खोजने के लिए उप-घटकों को बढ़ावा देता है। इस प्रकार का बिखरता "बहुवाद" देश के अनेक भागों में देखा गया है। उदाहरण के लिए आन्ध्र प्रदेश में, राज्य के दो प्रमुख दलित समुदायों "मालाओं" और "मादिगों" के बीच संघर्ष के कारण पृथक राजनीतिक संगठन कायम हो गए हैं। यद्यपि कठोरतः शब्द की दृष्टि से ये दल राजनीतिक दल नहीं हैं, तथापि ये संगठन राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उन्होंने अपना समर्थन इस शर्त पर दिया है कि ये दल उन्हें क्या लाभ प्रदान कर सकेंगे।

10.2.7 यद्यपि एक दृष्टि से ऐसी घटना को देश की प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया में मार्जिनकृत समूहों के समावेशन में एक अनिवार्य कदम के रूप में देखा जा सकता है, तथापि इससे अनवरत संघर्ष और विवाद भी पैदा हो सकते हैं जिससे अन्ततः हिंसा का आवर्ती चक्र कायम हो सकता है। इसलिए महत्वपूर्ण यह सुनिश्चित करना है कि पहचान की राजनीति को प्रजातन्त्र द्वारा प्रदत्त अवसरों के अन्दर राजनीतिक क्षेत्र के अन्तर्गत कायम किया जाए और यह हिंसक संघर्षों के अपरिवर्तनीय संघर्षों का रूप न ले तथा सार्वजनिक व्यवस्था और एकता के लिए खतरा न बने।

10.2.8 समस्या की विशालता और जटिलता को देखते हुए तथा पहचान स्थिति का लाभ उठाने की राजनीतिक दलों की बाध्ययताओं और झुकाव की वजह से मात्र दण्डात्मक कार्रवाई पर्याप्त नहीं होगी। एक ऐसा संस्थागत ढाँचा निर्मित करना आवश्यक हो सकता है जिससे पहचान कार्ड का इस्तेमाल करने वाले और जिला तथा उप-जिला स्तरों पर संघर्ष पैदा करने वाले राजनीतिक दलों पर नजर रखी जा सके । ऐसी प्रणाली की सेवाओं का उपयोग, संघर्ष पैदा करने में पहचान राजनीति का इस्तेमाल करने में राजनीतिक दलों के कार्यकलापों का मानीटरन करने और रोकने के लिए जिला तथा उप-जिला स्तरों पर एक निगरानी निकाय के रूप में किया जाता है। इस निगरानी निकाय की रिपोर्टें चुनाव आयोग के लिए पहले प्रस्तावित कानून के तहत कार्रवाई करने के लिए एक महत्वपूर्ण इनपुट का कार्य करेंगी।

10.3 सिफारिशें

क– राजनीतिक दलों को हमारी प्रजातान्त्रिक पद्धति में अनुमत्य विसम्मति के स्वरूपों के संबंध में एक आचरण संहिता तैयार करनी चाहिए। इसे एक कानून में शामिल किया जा सकता है जो सभी राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं पर लागू होगी। कानून को लागू करने का काम चुनाव आयोग को सौंपा जा सकता है। कानून के अन्तर्गत, राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं के विरूद्ध आपराधिक मामले फाइल करने और रोधक के रूप में जुर्माना आरोपित करने की व्यवस्था करके, प्रजातान्त्रिक विसम्मति के निर्धारित स्वरूपों का उल्लंघन करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्रवाई भी निर्धारित की जा सकती है।

ख–इस बात पर आम सहमति होनी चाहिए कि पहचान की राजनीति प्रजातन्त्र द्वारा प्रदत्त रूपरेखा के अन्दर की जाएगी और इसे असाध्य संघर्ष का रूप नहीं दिया जाएगा जिसकी वजह से हिंसा पैदा हो। राजनीतिक दलों को ऐसी आम सहमति कायम करने के लिए क्षमता निर्मित करने की जरूरत है।

11 क्षेत्रीय असमानताएं

11.1 समस्या की रूपरेखा

11.1.1 अनेक क्षेत्रीय संघर्ष देश अथवा उस राज्य के शेष भागों की तुलना में, जिस क्षेत्र विशेष का वे भाग हैं, विकास में असमानताओं का परिणाम हैं। ऐसे विवाद भारत में अनूठे हैं: कोई भी राज्य अपने क्षेत्र विशिष्ट विवादों की उपेक्षा नहीं कर सकता चाहे वे असमानताओं की वजह से हों अथवा किसी अन्य कारणवश पैदा हुए हों। जैसा कि अफ्रीका में संघर्षों और पिछड़ेपन के संदर्भ में जेफरी सच्स का कहना है।[41] ऐसी स्थितियां और स्थान हैं जहाँ असमानताएं जीवन का एक सच हो सकती हैं। उसके जाने-माने शब्दों में "भूगोल की अर्थशास्त्र के साथ एक मिली भगत है कि अफीका की विशेष रूप से कमजोर है।"[42] इससे असमानताओं का सम्भवत: उपयुक्त उपायों के जरिए अथवा अन्यथा संघर्ष और विवाद की स्थितियों से बचने के लिए उपयुक्त "सुरक्षा कड़ियां" और बेहतर अधिशासन प्रदान करके समाधान करने की जरूरत का पता चलता है।

11.1.2 प्रति व्यक्ति आय, असमानताओं की विद्यमानता निश्चित करने के लिए अन्तर देशीय तुलनाओं में सामान्यत: प्रयुक्त विकास और रहन-सहन के स्तर का माप होती हैं। देश के अन्दर उसकी संघटक इकाइयों के निवल राज्य घरेलू उत्पाद (एन एस डी पी) का माप और तुलना विद्यमान असंतुलनों की एक झलक प्रस्तुत करता है। निम्नलिखित तालिका से, कुछेक वर्षों के संबंध में प्रति व्यक्ति एन एस डी पी और राज्य-वार औसत के ब्योरों के माध्यम से विद्यमान अन्तरराज्य असमानताओं की पर्याप्त सही रूपरेखा प्राप्त होती है:

तालिका 11.1 :विभिन्न राज्यों में प्रति व्यक्ति एन एस डी पी

	राज्य	औसत 1960-61, 1961-62 और 1962-63	औसत 1970-71, 1971-72 और 1972-73	औसत 1987-88, 1988-89 और 1989-90	औसत 1996-97, 1997-98 और 1998-99
I	उच्च आय (एच I)				
	गोआ			7364	23853
	गुजरात	402	821	4602	17393
	हरियाणा	371	1010	5284	17804
	महाराष्ट्र	418	849	5369	19248

[41] जेफरी डी सच्स, "दि एण्ड आफ पावर्टी", न्युयॉर्क (पेनगुइन), 2005 पृ. 51-73 और 188-208

[42] -वही-

	राज्य	औसत 1960-61, 1961-62 और 1962-63	औसत 1970-71, 1971-72 और 1972-73	औसत 1987-88, 1988-89 और 1989-90	औसत 1996-97, 1997-98 और 1998-99
	पंजाब	401	1127	6996	18924
	औसत (एच I)*	398	952	5563	18342
II	आन्ध्र प्रदेश (एम आई)				
	कर्नाटक	331	626	3455	12257
	केरल	312	705	3810	13085
	तमिलनाडु	292	659	3532	14448
	पश्चिम बंगाल	357	674	4093	15424
	औसत (एम आई)*	399	760	3750	11769
	औसत (एम आई)*	338	685	3728	13397
III	निम्न आय (एल आई)				
	बिहार**	223	452	2135	5465
	मध्य प्रदेश**	279	538	3299	9371
	उड़ीसा	240	551	2945	1556
	राजस्थान	285	601	3092	11245
	उत्तर प्रदेश	252	540	2867	8298
	औसत (एल आई)*	256	536	2868	8387
IV	विशेष श्रेणी (एस सी)				
	अरुणाचल प्रदेश			4670	11643
	असम	350	587	3195	7918
	हिमाचल प्रदेश		740	3618	11997
	जम्मू व कश्मीर	266	575	3534	9916
	मणिपुर		463	3449	9096
	मेघालय		620	3328	9678
	मिजोरम			4094	11950

	नागालैण्ड		540	3929	12422
	सिक्किम			4846	10990
	त्रिपुरा		558	3763	8567
	औसत (एस सी)	308	583	3783	10418
	पच्चीस राज्यों का औसत*	324	666	3877	11936
	अधिकतम/न्यूनतम औसत*	1.87	2.50	3.28	3.52
	अन्तर का *	.197	.257	.263	.309

टिप्पणी: * गोआ को छोड़कर ** अविभाजित राज्य के संदर्भ में है।

स्त्रोत: "रीजनल इनइक्युअलीटीज इन इण्डिया: प्री एण्ड पोस्ट रिफोर्म ट्रेण्डस एण्ड चेलेन्जिज फार पालिसी", अमरेश बागची और जॉन कुरियन द्वारा "पालिटिक्स आफ इकोनामिक रिफोर्म्स इन इण्डिया" में, जोस मूडज द्वारा सम्पादित: (वित्त आयोगों और केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन(सी एस ओ) की रिपोर्टों से मूल आंकड़ें)

एन एस डी पी के संबंध में डाटा से स्पष्टत: पता चलता है कि अधिकतम से न्यूनतम अनुपात की दृष्टि से और साथ ही भिन्नता के गुणांक से भी, जहाँ तक राज्यों का संबंध है, सम्पन्न और अ-सम्पन्न राज्यों के बीच अन्तर में विगत चार दशकों के दौरान वृद्धि हुई है।[43] न केवल राज्यों के बीच असमानताओं में वृद्धि हुई है बल्कि क्षेत्रों के बीच भी व्यापक असमानता है। राज्य-वार डाटा से पता चलता है कि प. बंगाल को छोड़कर, पूर्वी क्षेत्र, पश्चिम और दक्षिण की तुलना में विकास में पिछड़ा है। उभरती स्थिति से क्षेत्रों के बीच भेद स्पष्ट है - भारत के पश्चिम और दक्षिणी राज्य - एक ऐसी श्रेणी जो देश में पूर्व और उत्तर से स्पष्ट रूप से भिन्न हैं।

11.1.3 क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने तथा एक ऐसा संतुलित विकास प्रोत्साहित करने में, जिसमें सभी क्षेत्र और इलाके विकास में समर्थ हों, सरकारों को एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। राज्य की इस साम्यता प्रोत्साहन भूमिका के लिए मानव विकास और बुनियादी सेवाएं प्रदान करने तथा अवस्थापना करने में अन्तरों का पता लगाने और उन्हें दूर करने के लिए उपाय करने की जरूरत है जिससे कि यह सुनिश्चित हो सके कि सभी क्षेत्र और उप-क्षेत्र तथा समूहों के लिए विकास के समान लाभ सुलभ हो सकें। बदले हुए परिवेश में अर्थव्यवस्था के खुलने और नियंत्रणों को हटा लेने से ऐसी साम्यता प्रोत्साहन भूमिका और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है, बाजार ताकतों की भूमिका से असमानताओं में सामान्यत: और वृद्धि होती है। जैसे-जैसे देश की अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ एकीकरण होता है, राज्य को बढ़ती क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने में अधिक मजबूती से साम्यता प्रोत्साहक भूमिका निभानी है।

[43] अमरेश बागची और जॉन कुरियन, "रीजनल इनइक्विलिटीज इन इण्डिया: प्री एण्ड पोस्ट ट्रेण्डस एण्ड चेलेन्जिज, फार पालिसी". जोस मूईज द्वारा सम्पादित "दि पालिटिक्स आफ इकोनामिक रिफोर्म इन इण्डिया"।

11.2 अन्तर-राज्य विषमताएं

11.2.1 अन्तर-राज्य अन्तर, संतुलित क्षेत्रीय विकास का केवल एक पहलू हैं; एक राज्य के अन्दर क्षेत्रों के बीच बड़ी असमानताओं की उत्पत्ति भी समान रूप से महत्त्वपूर्ण है जो अन्यथा उत्तम निष्पादन करते हैं, गम्भीर पिछड़ेपन से पीड़ित हैं। कर्नाटक में, उदाहरण के लिए, क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने संबंधी एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति एच पी सी एफ आर आर आई) ने 35 संकेतकों का विनिर्धारण किया जिनमें विकास का एक सूचक तैयार और मापने के लिए, कृषि, उद्योग, सामाजिक और आर्थिक अवस्थापना और जनसंख्या विशेषताएं सम्मिलित हैं। एच पी सी एफ आर आर आई ने, उत्तरी कर्नाटक में 59 पिछड़े तालुकों का विनिर्धारण किया जिनमें से 26 को सर्वाधिक पिछड़े 17 को और अधिक पिछड़े तथा 16 को पिछड़े के रूप में विनिर्धारित किया गया। इन 114 तालुकों में पिछड़ेपन को कम करने के लिए समिति ने 16,000 करोड़ रुपए की एक विशेष विकास योजना कार्यान्वित करने की सिफारिश की। यह राशि आठ वर्ष की अवधि के दौरान खर्च की जाएगी।

11.2.2 आन्ध्र प्रदेश में तेलगांना क्षेत्र एक अन्य ऐसा उदाहरण है। भौगोलिक दृष्टि से आन्ध्र प्रदेश राज्य में तीन क्षेत्र सम्मिलित हैं, यथा तेलगांना, तटवर्ती आन्ध्र और रायलसीमा, जिसका हिस्सा क्रमशः 41.5%, 34% और 24.5 % है। अनुमान है कि तेलगाना में राज्य की 40.5% आबादी रहती है जबकि तटवर्ती आन्ध्र और रायलसीमा में क्रमशः 41.7% और 17.8 प्रतिशत आबादी रहती है। बताया गया है कि तेलगांना में साक्षरता दर केवल 55.95 % है जबकि तटीय आन्ध्र में 63.58% और रायलसीमा में 60.53 प्रतिशत तथा राजधानी नगर में 79.04% है।

11.3 प्रशासनिक दृष्टिकोण

11.3.1 देश की आयोजना और विभिन्न उपायों में, राजकोषीय प्रोत्साहन, सहित संतुलित क्षेत्रीय विकास एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है तथा विगत में इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु औद्योगिक नीतियां तथा प्रत्यक्षतः लक्षित उपाय अपनाए गए हैं। वस्तुतः अपेक्षाकृत पिछड़े क्षेत्रों में और अधिक निवेश सुकर बनाने के उद्देश्य से, योजनाओं और नीतियों के साथ राज्य-प्रेरित औद्योगीकरण की कार्यनीति के रूप में योजना कार्यान्वित करने का उद्देश्य और अधिक संतुलित विकास प्राप्त करना था। उम्मीद की गई थी कि कुछ समय के दौरान, ऐसे उपाय अपनाने से क्षेत्रीय असमानताएं धीरे-धीरे समाप्त हो जाएंगी। यद्यपि, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने के लिए सर्वोत्तम प्रणाली के संबंध में कोई ऐतिहासिक सर्वसम्मति नहीं है तथापि दो तरीके हैं। पहला कार्य पिछड़े क्षेत्रों को प्रबलीकृत करना और उन्हें

अतिरिक्त संसाधन और निवेश उपलब्ध कराना है ताकि वे अपनी संरचनात्मक कमियों पर काबू पा सकें जो उनके पिछड़ेपन में योग देती हैं। विचार यह है कि अपनाए जाने वाले नीतिगत निर्देशों और कार्यनीतियों से असंगत नीतियों में कमी आएगी और ऐसे क्षेत्रों की अन्तर्निहित शक्ति को समर्थन प्राप्त होगा और उपयुक्त संरचनाओं के एक विवेकपूर्ण मिश्रण के जरिए कम विकसित राज्यों और इलाकों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए समग्र परिवेश में सुधार होगा। तथापि, यह एक पुनरावृत्ति होगी कि सभी असंतुलन सकारात्मक उपायों के जरिए दूर नहीं किए जा सकते और कि कतिपय परिस्थितियों के अन्तर्गत सुरक्षा कड़ियों के रूप में उपचारात्मक उपाय भी काफी समय के लिए आवश्यक हो सकते हैं।

11.3.2 पिछड़े क्षेत्रों में अधिशासन को मजबूत बनाना एक महत्वपूर्ण उपाय है। इस उद्देश्य हेतु यह आवश्यक है कि पिछड़े क्षेत्रों में स्थानीय निकायों को सशक्त और सुदृढ़ बनाया जाए। कुछ राज्यों ने पहले ही विशेष बोर्ड और प्राधिकरण गठित किए हैं जैसे कि पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए क्षेत्र विकास बोर्ड, किन्तु इन बोर्डों और प्राधिकरणों के अनुभव से पता चलता है कि ये वांछित परिणाम प्राप्त करने में खासतौर से प्रभावी नहीं हुए हैं क्योंकि उनके क्षेत्राधिकार व कार्यों के बीच दोहरापन है जिसके परिणामस्वरूप दुर्लभ संसाधन एक ही किस्म की स्कीमों के लिए विभिन्न एजेन्सियों के बीच वितरित हो जाते हैं। इन परिस्थितियों में, आयोग की सिफारिश है कि क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करने के लिए प्रयास स्थानीय शासी एजेन्सियों के माध्यम से किए जाएं, जैसे कि जिला परिषद व अन्य, और न कि क्षेत्र विकास बोर्डों और प्राधिकरणों जैसे "विशेष प्रयोजन वाहनों" के माध्यम से।

11.3.3 प्रारंभ में, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम 2005(एन आर ई जी ए) देश के सर्वाधिक पिछड़े 200 जिलों में लागू किया गया था। चुने हुए जिलों में विषमता और बाधाओं के स्थानिक आयामों को देखते हुए, एन आर ई जी ए का कार्यान्वयन एक चुनौती है । आयोग ने, एन आर ई जी ए के कार्यान्वयन पर अपनी रिपोर्ट में इन बाधाओं को दूर करने के लिए अनेक उपायों की सिफारिश की है। इन उपायों को कार्यान्वित करने से इन पिछड़े जिलों में स्थितियों में निश्चित रूप से सुधार होगा किन्तु स्कीम के कार्यान्वयन का मानीटरन करने के लिए एक मजबूत प्रक्रिया की जरूरत है। आयोग, आन्तर-राज्य क्षेत्रीय असमानताओं में पर्याप्त कटौती प्राप्त करने में सफल रहने वाले राज्यों को (चाहे वे समृद्ध हों अथवा पिछड़े) पुरस्कृत करने की एक पद्धति कायम करने की भी सिफारिश करना चाहेगा।

11.4 पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण

11.4.1 हमारे देश में आर्थिक और सामाजिक विकास का विश्लेषण प्राय: राज्य स्तर पर किया जाता है। किन्तु राज्य सुपरिभाषित भौतिक, आर्थिक और सामाजिक विशेषताओं वाले जिलों और इलाकों को भी शामिल कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि राज्य स्तर पर विश्लेषण जरूरी नहीं है कि उसमें राज्य के अन्दर भिन्न-भिन्न विकास प्रवृत्तियों को शामिल कर लिया जाए। समय के दौरान, कुल मिलाकर राज्य की बजाए एक यूनिट के रूप में जिले पर बल दिए जाने की प्रवृत्ति कायम हुई है। तथापि, यह नोट करने की जरूरत है कि जिलों के अन्तर्गत भी काफी बड़े क्षेत्र और विविध विशेषताओं वाली आबादी सम्मिलित होती है।

11.4.2 "पिछड़े क्षेत्र" विनिर्धारित करने की दिशा में पहला प्रयास "पिछड़े क्षेत्रों की औद्योगिकरण संबंधी समिति (पाण्डे समिति) द्वारा किया गया था तथा इसकी सिफारिशों के आधार पर पिछड़े क्षेत्रों को अनेक श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया था, मरूस्थल क्षेत्र, सतत रूप से सूखा प्रभावित क्षेत्र, पर्वतीय क्षेत्र, सीमावर्ती क्षेत्र सहित, आबादी के अत्यधिक घनत्व और आय तथा रोजगार के न्यून स्तर वाले क्षेत्र बी. शिवरामन समिति ने जिसे पिछड़े क्षेत्रों के विकास के लिए एक कार्यनीति तय करने के लिए स्थापित किया गया था 1978 में सिफारिश की कि पिछड़े क्षेत्रों के विनिर्धारण के लिए ब्लाक एक प्राइमरी यूनिट होना चाहिए तथा ये सूखा प्रधान, मरूस्थल, जनजातीय, पर्वतीय, सतत रूप से बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में तथा लवणता द्वारा प्रभावित तटवर्ती क्षेत्रों में स्थित होने चाहिए। 1994-95 में, सी.एच. हनुमंत राव समिति ने विनिर्धारण हेतु एक नया मापदण्ड तैयार किया था। विनिर्धारण का यूनिट ब्लाक था।

11.4.3 ई ए एस सर्मा समिति ने, जिसे अवस्थापना विकास हेतु एक विशेष कार्रवाई योजना तैयार करने के लिए देश में 100 सर्वाधिक पिछड़े और निर्धनतम जिलों का विनिर्धारण करने का दायित्व सौंपा गया था, नवम्बर 1997 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। समिति ने निर्णय लिया कि मापदण्ड में मानव वंचना के प्रत्यक्ष संकेतक और साथ ही जीवन की कोटि से संबंधित अप्रत्यक्ष संकेतक सम्मिलित होने चाहिए। समिति ने सुझाव दिया कि विकास का सर्वाधिक प्रत्यक्ष संकेतक गरीबी है। वंचना के अन्य पहलुओं को भी शामिल किया गया। शिक्षा के लिए, कुल महिलाओं की संख्या में साक्षर महिलाओं के अनुपात का इस्तेमाल शैक्षिक वंचना के एक उपाय के रूप में किया गया । इस प्रक्रिया में सामाजिक और आर्थिक दोनों अवस्थापनाओं के संकेतकों को इस प्रक्रिया में सम्मिलित किया गया। उसके बाद, अन्य संकेतकों के सापेक्ष निर्धनता अनुपात को प्रदान किए गए भिन्न-भिन्न भार के साथ एक संवेदनशीलता विश्लेषण किया गया। तथापि, ई ए एस सर्मा समिति द्वारा सुझाई गई स्कीम को कार्यान्वित नहीं किया गया।

11.4.4 अभी हाल ही में, ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा उन पिछड़े जिलों का विनिर्धारण करने के वास्ते जहाँ हल्के कृषि मौसम के दौरान मजदूरी रोजगार सृजित करने के लिए तीव्र सार्वजनिक कार्यों का एक कार्यक्रम आयोजित करने की जरूरत है एक कार्य बल गठित किया गया था। कार्य दल द्वारा, जिसने अपनी रिपोर्ट मई 2003 में प्रस्तुत की थी, पिछड़े जिलों का चयन करने के अनेक प्राचलों पर विचार किया गया। समिति ने अन्ततः पिछड़ेपन के सूचक को, प्रत्येक को समान भार प्रदान करते हुए, तीन प्राचलों पर आधारित किया: (क) प्रति कृषि श्रमिक उत्पादन का मूल्य, (ख) कृषि मजदूरी दर और (ग) जिलों में अनु. जाति/अनु. जनजाति आबादी की प्रतिशतता। इन्हें जिला स्तर पर उपलब्ध सर्वाधिक जोरदार प्राचल पाया गया।

11.4.5 ऊपर वर्णित विभिन्न समितियों की सिफारिशों का उद्देश्य विशिष्ट नीतिगत उपायों हेतु पिछड़ेपन का विनिर्धारण करना था, जैसे कि और अधिक औद्योगिकरण तथा विशेष रूप से ध्यान देने योग्य अत्यंत गरीबी से पीड़ित क्षेत्रों का विनिर्धारण आदि। इसी प्रकार, कतिपय राज्य सरकारों ने अपने-अपने क्षेत्र में अधिक पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के लिए प्रयास किए हैं। इनमें उल्लेखनीय हैं: हैदराबाद, कर्नाटक विकास समिति (1981); प्रो0 वी.एम. दाण्डेकर की अध्यक्षता में क्षेत्रीय असंतुलन संबंधी महाराष्ट्र समिति (1983); और डा. आई.जी. पटेल की अध्यक्षता में पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु गुजरात समिति (1984)। इन समितियों ने भी, उन क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के वास्ते जिनपर सरकारी निवेश और विकास स्कीमों के लिए आवंटनों आदि की दृष्टि से प्राथमिकतापूर्ण ध्यान दिए जाने की जरूरत है राज्य के विभिन्न भागों में एन एस डी पी प्रति व्यक्ति से लेकर संबंधित पूरे राज्य में गैर-पारम्परिक व्यवसाय और सिंचाई कवरेज में कामगारों को सम्मिलित करने तक के व्यापक रूप से मापदण्ड का इस्तेमाल किया।

11.4.6 कुल मिलाकर, पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के लिए दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। स्पष्टतः, पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के लिए एक मानक मापदण्ड निर्धारित करने की जरूरत है। यह आवश्यक है कि साक्षरता और शिशु मृत्यु दरों जैसे मानव विकास संकेतकों को मापदण्ड के अन्दर शामिल किया जाना चाहिए। सभी बातों पर विचार करने के बाद, ई ए एस सर्मा समिति द्वारा अपनाए गए मापदण्ड की अपनाए जाने हेतु सिफारिश की जाती है जिसके अन्तर्गत मानव वंचना के प्रत्यक्ष संकेतकों और लोगों के जीवन की कोटि से संबंधित अप्रत्यक्ष संकेतकों को शामिल किया गया था। चूंकि निर्धनता विकास का सर्वाधिक प्रत्यक्ष संकेतक है, इसलिए इसे मापदण्ड में शामिल किया जाना चाहिए। साक्षरता दर, शिशु मृत्यु दर व सामाजिक और आर्थिक अवस्थापना के अन्य संकेतकों जैसे कारकों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

11.4.7 जहाँ तक पिछड़ेपन की परिभाषा करने के लिए भौगोलिक यूनिट का संबंध है, आयोग का मत है कि जैसा कि बी. शिवरमन और हनुमंत राव समितियों ने सिफारिश की है, विनिर्धारण के लिए ब्लाक एक यूनिट होना चाहिए। आयोग ने "एन आर ई जी ए" के प्रयोजनार्थ उस कार्यक्रम के संबंध में अपनी रिपोर्ट में आयोजना तथा कार्यान्वयन हेतु ब्लाक की यूनिट के रूप में पहले ही सिफारिश की है। इसका कारण यह है कि जिले के अन्तर्गत काफी बड़ा क्षेत्र और विकास के विभिन्न स्तरों पर विविध विशेषताओं वाली आबादी सम्मिलित है।

11.4.8 राज्य विशिष्ट ब्लाक स्तर सूचक तैयार करने के बाद उन्हें विकास स्कीमों के किसी निश्चित सैट के लिए लागू नहीं किया जाना चाहिए बल्कि सभी विकास पहलों के लिए और विशेष रूप से, राज्य और जिला स्तर योजना से आवंटनों के लिए, संसाधनों के आवंटन हेतु सामान्य मार्गनिर्देशों के रूप में लागू किया जाना चाहिए। इस प्रकार विनिर्धारित पिछड़े ब्लाकों को उपयुक्त केन्द्र प्रायोजित स्कीमों के अन्तर्गत आवंटनों के प्रयोजनार्थ भी स्वीकार किया जाना चाहिए। संक्षेप में, प्रत्येक राज्य के संदर्भ में पिछड़े के रूप में विनिर्धारित ब्लाकों पर प्रमुख रूप से ध्यान देने के माध्यम से क्षेत्रीय असंतुलनों को कम और न्यूनतम करने की कार्यनीति को योजना आयोग द्वारा औपचारिक रूप से स्वीकार किए जाने की जरूरत है।

11.5 विकास के लिए समग्र परिवेश

11.5.1 अपेक्षाकृत पिछड़े राज्यों में समाज सेवाओं और अवस्थापना में निवेश करने हेतु जरूरत निश्चित रूप से अधिक विकसित राज्यों की तुलना में पिछड़े राज्यों में अधिक है। सामान्य रूप से कहा जाए तो पिछड़े राज्यों में सरकारें वित्तीय रूप से कमजोर हैं, परिणामस्वरूप वे अधिक विकसित राज्यों के बराबर आने के लिए अपेक्षित विशाल निवेशों का वित्तपोषण करने के लिए पर्याप्त संसाधन जुटाने की स्थिति में नहीं हैं। सामान्यत: पिछड़े राज्य घटिया अवस्थापना की वजह से, जिसे संसाधनों के अभाव में उन्नत नहीं बनाया जा सकता पर्याप्त मात्रा में निजी निवेश आकर्षित करने में असमर्थ होते हैं। निष्कर्ष रूप से चुनौती इस कुचक्र को तोड़ने की है।

11.5.2 केन्द्रीय सरकार ने जनवरी 2007 में पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि (बी आर जी एफ)-कार्यक्रम शुरू किया है। मार्गनिर्देशों में यथा वर्णित स्कीम के उद्देश्यों की दृष्टि से, पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि का उद्देश्य विकास में क्षेत्रीय असंतुलनों को दूर करना है। इसके अन्तर्गत, विद्यमान विकास आप्रवाहों को विनिर्धारित जिलों में पूरक बनाने और उनके अभिसरण के लिए वित्तीय संसाधन प्रदान किए

जाएंगे जिससे कि : (क) स्थानीय अवस्थापना व अन्य विकास आवश्यकताओं में महत्वपूर्ण अन्तरों को पाटा जा सके, जिनकी पूर्ति विद्यमान आप्रवाहों के माध्यम से पर्याप्त रूप से नहीं हो रही है; (ख) इस उद्देश्य हेतु, पंचायत और म्युनिसिपल स्तर अधिशासन को और अधिक उपयुक्त क्षमता निर्माण के साथ मजबूत बनाना, जिससे कि स्थानीय रूप से अनुभव की जाने वाली जरूरतों को परिलक्षित करने के लिए भागीदारीपूर्ण योजना, कार्यान्वयन और मानीटरन को सुकर बनाया जा सके; (ग) स्थानीय निकायों को अपनी योजनाओं के निर्माण, कार्यान्वयन और मानीटरन हेतु व्यावसायिक सहायता प्रदान करना; (घ) पंचायतों को सौंपे गए महत्वपूर्ण कार्यों के निष्पादन और कार्यान्वयन में सुधार तथा अपर्याप्त स्थानीय क्षमता के कारण सम्भावित कार्यकुशलता और इक्विटी हानियों का मुकाबला करना।[44] निधियों के अबद्ध अंश के संबंध में भागीदारी पद्धति है: (i) प्रत्येक जिले को प्रतिवर्ष 10 करोड़ रूपए की निश्चित राशि की प्राप्ति; और (ii) शेष भाग, सभी पिछड़े जिलों के भूगोल/कुल आबादी में जिले के भौगोलिक हिस्से और आबादी के अनुसार, "50/50 आधार " पर वितरित किया जाएगा। बी आर जी एफ के लिए लक्ष्य क्षेत्रों के विनिर्धारण के लिए मानव विकास संकेतकों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। बी आर जी एफ से उपायों के वित्त पोषण में प्रमुख उद्देश्य, स्थानीय क्षेत्र विकास में न्यूनतम मानकीय अन्तरों को समाप्त करना, भौतिक अवस्थापना, स्वास्थ्य और शिक्षा तथा भू-उत्पादकता में सामाजिक उपलब्धियाँ होना चाहिए।

11.5.3 एक ऐसे कार्यक्रम में राज्य अवस्थापना का निर्माण समर्थनकारी बनाने के लिए अतिरिक्त निधियां उपलब्ध कराई जानी चाहिए जो व्यवहार्यता अन्तराल निधियन प्रदान करने के लिए एक अनुदान सुविधा होगी जिसके तहत कम विकसित राज्यों और विकसित राज्यों के पिछड़े क्षेत्रों में अन्तर-जिला स्तर पर प्रमुख अवस्थापना परियोजनाओं के लिए संसाधनों का उपयोग किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत उन परियोजनाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए जिन्हें अन्यथा वित्तीय रूप से व्यवहार्य नहीं समझा जा सकता किन्तु जो पिछड़ापन दूर करने के लिए जरूरी हैं। इस स्कीम के अन्तर्गत सहायता की मात्रा राज्यों को इस ढंग से उपलब्ध कराई जानी चाहिए जो पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या के अनुपात में हो।

11.5.4 तथापि, कुल मिलाकर ऐसे निधियन के लिए दृष्टिकोण परिणामोन्मुखी होना चाहिए। ऐसे मामलों में धन की व्यवस्था वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए एक तंत्र के रूप में की जानी चाहिए, न कि खुद ही अन्त के रूप में, जैसा कि विगत में किया गया है। कार्यनीति, मानव और अवस्थापना विकास के स्वीकार्य न्यूनतम मानदण्डों की परिभाषा इस प्रकार से करने की होनी

[44] भारत सरकार (2007), पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि: कार्यक्रम मार्गनिर्देश, पंचायती राज मंत्रालय, भारत सरकार, पृ.3

चाहिए जिसे देश में प्रत्येक ब्लॉक द्वारा प्राप्त किया जाए तथा नीतियां, पहल और वित्त पोषण के ढंग अन्तरों को पाटने तथा इस प्रकार परिभाषित मानक प्राप्त करने के विचार द्वारा मार्गदर्शित होनी चाहिए।

11.5.5 इसी संदर्भ में, एन आर ई जी ए, सर्व शिक्षा अभियान और मध्याह्न भोजन स्कीम जैसी पहलें सराहनीय हैं क्योंकि ये मानकीय दृष्टिकोण के उदाहरण हैं जिन पर ऊपर पैराग्राफ 11.4.5 में चर्चा की गई है। ऐसी स्कीमों के अभिसरणीय प्रबंधन की जरूरत है जिससे पिछड़े क्षेत्रों के लिए इक्विटी उन्मुख प्रवाह सुकर होगें। ऐसा, जिला योजना समितियों द्वारा जिला-स्तर योजनाएं तैयार करके किया जाना चाहिए जिनमें सत्यापन योग्य परिणाम भी स्पष्ट रूप में दर्शाए जाएं।

11.6 सिफारिशें

क– मानव विकास के संकेतकों के आधार पर निर्धनता, साक्षरता और शिशु मृत्यु दरों सहित, सामाजिक और आर्थिक अवस्थापना के सूचकों के साथ–साथ, पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के लिए (एक यूनिट के रूप में ब्लाक के साथ) एक मिश्रित मापदण्ड योजना आयोग द्वारा 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए तैयार किया जाना चाहिए।

ख– केन्द्रीय और राज्य सरकारों को अधिक पिछड़े क्षेत्रों को लक्षित करते हुए निधियों के ब्लाक–वार अन्तरण हेतु एक सूत्र अपनाना चाहिए।

ग– राज्य के अन्दर अधिक पिछड़े क्षेत्रों को विशेष रूप से सुदृढ़ करने के लिए अधिशासन जरूरतों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। "विशेष प्रयोजन वाहनों," जैसे कि पिछड़ा क्षेत्र विकास बोर्ड और प्राधिकरणों की आन्तर–राज्य विषमताओं को कम करने में, भूमिका की समीक्षा करने की जरूरत है। स्थानीय शासनों को सुदृढ़ बनाने और उन्हें उत्तरदायी तथा जवाबदेह बनाना परामर्श योग्य है।

घ– आन्तर–राज्य विषमताओं में पर्याप्त रूप से कमी प्राप्त करने वाले राज्यों को (विकसित राज्यों सहित) पुरस्कृत करने की एक पद्धति लागू की जानी चाहिए।

ड.– कम विकसित राज्यों और ऐसे राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों में अन्तर–जिला स्तर पर प्रमुख अवस्थापना का निर्माण करने के लिए अतिरिक्त निधियां उपलब्ध कराए जाने की जरूरत है। सहायता की मात्रा ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या के अनुपात में होनी चाहिए।

च– ऐसे सभी निधियन के लिए दृष्टिकोण परिणामोन्मुखी होना चाहिए। कार्यनीति, मानव और स्थापना विकास के स्वीकार्य न्यूनतम मानदण्डों की परिभाषा इस प्रकार से करने की होनी चाहिए जिसे देश में प्रत्येक ब्लाक द्वारा प्राप्त किया जाए तथा नीतियां, पहल और वित्त पोषण के ढंग अन्तरों को पाटने तथा इस प्रकार परिभाषित मानक प्राप्त करने के विचार द्वारा मार्गदर्शित होनी चाहिए।

पूर्वोत्तर में संघर्ष

12

12.1 प्रस्तावना

12.1.1 संविधान की शुरूआत में, नागालेण्ड, मेघालय और मिजोरम के वर्तमान राज्य, असम का एक-एक जिले थे जबकि अरूणाचल प्रदेश (तत्कालीन "नेफा") में असम के राज्यपाल द्वारा प्रशासित अनेक "सीमावर्ती क्षेत्र" सम्मिलित थे और इसलिए उन्हें उस राज्य का हिस्सा समझा जाता था। मणिपुर और त्रिपुरा राज्य शाही राज्य थे जो 1948 में भारत में विलय के बाद भाग "ग" राज्य बन गए जो संघ राज्य क्षेत्र थे। पूर्वोत्तर क्षेत्र की प्रशासनिक पद्धति और रहन-सहन के ढंग में देश के शेष क्षेत्रों में महत्वपूर्ण अन्तर को समझते हुए, संविधान निर्माताओं ने, इस क्षेत्र में जनजातीय क्षेत्रों के लिए, उन्हें संविधान की छठी अनुसूची के अन्तर्गत स्वायत्त जिला परिषदों के माध्यम से, उच्च मात्रा में स्वःशासन की सुविधा प्रदान करके, विशेष संस्थागत व्यवस्था की। आलोचक भी इस बात से सहमत है कि छठी अनुसूची से जनजातीय आकांक्षाओं की कुछ सीमा तक सन्तुष्टि हुई है और इस प्रकार अनेक संघर्षों को रोक दिया गया। इसी प्रकार, नागालेण्ड (1963), मेघालय(1972) राज्यों के निर्माण से पहले संघ राज्य क्षेत्र (1972) का और बाद में अरूणाचल प्रदेश और मिजोरम को राज्य का दर्जा (1987) प्रदान करके तथा मणिपुर व त्रिपुरा को 1972 में संघ राज्य क्षेत्रों से राज्यों के रूप में दर्जा बढ़ाकर क्षेत्र के धीरे-धीरे प्रशासनिक पुनर्गठन से, अधिक सशक्तीकरण के जरिए क्षेत्र में संघर्षों को कम करने पर दिए गए पर्याप्त ध्यान का सत्यापन होता है। 1972 में क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पुनर्गठन के बाद, एक क्षेत्रीय निकाय, पूर्वोत्तर परिषद (एन ई सी) की स्थापना, आन्तर-क्षेत्र असमानताओं से बचने के लिए क्षेत्र के एकीकृत विकास और क्षेत्रीय आयोजना और अन्तर-राज्य समन्वयन हेतु एक मंच उपलब्ध कराकर की गई । भारत सरकार द्वारा घोषित "पूर्व की ओर देखने" की नीति में नदी को रेल, सड़क और संचार संयोजनों के पार म्यॉमार और थाइलेण्ड जेसे निकटवर्ती देशों से जुड़ी उभरती और एकीकृत आर्थिक पद्धति के केन्द्र के रूप में, परिकल्पना की गई है। नीति के अन्तर्गत क्षेत्र के दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ विगत ऐतिहासिक संबंधों और इसके समृद्ध संसाधनों (पनविद्युत, गैस, विद्युत इत्यादि द्वारा इस क्षेत्र की विशाल क्षमता को वास्तविकता में बदलने की महत्वपूर्ण भौगोलिक स्थिति का लाभ उठाने का प्रयास किया गया है। तथापि, इसके लिए न केवल अवस्थापना संबंधी संयोजनों की दिशा में बल्कि सुरक्षा स्थिति में एक बड़ा सुधार करने के लिए भी पर्याप्त रूप में प्रयास करने होंगे।

12.1.2 तथापि, 50 वर्ष से भी अधिक समय के बाद भी, पूर्वोत्तर में लगातार हिंसक संघर्षों की कड़ी कायम है जो प्रमुख रूप से विद्रोहियों द्वारा की जा रही है जिनकी मांग पूर्ण स्वायत्तता से लेकर और अधिक राजनीतिक प्रभुसत्ता से संबंधित हैं। अप्रत्यक्ष रूप से, विद्रोही आन्दोलनों के फलस्वरूप अनेक सम्बद्ध संघर्ष पैदा हो गए हैं जिनके बारे में इस अध्याय में उल्लेख किया गया है। बगावत ने हजारों व्यक्तियों की जान ली है जिनमें सुरक्षा बल और नागरिक सभी शामिल हैं जैसाकि नीचे दिए गए आंकड़ों से स्पष्ट है:

तालिका 12.1 पूर्वोत्तर में हिंसा की घटनाएं

शीर्ष	2001	2002	2003	2004	2005	2006
हिंसा की घटनाएं	1,335	1,312	1,332	1,234	1,332	1,366
मारे गए उग्रवादी	572	571	523	404	405	395
मारे गए सुरक्षा कार्मिक	175	147	90	110	70	76
मारे गए नागरिक	660	454	494	414	393	309

स्त्रोत- गृह मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट, 2006-07

12.1.3 बगावत की जड़ें: पूर्वोत्तर में बगावत की जड़ें इसके भूगोल, इतिहास और अनेक समाजार्थिक कारणों में छिपी हैं। क्षेत्र की 98 प्रतिशत सीमाएं अन्तर्राष्ट्रीय सीमाएं हैं, जो शेष भारत के साथ क्षेत्र की कठिन भौगोलिक संयोजकता का संकेत है। यद्यपि क्षेत्र की आबादी का हिस्सा जो लगभग 3.90 करोड़ है, राष्ट्रीय आबादी का मात्र 3 प्रतिशत है, तथापि 1951-2001 के बीच इसकी वृद्धि दर 200 प्रतिशत से अधिक रही है जिससे आजीविकाओं पर बड़ा बोझ पड़ा है और भू-विखण्डन को बढ़ावा दिया है। यद्यपि सामान्यत: असम को छोड़कर, पूरे क्षेत्र की आबादी में जनजातियों की प्रतिशतता 27 है, यह शेष राज्यों के संबंध में बढ़कर 58 प्रतिशत हो गई। तथापि, प्रतिशतता से क्षेत्र की जनजातीय आबादी में व्यापक विविधता की पर्याप्त रूप से झलक नहीं मिलती, जहाँ 125 से अधिक भिन्न-भिन्न जनजातीय समूह हैं- एक ऐसी विविधता जो झारखण्ड और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में भी देखने में नहीं आती है जहाँ जनजातियों की आबादी काफी अधिक है।

12.2 संघर्षों की प्रकृति

12.2.1 क्षेत्र में संघर्ष, अलगाव के लिए बगावत से लेकर स्वायत्तता के लिए बगावत तक फैले हैं जिनमें "प्रायोजित आतंकवाद" से जातिगत संघर्षों से लेकर, सीमा पार से और साथ ही अन्य राज्यों से

[45] अर्चना उपाध्याय, "टेरोरिज्म इन दि नार्थ ईस्ट लिंकेजिज एण्ड इम्प्लीकेशन्स", इकोनामिक एण्ड पालिटिकल वीकली, 2 दिसम्बर, 2006

प्रवासियों के सतत आप्रवाह के परिणामस्वरूप उत्पन्न संघर्ष सम्मिलित हैं।[45] क्षेत्रों में संघर्षों को मुख्यतः निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजित किया जा सकता है:

क- "राष्ट्रीय" संघर्षः एक पृथक राष्ट्र के रूप में एक भिन्न अलग "गृह भूमि" की अवधारणा तथा इसके समर्थकों द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयास।

ख- जातिगत संघर्षः राजनीतिक और सांस्कृतिक रूप से प्रभावशाली जनजातीय समूह के विरूद्ध संख्या में कम और कम प्रभुत्व वाले जनजातीय समूहों द्वारा जोर दिया जाना। असम में यह स्थानीय और प्रवासी समुदायों के बीच तनाव का रूप भी लेता है।

ग- उप-क्षेत्रीय संघर्ष : ऐसे आन्दोलनों वाले, जिनमें उप-क्षेत्रीय आकांक्षाओं को स्वीकार किया जाना शामिल है और प्रायः राज्य सरकारों अथवा स्वायत्त परिषदों के साथ सीधे ही संघर्षरत रहते हैं।

12.2.2 इसके अलावा, हाल ही में आपराधिक जोश ने संघर्ष में एक भिन्न प्रकार की विशेषताएं प्राप्त कर ली हैं जिनका उद्देश्य महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधनों पर अपना नियंत्रण मजबूत करना तथा उनका विस्तार करना है।[46] यह ठीक ही कहा गया है कि :

> *पूर्वोत्तर में संघर्ष की कुछ विशिष्ट विशेषताएं हैं वे विषम हैं; वे अस्पष्ट हैं, जिससे मित्र और शत्रु के बीच भेद करना कठिन होता है; वे अपारम्परिक विधियों से जाने जाते हैं; जिनमें राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक साधनों और विधियों का इस्तेमाल किया जाता है; तथा संघर्ष अन्ततः बढकर संघर्षों की एक लम्बी लड़ाई का रूप ले लेते हैं।[47] राज्य प्रशासन द्वारा सुरक्षा प्रदान करने में असफल रहने के कारण भी क्षेत्र में हिंसा पैदा होती है। इसके परिणामस्वरूप सुरक्षा प्रदान करने के वास्ते जातिगत सैनिकों के वैकल्पिक बलों का निर्माण हुआ है। इसकी नस्लीय संरचना के परिप्रेक्ष्य में, एक निजी जातिगत सेना को सुरक्षा का एक अधिक विश्वसनीय सुरक्षा प्रदाता समझा जाता है जबकि उन्हें अन्य जातिगत समूह से खतरा हो जो अपनी ही सेना से सज्जित हों। यह सामान्यतः एक नस्लीय ध्रुवीयक स्थिति है जिसमें राज्य प्रशासन सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ रहता है और सेना की कार्रवाई को पक्षपातपूर्ण समझा जाता है।[48]*

[46] अर्चना उपाध्याय, टेरोरिज्म इन दि नार्थ ईस्ट

[47] -वही-

[48] -वही-

12.3 राज्य विशिष्ट संघर्ष स्थिति

12.3.1 यद्यपि कुल मिलाकर क्षेत्र में अनेक प्रकार के संघर्ष हैं तथापि यह नोट करने योग्य है कि समस्या कतिपय सु-परिभाषित क्षेत्रों में स्थानिक रूप से गम्भीर है। क्षेत्र में विद्यमान संघर्षों की "किस्म", संक्षिप्त में "क्षेत्र के संघर्ष चित्र" से स्पष्ट है।

12.3.2 *अरूणाचल प्रदेश:* राज्य, एन एस सी एन के साथ युद्ध विराम के बाद, जो "तिरप जिले" में सक्रिय था, शान्त रहा है। 1950 के दशक के दौरान (एक विख्यात मानवशास्त्री) वेरियर एलविन के मार्गदर्शन के तहत शुरू की गई नीतियों के परिणामस्वरूप क्षेत्र में काफी तालमेल पैदा हुआ है तथा हिन्दी "लोक भाषा" के रूप में उभरी है। बड़ी संख्या में राज्य में बंगलादेश से अपेक्षाकृत अधिक उद्यमी "चकमा" विस्थापितों को बसाए जाने से वहाँ कुछ अशान्ति आई जो प्रतीत होता है कि अब थम गई है। बढ़ती आय विषमताएं तथा रोजगार अवसरों में कमी संघर्षो का एक सशक्त स्त्रोत हो सकता है।

12.3.3 *असम:* राज्य में बड़ी संख्या में जातिगत संघर्ष विद्यमान हैं अर्थात "विदेशियों की घुसपेंठ" के विरूद्ध आन्दोलन, उन्हें निष्कासित न करने की सरकार की कल्पित असमर्थता; धार्मिक/भाषाई समूहों के बीच समय-समय पर तनाव और जनजातीय समुदायो द्वारा संघर्षों में बढ़ोत्तरी, जो स्थानीय स्वायत्तता आदि की मांग करते हैं।

12.3.3.1 *राष्ट्रीय/उग्रवादी संघर्ष :* अविभाजित असम में सबसे लम्बी अवधि तक बगावत का इतिहास रहा है। नागा और मिजो बगावत सबसे पहले भड़की। राज्य के दो जिले सर्वाधिक प्रभावित थे। वर्तमान में भी खण्डित असम में यूनाइटिड लिब्रेशन फ्रन्ट आफ असम (उल्फा) के नेतृत्व में अनेक उग्रवादी संगठन हैं, यह भी कहा जाता है कि "उल्फा" के काडरों में युवाओं के शामिल होने के अनेक योगकर्ता कारक हैं: जैसे कि बेरोजगारी, सरकारी तंत्र में भ्रष्टाचार, गैर-कानूनी प्रवासियों की घुसपेंठ, व्यवसाय क्षेत्रक में गैर-असमी प्रभुत्व, केन्द्र द्वारा असम के प्राकृतिक संसाधनों के दोहन का बोध और सुरक्षा बलों द्वारा कथित मानवाधिकार उल्लंघन। यह 1980 के दशक से सक्रिय हो गया और 1990 के दशक के अन्त तक इसे इस बोध के कारण कि "बगावत के कारण असम में अलगाववाद" बढ़ रहा है और कि यदि असमियों ने हिंसक आन्दोलन-रोधी शुरू किया होता तो स्थिति भिन्न होती। आम असमी ने यह भी समझा कि "विदेशियों के निष्कासन" के लिए छः वर्ष तक मुख्यतः अहिंसक आन्दोलन को बहुत कम "सफलता" मिली। 1990 के दशक में "उल्फा" काडरों के बड़े पैमाने पर अपराधीकरण से आम समर्थन में तेजी से, विशेष रूप से शहरी मध्यम श्रेणी के बीच, कमी आई। इसके ह्रास का एक अन्य कारक "उल्फा" के ज्ञात संबंध कुछ

विदेशी एजेन्सियों के साथ थे जिनकी रूचि राज्य की विशिष्ट संस्कृति को समाप्त करने में थी तथा वे देश में असंतोष पैदा कर रहे थे। यह भी प्रतीत होता है कि सरकार के साथ अनेक असफल वार्ताओं के दौरान "उल्फा" द्वारा बार-बार मुकरना था, जिसने इसकी विश्वसनीय को प्रभावित किया। भूटानी सेना द्वारा कार्रवाई करने के बाद "उल्फा" ने अपनी पिछली शक्ति पुन: वापस प्राप्त नहीं की है यद्यपि संगठन अपहरणों, बम्ब विस्फोटों तथा प्रवासी श्रमिकों की चुनिन्दा हत्याओं के जरिए अपनी उपस्थिति को बनाए रखने का प्रयास कर रहा है। इसके अलावा, लगभग सभी जनजातीय समुदायों के कोई न कोई सशस्त्र संगठन हैं जिनका कथित उद्देश्य अपने हितों की सुरक्षा करना है।

12.3.3.2 *जातीय संघर्ष:* राज्य की प्रमुख जातिगत संघर्ष "विदेशियों" अर्थात सीमा पार से (अर्थात बंगलादेश) से असमियों से पर्याप्त रूप से भिन्न भाषा और संस्कृति वाले लोगों की कल्पित घुसपेंठ के खिलाफ शिकायत का होना है। 1979-85 के "विदेशियों" के "आन्दोलन" के कारण असम एक प्रमुख ध्यानाकर्षण केन्द्र बना गया। समस्या का इतिहास विगत शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों के इतिहास से देखा जा सकता है जबकि पूर्वी बंगाल के अधिक आबादी वाले निकटवर्ती जिलों से भूमिहीनों ने उर्वरक और उस समय पर्याप्त रूप से परती पडी ब्रह्मापुत्र घाटी में आना शुरू कर दिया। 1950 और 1960 के दशक में पूर्व पाकिस्तान में साम्प्रदायिक दंगों के बाद उस देश से अल्पसंख्यक समुदाय के उत्प्रवास की और लहर आई। उसके बाद भी, बढ़ती बेरोजगारी, भूमि के विखण्डन और बंगलादेश की आजादी के लिए लड़ाई ने बहुसंख्यक समुदाय से भी नई घुसपेंठ को बढ़ावा दिया। सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से "परेशान" हो जाने के भय, असमियों के बीच पैदा होती नाराजगी स्वतंत्र भारत के सर्वाधिक लम्बे और तीव्र आन्दोलनों के रूप में उग्र हो गया। यद्यपि केन्द्रीय और राज्य सरकारों दोनों ने ही गैर-कानूनी प्रवासियों (विदेशियों) का पता लगाने और निष्कासन की प्रक्रिया को प्राथमिकता प्रदान की है, तथापि मुद्दा सुलग रहा है जबकि "मूल" निवासियों का दावा है कि "वोट बैंक राजनीति" को कारण "घुसपेंठियों" को निष्कासित करने के लिए कारगर कदम नहीं उठाए जा रहे हैं तथा "विदेशियों" के धार्मिक भाषाई प्रोफाइल के समर्थकों का दावा है कि उन्हें उत्पीडित किया जा रहा है और अपनी भारतीय नागरिकता "सिद्ध" करने के लिए उन पर अनुचित रूप से दबाव डाला जा रहा है।

12.3.4 *मणिपुर:* फिलहाल यह "सर्वाधिक बगावत पीड़ित" राज्य है जहाँ राज्य में भिन्न-भिन्न जनजातियों/समुदाय का प्रतिनिधित्व करने वाले लगभग पन्द्रह हिंसक संगठन सक्रिय हैं और ये विशेष रूप से घाटी में स्वयं -पोषी गतिविधियों में लिप्त हैं। राज्य के दौरे के दौरान आयोग को उन अनेक घटनाओं के बारे में बताया गया जबकि विकास निधियों का इस्तेमाल विभिन्न गैर-कानूनी और विध्वंसक गतिविधियों के लिए किया गया।

12.3.4.1 एक-चौथाई मणिपुर (जो घाटी है) इसकी 70 % से अधिक आबादी के लिए निवास स्थान है जो प्रमुख रूप से सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट "मेइतई" समुदाय से है। राज्य पर "मेइतई" शासकों द्वारा शाही रूप से शासन किया गया था (बाद में शाही राज्य)। आजादी के बाद समाजार्थिक क्षेत्रों में "मेइतई" प्रभाव में कमी आ गई तथा जनजातीय लोग अग्रणी बन गए जिसका कारण आरक्षणों का होना था। राज्य के भारतीय संघ के विलय के बारे में भी "मेइतई" सोसायटी के एक वर्ग में नाराजगी थी-जिस नाराजगी की वजह से 1960 के दशक से मेइतई विद्रोह उत्पन्न हुआ। जनजातीय लोगों की संख्या राज्य की आबादी में लगभग 30 प्रतिशत है तथा वे मुख्यतः नागा, कुकी, चिन और मिजो समूहों से संबंधित हैं। बगावत, नागालेण्ड और मिजोरम से उस राज्य में भी फैल गई। "मेइतई लोगों" से जनजातियों की "सांस्कृतिक दूरी" और भी विस्तृत हो गई जबकि 1930 के दशक तक लगभग सभी जनजातियाँ "इसाई धर्म" के तहत आ गईं। जमीन और सीमाओं के संबंध में जनजातियों के बीच काफी तनाव है तथा नागाओं और कुकियों के बीच हिंसा ने 1990 के दशक के दौरान 2000 से अधिक लोगों की जान ली।

12.3.4.2 केन्द्रीय सरकार और नेशनल सोशलिस्ट काउन्सिल आफ नागालेण्ड (एन एस सी एन) के बीच युद्ध विराम से नागा क्षेत्रों में हिंसा में कमी आई है किन्तु एक तनाव पैदा हो गया है क्योंकि एन एस सी एन विशाल "नागालिम" पर जोर दे रहा है जिसमें मणिपुर के चार जिले सम्मिलित होंगे। इसका मेइतई लोगों द्वारा जबरदस्त विरोध किया जा रहा है तथा इसकी वजह से 2001 में अत्यंत हिंसक आन्दोलन हुआ। "मणिपुर की क्षेत्रीय अखण्डता" को सुरक्षित रखने के आश्वासन से इस मुद्दे पर कुछ शान्ति आई है। राज्य के दक्षिणी भागों में "हमार" "पेइते" व अन्य जनजातियां हिंसक संघर्ष कर रही हैं जिसका आंशिक कारण स्थानीय प्राधान्य और आंशिक कारण संघ राज्य क्षेत्र में "झूमी" नामक रूप में उनके अपने अन्तः क्षेत्र का होना है। पर्वतीय क्षेत्रों में जिला परिषदें 1985 से गैर-कार्यरत हैं क्योंकि जनजातीय समुदाय इन परिषदों को छठी अनुसूची के तहत लाना चाहते हैं। इस मांग का घाटी में रहने वाले लोगों द्वारा जबरदस्त विरोध किया जा रहा है। संक्षेप में, मणिपुर अनेक हिंसक संघर्षों का एक सक्रिय क्षेत्र बना हुआ है।

12.3.4.3 बताया गया है कि आजकल मिलिटेंट संगठन वस्तुतः मणिपुर के बहुत से जिलों में एक समानान्तर सरकार चला रहे हैं और ठेके देने, आर्डर सप्लाई करने तथा सरकारी सेवा में नियुक्तियों में राज्य सरकार के निर्णयों को प्रभावित करने में समर्थ हैं। यह भी बताया गया है कि मिलिटेंट संगठन बड़े पैमाने पर वसूली करते हैं और "न्यायालय" आयोजित करते हैं तथा अपने प्रभाव वाले क्षेत्र में न्याय करते हैं। ऐसी स्थिति में लोगों का संवैधानिक शासन तंत्र से विश्वास उठ जाता है।

12.3.4.4 क्योंकि राज्य में कोई खास औद्योगिक विकास नहीं हुआ है इसलिए कोई प्रमुख उद्योग अथवा विनिर्माण इकाइयां नहीं हैं जो शिक्षित युवाओं को रोजगार उपलब्ध करा सकें। सबसे बड़ा नियोक्ता राज्य है, न केवल मणिपुर में बल्कि पूरे क्षेत्र में, इसलिए शिक्षित युवा दिल्ली, मुम्बई, पुणे और बेंगलुर आदि जैसे दूर-दूर स्थानों पर रोजगार ढूंढते हैं।

12.3.5 *मेघालय:* सौभाग्यवश राज्य हिंसा की तीव्रता से मुक्त है जो क्षेत्र के बहुत से अन्य भागों में विद्यमान है। "बाहरी लोगों", विशेष रूप से बंगाली भाषी भाषाई अल्पसंख्यकों के विरूद्ध हिंसा को छोड़कर, राज्य में कोई बड़ी समस्या नहीं है। निम्नलिखित कुछ भावी चिन्ता के क्षेत्र हैं

क- राज्य सरकार और छठी अनुसूची जिला परिषदों के बीच बढ़ता हित संघर्ष - पूरा राज्य इस सूची के तहत है।

ख- बढ़ती अन्तर-जातीय प्रतिद्वन्दिता

ग- बंगलादेश से, विशेष रूप से गारो पहाड़ियों से घुसपेंठ के बारे में उभरता तनाव।

12.3.6 *मिजोरम:* अपने हिंसक बगावत के इतिहास और बाद में इसमें शान्ति कायम होना, सभी अन्य हिंसा प्रभावित राज्यों के लिए एक उदाहरण हैं। 1986 में केन्द्रीय सरकार तथा मिजो राष्ट्रीय फ्रन्ट के बीच "समझौते" और इससे अगले इसे वर्ष राज्य का दर्जा प्रदान किए जाने के बाद, मिजोरम में पूर्ण शान्ति और सामन्जस्य कायम है। राज्य को, विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और कृषि को लाभप्रद बनाने में सराहनीय कार्य के लिए जाना जाता है। प्रमुख रूप से एक समतावादी सोसायटी के बीच बढ़ती आय और परिसम्पत्ति विषमताएं तथा पहचान और अनु. जनजातियों के रूप में आरक्षण संबंधी मुद्दों के कारण राज्य सरकार के साथ तीन छोटी गैर-मिजो जिला परिषदों का असंतोष संघर्ष के केवल सम्भावित क्षेत्र है।

12.3.7 *नागालेण्ड:* एन एस सी एन के प्रभावशाली "मुइवाह-स्वु" के साथ युद्ध-विराम के बाद राज्य वस्तुत: प्रत्यक्ष हिंसक असंतोष से मुक्त है, यद्यपि जैसाकि पहले नोट किया गया है, यह बगावत का मूल "ज्वलंत स्थल" है। अल्पसंख्यक "खापलांग" गुट भी, जो युद्ध-विराम से सहमत नहीं है, कुल मिलाकर शांत है। कुछेक भावी चिन्ता के विषय हैं:

क- अन्तिम राजनीतिक निपटारे का लम्बित मुद्दा, जिसमें "विशाल नागालेण्ड" अथवा "नागालिम" की मांग सहित, जो, जैसा कि पहले नोट किया गया है, निकटवर्ती क्षेत्रों में, विशेष रूप से मणिपुर में, अशान्ति पैदा कर रहा है।

ख- राज्य के सीमित संसाधनों के लिए बढ़ती प्रतियोगिता तथा शिक्षित युवाओं की बेरोजगारी की समस्या।

12.3.8 *सिक्किम:* राज्य ने विकेन्द्रीकृत आयोजना के माध्यम से न केवल विकास के क्षेत्र में उत्तम कार्य किया है बल्कि विभिन्न जातिगत समूहों (मुख्यत: लेपचाओं, भूतियाओं और नेपालियों) के बीच संवैधानिक अधिदेश में संतुलन कायम करके बड़े संघर्ष होने से भी बचाव किया है।

12.3.9 *त्रिपुरा:* राज्य के जनांकिकीय प्रोफाइल में 1947 के बाद से बदलाव आया जबकि नए उभरे पूर्व पाकिस्तान से बड़े पैमाने पर उत्प्रवास के कारण, मुख्य रूप से एक जनजातीय क्षेत्र बंगाली भाषी मैदानी लोगों की बहुलता वाला हो गया। जनजातियों को बहुत कम कीमतों पर उनकी कृषि भूमियों से वंचित कर दिया गया तथा वनों में खदेड़ दिया गया। परिणामी तनाव के कारण बड़ी हिंसा हुई और बड़े पैमाने पर आतंक फैला जबकि प्रभावशाली त्रिपुरा नेशनल वालन्टीयर्स (टी एन वी) पूर्वोत्तर में एक सर्वाधिक हिंसक उग्रवादी गुट के रूप में उभरा। मिजोरम के साथ निकटता के कारण वहाँ बगावत का "पार्श्व प्रभाव" राज्य पर पड़ा। तथापि, "गैर अनुसूचित क्षेत्रों" में प्रभावी विकेन्द्रीकरण, जनजातीय क्षेत्रों को एक स्वायत्त "छठी अनुसूची" परिषद के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत लाने, सफल भू-सुधारों और कृषि के सुव्यवस्थित प्रोन्नयन से विवाद कमी में काफी योगदान मिला। जनजातीय समूहों (विशेष रूप से जमातियों) की बदलती धार्मिक संरचना के कारण नए तनाव पैदा हो रहे हैं तथा अधिक अन्तर-जातीय संघर्षों की आशंका है। यद्यपि, गैर-जनजातीय संघर्षों में कमी आ रही है, तथापि वनों का "उपयोग करने की आजादी" पर प्रतिबन्धों और जिले के विकास में उनकी साधारण भागीदारी के कारण जनजातियों के बीच नाराजगी में वृद्धि हो रही है।

12.3.9.1 राज्य द्वारा विगत दशक के दौरान की गई प्रभावशाली उन्नति के बावजूद, तथ्य यह है कि वस्तुओं के सीमा-पार लाने ले जाने पर वस्तुत: रोक है, तथा त्रिपुरा से बंगलादेश के लिए सेवाओं के कारण राज्य के आर्थिक विकास की गति को बाधा पहुंची है। विदेश मंत्रालय को, द्विपक्षीय बातचीत के दौरान, बंगलादेश के साथ अधिक आर्थिक सहयोग के लिए मामला उठाना चाहिए।

12.4 संघर्ष समाधान की विधियां

12.4.1 पूर्वोत्तर में संघर्ष समाधान की निम्नलिखित विधियां रही हैं : (i) सुरक्षा बल/"पुलिस कार्रवाई", (ii) राज्य का दर्जा प्रदान, छठी अनुसूची, मणिपुर के मामले में संविधान का अनुच्छेद 371-ग और असम में "जनजातीय विशिष्ट समझौतों आदि के जरिए, और अधिक स्थानीय स्वायत्ता ; (iii) विद्रोही गुटों के साथ बातचीत; और (iv) विकास कार्यकलाप, विशेष आर्थिक पैकेज सहित। इनमें से बहुत सी विधियाँ अल्पावधि में सफल सिद्ध हुई हैं। तथापि, इनमें से कुछ उपायों के अनजाने में, हानिकर प्रभाव भी हुए हैं।

कतिपय क्षेत्रों में विवादों के "समाधान के ढंग के कारण अन्य स्थानों पर नई समस्याएं पैदा हुई हैं तथा एक सतत मांग चक्र कायम हुआ है। तथापि, इसमें कोई सन्देह नहीं है कि पूर्वोत्तर में संघर्ष रोकथाम और समाधान के लिए, विगत की सफलताओं और असफलताओं के अनुभव से मजबूती पाकर विभिन्न दृष्टिकोणों के एक विवेकपूर्ण मिश्रण की जरूरत होगी।

12.4.2 वर्तमान रिपोर्ट के संदर्भ में, विभिन्न "विधियों" के तहत की अनेक पहलों ब्योरों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। वस्तुत: आयोग ने पहले ही अन्य रिपोर्टों में इनमें से कुछ पहलुओं पर विचार किया है अथवा विचार करने की प्रक्रिया में है। विशेष रूप से, बगावत-रोधी प्रचालनों में सुरक्षा बलों की भूमिका उल्लेखनीय है जिस पर आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवी रिपोर्ट में विचार किया है। इस रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ सिफारिश की है कि सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम 1958 को पूर्वोत्तर में निरस्त कर दिया जाए तथा इसके कुछेक प्रावधानों[49] को अवैध गतिविधि (रोकथाम) अधिनियम, 1967 में सम्मिलित कर लिया जाए ताकि सुरक्षा बलों को मानवाधिकारों की चिन्ताओं के अनुसार प्रचालन की आजादी होनी चाहिए। पुलिस सुधारों और स्थानीय आसूचना प्रणाली को मजबूत करने आदि के संबंध में बहुत सी अन्य सिफारिशें की गई है जो पूर्वोत्तर में स्थिति पर भी लागू होंगी। विद्रोही गुटों की समस्या से निपटने के लिए कुछ अन्य पहलू हैं जिन पर "आतंकवाद" पर आयोग की रिपोर्ट में विचार किया जाएगा।

12.4.3 तथापि आयोग इस बात पर पुन बल देना चाहेगा कि क्षेत्र में बगावत और हिंसा के विशुद्धत: "कानून और व्यवस्था पहलुओं" से डील करने में अभी तक के मुकाबले स्थानीय पुलिस पर अधिक भरोसा करने की जरूरत है। यद्यपि केन्द्र के सशस्त्र बलों की तैनाती आवश्यक हो सकती है, तथापि एक ऐसे क्षेत्र में प्रचालनात्मक प्रयोजनार्थ उनका प्रयोग न्यूनतम करना चाहिए जहाँ अभी भी वंचना की भावना बनी हुई है। इसी प्रकार, विवादों के साथ डील करने के लिए प्रशासन के "पुलिस-भिन्न घटकों" और सिविल सोसायटी संगठनों का उपयोग करने में अभी तक दिए गए ध्यान से ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है। इसे तथा अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक उपायों पर इस रिपोर्ट में अन्यत्र विचार किया है।

12.4.4 संघर्ष समाधान की अन्य विधि विकासात्मक दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण में यह अवधारणा अन्तर्निहित है कि यदि क्षेत्र में विकास की पद्धतियाँ कायम की जाएं और योजना परिव्ययों में पर्याप्त रूप से वृद्धि की जाए तो राजनीति, सोसायटी, जातिगत वैमनस्य, मिलिटेंट जोर और एकीकरण की

[49] "सार्वजनिक व्यवस्था" पर आयोग की रिपोर्ट का पैरा 8.5.17

समस्याएं कम हो जाएंगी। 1980 के दशक के बाद से, इस क्षेत्र में सरकारी व्यय में पर्याप्त वृद्धि हुई है और यह शर्त लगा दी गई है कि केन्द्रीय सरकार में प्रत्येक मंत्रालय/विभाग का 10 प्रतिशत खर्च पूर्वोत्तर के लिए विनिश्चित किया जाना चाहिए। यह सर्वविदित है कि विकास के लाभ लाभार्थियों के पास पर्याप्त रूप में नहीं पहुंचते। यद्यपि, समस्या का विस्तृत विश्लेषण इस रिपोर्ट के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता तथापि यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि ऐसी सफलता के कारण स्थानीय खपाने की क्षमता की असफलता और अनुचित विकास कार्यनीतियों से लेकर भ्रष्टाचार और निधियों का विचलन, कभी-कभी विद्रोहियों के खातों में चला जाता है। विशेष चिन्ता की बात सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए निश्चित खाद्यान्नों का सु-प्रलेखित ढंग से उडा लिया जाना है जिसमें से एक बड़ा भाग मिलिटेन्ट के हाथों में चला जाता है।[50] इसी प्रकार, अनेक पांइटों पर विभिन्न मिलिटेंटों समूहों द्वारा चलाए जा रहे वस्तुतः जबरन वसूली रैकट, एक मिलिटेंट समूह के प्रभाव वाले क्षेत्र से अगले समूहों में अनेक संक्रमण, व्यवसाय व वेतनभोगी वर्गों से संरक्षण धन की वसूली आदि व्यापक रूप में प्रलेखित है।[51] परिणामस्वरूप अनेक प्रेक्षकों का मत है कि पूर्वोत्तर के कुछ भाग "स्थिर अराजकता" की स्थिति दर्शाते हैं जहाँ मिलिटेंन्टों के व्यक्तिगत और पक्षपातपूर्ण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु कानून के शासन और शासन की अन्य पद्धतियों का प्रत्यक्ष रूप से अथवा गठजोड़ व्यवस्था के जरिए, उल्लंघन होता है।[52]

12.4.5 इसलिए, शासन की विभिन्न पद्धतियों में सुधार और क्षमता निर्माण करना अनिवार्य है यदि विकास प्रयासों को विषमताएं और वंचना को दूर करने में आशातीत भूमिका निभानी है।

12.5 संघर्ष समाधान – राजनीतिक प्रतिमान

12.5.1 यह समझ कि पूर्वोत्तर के लोगों की बात को एक बड़े राजतंत्र में सुने जाने के लिए विशेष सहायता की जरूरत है जिसके साथ उनका सम्पर्क आजादी के बाद से ही कम रहा है। इस समझ के फलस्वरूप छठी अनुसूची तैयार की गई, शासन का एक विकेन्द्रीकृत माडल, जो 1940 के दशक से ही स्पष्टतः क्रान्तिकारी था। बहुत से नागा क्षेत्रों को स्वायत्त संरचना के अन्दर लाने (1957), नागालेण्ड के निर्माण (1963), असम राज्य के अन्दर एक स्वायत्त जनजातीय राज्य की स्थापना (1971) और क्षेत्र का बड़े पैमाने पर पुनर्गठन (1972) जैसी बाद की घटनाओं से, केवल एक "व्यवस्था की बहाली" मुद्दे के रूप में नहीं बल्कि राजनीतिक प्रक्रियाओं में अन्तरण और भागीदारी के बड़े अवसरों की व्यवस्था करने के लिए जरिए भी, पूर्वोत्तर में असंतोष और वंचना से निपटने की राष्ट्रीय राजनीतिक नेतृत्व की तीव्र इच्छा का पता चलता है। स्वतन्त्र भारत का राजनीतिक

[50] अर्चना उपाध्याय, "टेरोरिज्म इन दि नार्थ ईस्ट"

[51] अजय साहनी और जे. जार्ज, "सिक्युरिटी एण्ड डवलपमेंट इन इण्डियाज नार्थ-ईस्टः एन आल्टर्नेटिव पर्सपेक्टिव"

[52] एस.के. पिल्लई, "इनसर्जेन्सीज इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया"

इतिहास स्थानीय आकांक्षाओं को पूरा करने का और अधिक क्रान्तिकारी उदाहरण पेश नहीं करता। यद्यपि, मतैक्य कायम करके तथा सतत रूप से "प्रजातान्त्रिकरण" के क्षेत्र का विस्तार करके लम्बे अर्से से चली आ रही समस्याओं का रचनात्मक "राजनीतिक समाधान" करने की सदैव गुंजाइश रहती है, तथापि यह सन्देहास्पद है कि क्या राजनीतिक प्रतिमान और अधिक क्रान्तिकारी नूतनताओं की अनुमति देंगे। विद्यमान राजनीतिक पद्धतियों को हमारे देश के इस महत्वपूर्ण भाग के विकास और कल्याण हेतु अपनी क्षमता को समझने की दिशा में कार्य करने का मामला बनता है।

12.5.2 इसलिए राजनीतिक स्तर पर, कानून के शासन और संवैधानिक राजनीति, प्रजातान्त्रिक रूप से निर्वाचित राज्य और स्थानीय सरकारों के प्राधिकार और वैधता को मजबूत करने की जरूरत है। इससे पूर्वोत्तर में संघर्ष समाधान तंत्र में जवाबदेही और प्रजातान्त्रिक प्रक्रिया लागू करने की जरूरत पूरी होगी। इसके लिए विधानमण्डलों, राज्य प्रशासन और क्षेत्र में निर्वाचित स्थानीय सरकारों को भी अधिक भूमिका निभानी होगी। त्रिपुरा में छठी अनुसूची क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम परिषदों की स्थापना, एन आर ई जी ए पर अमल करने के लिए मेघालय में निर्वाचित वी ई सी और ए ई सी की सफल शुरूआत, नागालेण्ड में बड़ी निर्वाचित ग्राम क्षेत्र विकास समितियों की प्रभावी भागीदारी जैसी हाल ही की घटनाएं इस बात का सबूत हैं कि ग्राम अधिशासन और विकास किस प्रकार प्रजातान्त्रिक पद्धतियों के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। इसके लिए पूर्वोत्तर में स्थानीय शासन और विकास में प्रजातान्त्रिक पद्धतियों के तत्व शामिल करने की जरूरत है। विशेष रूप से, छठी अनुसूची क्षेत्रों में ग्राम स्वः शासन (प्रत्येक राज्य की विशिष्ट स्थितियों के लिए यथा उपयुक्त) लागू करने, स्वायत्त परिषदों को उन्हें सौंपी गई कार्यकारी जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए संसाधन उपलब्ध कराने व उन्हें सुदृढ़ बनाने, और छठी अनुसूची से बाहर जनजातीय क्षेत्रों के संबंध में तथा असम की जनजातीय विशिष्ट परिषदों के संबंध में उपयुक्त परिवर्तन करने की जरूरत है। इसके लिए, यह जिम्मेदारी स्थानीय निकायों को सौंपकर सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने की विद्यमान पद्धति का पुनर्गठन करने की जरूरत है। इन पहलुओं पर इस अध्याय में बाद में विचार किया गया है।

12.6 संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण

क्षेत्र की जटिलताओं तथा संघर्ष समाधान के संबंध में पिछले प्रयासों की सफलताओं और असफलताओं को देखते हुए शासन के विभिन्न स्कंधों और स्तरों में क्षमता का निर्माण करने के लिए तात्कालिक और

नूतन प्रयासों की जरूरत है। पूर्ववर्ती पैराग्राफों में दी गई पृष्ठभूमि के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्र में संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण के लिए जरूरी विशिष्ट क्षेत्रों पर नीचे चर्चा की गई है:

(i) प्रशासन में क्षमता निर्माण

(ii) पुलिस में क्षमता निर्माण

(iii) स्थानीय शासन प्रणालियों में क्षमता निर्माण

(iv) क्षेत्रीय प्रणालियों में क्षमता निर्माण

(v) अन्य प्रणालियों में क्षमता निर्माण

12.6.1 प्रशासन में क्षमता निर्माण

12.6.1.1 यद्यपि अखिल भारतीय सेवाओं के कार्मिक प्रबंधन से सम्बद्ध मुद्दों पर, पूर्वोत्तर राज्यों में सेवारत कार्मिकों सहित, आयोग द्वारा अगली रिपोर्ट में विचार किया जाएगा तथापि क्षेत्र में विवाद प्रबंधन के संदर्भ में इस विषय की अनदेखी नहीं की जा सकती। स्थानों और वहाँ के मुद्दों की जानकारी व्यावसायिक दक्षता तथा लोगों के साथ परानुभूति सभी अखिल भारतीय सेवाओं और साथ ही राज्य सरकारों के अधीन सेवाओं में भी सिविल सेवाओं के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षाएं हैं। इस समय अखिल भारतीय सेवाओं में सीधी भर्ती किए जाने वालों में अधिकांश क्षेत्र से बाहर से होते हैं। 1968 तक, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालेण्ड और नेफा (क्योंकि इस समय अरूणाचल प्रदेश इसी नाम से जाना जाता था), वरिष्ठ प्रशासनिक पद एक क्षेत्र विशिष्ट भारतीय सीमांत प्रशासनिक सेवा (आई ई ए एस)द्वारा धारित थे जिसमें सशस्त्र सेनाओं, शिक्षाविदों तथा अन्य सेवाओं से लिए गए अधिकारी सम्मिलित थे जो क्षेत्र में सेवा करने के लिए अपने आपको पेश करते थे। इस सेवा को अनेक कारणों की वजह से आई ए एस में मिला दिया गया, जिनमें इसके सदस्यों की बेहतर कैरियर अवसरों की इच्छा शामिल थी। उसके बाद भी, क्षेत्र में सेवा करने के इच्छुक अधिकारियों की समस्या बनी हुई है। इसका कारण बाहरी व्यक्तियों द्वारा क्षेत्र में सेवा करने की अनिच्छा और क्षेत्र के अन्दर वरिष्ठ स्तरों पर उपलब्ध पदों की सीमित संख्या का होना दोनों ही हैं। स्थानीय अधिकारी, सीधी भर्ती वाले तथा "पदोन्नति प्राप्त" भी दूसरी ओर व्यावसायिक विकास के लिए सीमित अवसरों के बारे में शिकायत करते हैं क्योंकि उन्हें क्षेत्र से बाहर सेवा करने के पर्याप्त अवसर नहीं मिलते। विशेष रूप से राज्य सेवाओं के सदस्यों को विविध कार्य स्थितियों में काम करने के सीमित अवसर प्राप्त होते हैं। पूर्वोत्तर राज्यों में अधिकारियों की अत्यंत कमी की वजह अनेक व्यक्तियों द्वारा अखिल भारतीय सेवाओं में संवर्ग आवंटन की पद्धति है जिसके अनुसार वहाँ के वासियों को अपने गृह राज्य में आवंटित किए जाने के बहुत कम अवसर होते हैं। उदाहरण के लिए नागालेण्ड सरकार का

कहना है कि वर्तमान रोस्टर प्रणाली के अनुसार पिछले एक दशक के दौरान केवल एक नागा उम्मीदवार को अपने गृह संवर्ग में आवंटित किया गया।

12.6.1.2 जैसाकि पहले कहा गया है, पूर्वोत्तर में कार्यरत अधिकारियों की सेवा शर्तों से संबंधित मुद्दों पर "कार्मिक प्रशासन की पुनर्संरचना" पर आयोग की रिपोर्ट में विचार किया जाएगा। तथापि, क्योंकि एक प्रतिबद्ध तथा स्थिर प्रशासन व संघर्षों की रोकथाम और समाधान के बीच गहरा संबंध है इसलिए इनमें से कुछेक विषयों पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक है। 1970 के दशक तक असम से बाहर के तथा तत्कालीन क्षेत्र के संघ राज्य क्षेत्र के अधिकारी पूर्वोत्तर में प्रतिनियुक्ति पर सेवा करने के इच्छुक होते थे, उदाहरण के लिए पंजाब, मध्य प्रदेश आदि से। आजकल, इसे एक सजा के तौर पर तैनाती समझा जाता है : इसका एक कारण यह है कि आजकल लगभग सभी राज्य किसी न किसी रूप में बगावत से अथवा सीमित "व्यावसायिक " अनुभव से ग्रस्त हैं। क्षेत्र के विकास से संबंधित क्षेत्रीय संस्थान, जैसे कि एन ई सी, जो कभी उत्साही होते थे, अब काफी कम प्रभावी हैं जैसाकि इस रिपोर्ट में बाद में चर्चा की गई है। इस प्रवृत्ति को उलटने की तत्काल जरूरत है। भारत सरकार ने, पूर्वोत्तर की कठिन स्थितियों को समझते हुए, पहले ही इस क्षेत्र में कार्यरत अधिकारियों को अनेक विशेष प्रोत्साहन और सुविधाएं प्रदान की हैं। सम्भवत: इनका और विस्तार करने की जरूरत है तथा और अधिक सुविधाएं प्रदान करने की जरूरत है जैसे कि अधिकारियों को उनकी पिछली तैनाती की बजाए अपनी पंसद के स्थान पर सरकारी आवास विकल्प प्रदान करना। इसी प्रकार, स्थानीय अधिकारियों के लिए जिनमें तकनीकी सेवा के अधिकारी शामिल हैं, पदोन्नति पर अपने राज्य से बाहर सेवा करने के अधिक अवसर होने चाहिए। प्रशासनिक और तकनीकी अधिकारियों के लिए क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना, देश में और विदेश में उच्च अर्हताएं प्राप्त करने के लिए उदारतापूर्वक धन देना कुछ अन्य प्रोत्साहन हैं, जो प्रदान किए जाने चाहिए।

12.6.1.3 प्रशासनिक पद्धति के अन्दर संस्थागत क्षमता निर्माण करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि प्रशासनिक कार्मिकों की क्षमता का उन्नयन करना है। पूर्वोत्तर राज्यों के अन्दर राजनीतिक कार्यकारी को, शान्ति, व्यवस्था और विकास के संबंध में व्यवस्थित सुधार की अनिवार्यताओं के प्रति भी संवेदी बनाए जाने जरूरत है। क्षेत्र में उत्तम अधिशासन के लिए पहलों के अन्तर्गत, राज्यों के साथ निकट सहयोग से क्षेत्र में उत्तम अधिशासन और प्रशासनिक सुधारों के संबंध मे एक ठोस चार्टर निर्धारित करना तथा एन ई सी द्वारा इसका व्यवस्थित मानीटरन करना सम्मिलित होगा। राज्यों को विशेष आर्थिक पैकेज अथवा वित्त-पोषण की अन्य विशिष्ट मदों के लिए अपनी क्षमता निश्चित करने के लिए, एन ई सी के चार्टर के तहत अपनी प्रतिबद्धताओं को पूरा करने में, उनके निष्पादन को भी ध्यान में रखने की जरूरत है।

12.6.1.4 सिफारिशें

क– क्षेत्र में सेवारत अधिकारियों को, विविध कार्य स्थितियों का और अधिक अनुभव प्राप्त करने के लिए पूर्वोत्तर से बाहर सेवा करने के लिए और अधिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। राज्य के स्थानीय और तकनीकी अधिकारियों को बड़े राज्यों में सेवा करने और देश–विदेश में प्रशिक्षण के माध्यम से अपनी व्यावसायिक अर्हताएं सुधारने के लिए भी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

ख– पूर्वोत्तर में कार्यरत अधिकारियों के लिए उपलब्ध प्रोत्साहनों में वृद्धि की जानी चाहिए।

ग– प्रशासन की विभिन्न शाखाओं के लिए, तकनीकी सेवाओं सहित, पूर्वोत्तर परिषद द्वारा क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान प्रचालित किए जा सकते हैं।

घ– एन ई सी को, राज्यों के तहत तकनीकी तथा विशेषज्ञ विभागों में वरिष्ठ पदों के लिए क्षेत्रीय संवर्गों के विधिक फलितार्थों और व्यवहार्य की जाँच करने के लिए राज्यों के साथ चर्चाएं आयोजित करनी चाहिए।

ड.–एन ई सी तथा गृह मंत्रालय, राज्यों के सहयोग से, क्षेत्र के संबंध में प्रशासनिक सुधारों के लिए एक एजेन्डा तैयार कर सकते हैं जिसके कार्यान्वयन का व्यवस्थित ढंग से मानीटरन किया जाना चाहिए। इस चार्टर पर संतोषजनक ढंग से अमल करने वाले राज्य अतिरिक्त धन के लिए, विशेष आर्थिक पैकेल सहित, पात्र हो सकते हैं।

12.6.2 पुलिस में क्षमता निर्माण

12.6.2.1 पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए एकमात्र क्षेत्र स्तरीय संस्थान शिलांग के निकट पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी (नेपा) है जो क्षेत्र में सभी राज्यों के, असम को छोड़कर, राजपत्रित पुलिस अधिकारियों के प्रारम्भिक स्तर प्रशिक्षण की पूर्ति करती है। सीमित दाखिला क्षमता तथा उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित प्रशिक्षकों की अनुलब्धता के कारण, जिसकी ओर पुलिस सुधार संबंधी समिति (पद्मनाभैय्या समिति) द्वारा ध्यान आकर्षित किया गया था, संस्थान का सीमित प्रभाव रहा है1 "नेपा" में बगावत से निपटने में सिविल पुलिस अधिकारियों के लिए एक नोडल प्रशिक्षण संस्थान बनने की क्षमता है। संस्थान के ढाँचे को मजबूत बनाकर तथा इसमें आकर्षक शर्तों पर केन्द्रीय पुलिस संगठनों सहित विभिन्न स्त्रोतों से प्रशिक्षकों का समावेश करके इसे मजबूत बनाया जाना चाहिए। अकादमी में कार्य करने के लिए प्रचालन संबंधी मामलों में उत्तम सेवा रिकार्ड वाले पुलिस अधिकारियों को प्रेरित करने के लिए पर्याप्त रूप में वित्तीय तथा अन्य प्रोत्साहनों की जरूरत है।

12.6.2.2 पूर्वोत्तर में पुलिस बल की पर्याप्तता के विषय में इसी समिति ने नोट दिया:

"कम आबादी और तराई स्थितियों को देखते हुए, पूर्वोत्तर राज्यों में प्रति सौ वर्ग कि. मीटर क्षेत्र पुलिसकर्मियों की उपलब्धता अखिल भारतीय औसत की तुलना में अधिक है। प्रति सौ वर्ग कि. मीटर क्षेत्र के लिए 42 पुलिसकर्मियों के अखिल भारत औसत की तुलना में, त्रिपुरा में 117 पुलिसकर्मी हैं, नागालेण्ड में 91 और मणिपुर में 63 हैं। आबादी की दृष्टि से उपलब्धता निश्चित रूप से बहुत ऊँची है। प्रति लाख आबादी 136 पुलिसकर्मियों के अखिल भारत औसत की तुलना में नागालेण्ड में 950, मिजोरम में 752, मणिपुर में 593 और त्रिपुरा में 341 पुलिसकर्मी हैं। हम इस मुद्दे पर सहमत नहीं हैं। भारत के बड़े भागों में स्थिति हमारे देश के पूर्वोत्तर भाग के राज्यों में विद्यमान स्थिति से अत्यंत भिन्न है। यह तुलनीय नहीं है। पूर्वोत्तर राज्यों में प्रत्येक राज्य में पुलिस द्वारा विगत तीन वर्षों में निष्पादित विभिन्न ड्युटियों को ध्यान में रखते हुए पुलिस कार्य के विभिन्न पहलुओं के कार्यभार का आकलन करके स्टाफ की जरूरतें तय की जानी चाहिए। "

12.6.2.3 आयोग, समिति के निष्कर्षों से सहमत है। यह अनिवार्य है कि प्रत्येक राज्य के संबंध में तैनाती के मापदण्ड, स्थानीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए तय किए जाने चाहिए जिससे कि (कम से कम) अपेक्षाकृत सुखद पुलिस के लाभ अधिकांशत असुरक्षित आबादी के लिए उपलब्ध हों। सभी स्तरों पर पुलिस कार्मिकों का अन्तर-राज्य संचलन उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सिविल प्रशासन में ऐसे ही कार्यों के लिए। यदि पुलिस अधिकारियों को, विशेष रूप से निरीक्षकों के स्तर पर (और सशस्त्र पुलिस में समकक्ष) केन्द्रीय पुलिस संगठन में सेवा करने का अवसर प्रदान किया जाए तो परिणाम विकासशील व्यावसायीकरण के लिए विशेष रूप से लाभप्रद होगा। क्षेत्र से बाहर के अधिकारियों को लाने से भी ऐसे ही लाभ होंगे।

12.6.2.4 सिफारिशें

क- पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी (नेपा) के आधारिक ढाँचे और स्टाफ में बडे पैमाने पर उन्नयन किए जाने की जरूरत है जिससे कि शुरूआती स्तर पर बड़ी संख्या में अधिकारियों की जरूरतें पूरी हो सकें। "नेपा" का विकास बगावत से निपटने के लिए अन्य क्षेत्रों से सिविल पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है। केन्द्रीय पुलिस संगठनों और सिविल पुलिस से, विशेष रूप से बगावत-रोधी प्रचालनों में उत्तम सेवा रिकार्ड वालों को, अकादमी में आकर्षित और वहाँ बनाए रखने के लिए वित्तीय व अन्य प्रोत्साहन आवश्यक हैं।

ख–क्षेत्र से पुलिस कार्मिकों को केन्द्रीय पुलिस संगठनों में तैनात करने की एक स्कीम लागू करने और बाहर के क्षेत्र से पूर्वोत्तर राज्यों में पुलिस अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए ठोस उपाय अपनाए जाने की जरूरत है।

12.6.3 स्थानीय शासन प्रणालियों में क्षमता निर्माण

अनेक ऐतिहासिक और जातिगत विविधता की वजह से पूर्वोत्तर में देश के अन्य क्षेत्रों के मुकाबले स्थानीय स्व: शासन की अनेक प्रणालियां हैं। कुछेक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रणालियों पर निम्नलिखित शीर्षों के तहत चर्चा की गई है:

- छठी अनुसूची परिषदें;
- जनजातीय पूर्वोत्तर में ग्राम स्व: शासन;
- असम में जनजाति विशिष्ट परिषदें; और
- स्थानीय शासन में अन्य मुद्दे।

12.6.3.1 छठी अनुसूची परिषदें

12.6.3.1.1 संविधान के अनुच्छेद 244 के तहत अपनाई गई इस अनुसूची के ब्योरों पर, संक्षेप में इसकी महत्वपूर्ण रूपरेखा पर विचार करने के अलावा, विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इसे प्रमुख रूप से नागाओं की राजनीतिक आकांक्षाओं का समाधान करने के लिए अपनाया गया था (तथापि उन्होंने इसे इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि इसमें "बहुत ही कम" पेशकश की गई है)। निष्कर्ष रूप में इसके अन्तर्गत अविभाजित असम के कुछ जनजाति बाहुल्य क्षेत्रों में जल, मृदा, भूमि, स्थानीय रीति-रिवाओं और संस्कृति जैसे विषयों पर विधायी और कार्यपालिका शक्तियों के साथ, स्वायत्त विकेन्द्रीकृत अधिशासन की एक रूपरेखा निर्धारित की गई है। स्थानीय शासन के बहुत से पहलू मुख्यत: अनुसूची के साथ नत्थी तालिका में वर्णित निर्वाचित स्वायत्त जिला परिषदों को सौंपे गए हैं, तथा परिषदें जिस प्रकार से कार्य करेंगी उसका उल्लेख अनुसूची के मूल पैराग्राफों में किया गया है। मेघालय से बाहर परिषदों को सौंपे गए विषयों में पिछले वर्षों के दौरान काफी विस्तार हुआ है-2003 में स्थापित बोडोलेण्ड क्षेत्रीय परिषद के तहत क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सूची II और III की लगभग सभी मदें शामिल हैं। त्रिपुरा और बोडोलेण्ड परिषदों को छोड़कर, इन निकायों को कतिपय प्रकार के सिविल और आपराधिक मामलों का निपटान करने के लिए न्यायिक शक्तियां भी प्रदान की गई हैं। स्वायत्त परिषदों द्वारा पारित विधान केवल राज्यपाल

की सहमति के बाद प्रभावित होते हैं। यद्यपि, अनुसूची में संशोधन करने की शक्ति एक साधारण विधान के जरिए संसद में निहित है तथापि, राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त है कि वह उसके द्वारा नियुक्त एक आयोग की सिफारिशों पर एक नए स्वायत्त जिले का सृजन कर सकता है अथवा ऐसे जिलों का विलय कर सकता है और आयोग की सिफारिश के बगैर ऐसे जिलों के क्षेत्र में परिवर्तन कर सकता है अथवा ऐसे क्षेत्रों को ऐसे जिलों के अन्दर शामिल अथवा अलग कर सकता है। इस आयोग से स्वायत्त जिलों में प्रशासन की स्थिति की जाँच करने और रिपोर्ट करने की उम्मीद की जाती है।

12.6.3.1.2 अनुसूची के अन्तर्गत मूल क्षेत्रों में मेघालय, नागालेण्ड और मिजोरम के वर्तमान राज्य और असम के नार्थ कछार और कर्बी अंगलोंग (मूलतः मिकिर पहाड़ियों के रूप में ज्ञात) जिले सम्मिलित थे। यद्यपि, जैसाकि पहले बताया गया है, नागा क्षेत्रों ने एक परिषद चुनने से मना कर दिया। 1972 में मिजोरम के संघ राज्य क्षेत्र के निर्माण के बाद मिजो परिषद (प्रारंभ में, लुशाई पर्वतीय परिषद के रूप में ज्ञात) को भंग कर दिया गया। बाद में, पाँच और परिषदें स्थापित की गईं, अर्थात- मिजोरम में तीन छोटी परिषदें -गैर-मिजो अल्पसंख्यक जनजातियों - मारा, चकमा और लाई का प्रतिनिधित्व करने वाली- स्थापित की गई; पूरे त्रिपुरा में फैले जनजातीय क्षेत्रों को शामिल करते हुए स्वायत्त परिषद और बोडों जनजातियों की बहुलता वाले असम में तीन जिलों के लिए एक क्षेत्रीय परिषद। बाद में, "असम परिषदों" की शक्तियों का विस्तार करके उसके अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण जैसे विषयों को शामिल कर दिया गया। वस्तुतः, बोडोलेण्ड परिषद को अब सातवीं अनुसूची की सूची II और III में दी गई लगभग सभी शक्तियां प्राप्त हैं।

12.6.3.1.3 इस प्रकार, छठी अनुसूची परिषदों को, देश के शेष भाग में स्थानीय निकायों (73वें संशोधन से पहले अथवा बाद में भी) के मुकाबले अधिक शक्तियां प्रदान की गई है। यद्यपि, अनुसूची के अन्तर्गत बहुत से क्षेत्रों में खलबली और हिंसा हुई है, तथापि इस बात से आमतौर पर सहमति है कि इसके अन्तर्गत निर्धारित स्वायत्तता प्रतिमानों के फलस्वरूप जनजातियों के बीच, विशेष रूप से प्रथागत कानूनों के औपचारिक विवाद निपटान के जरिए तथा साहूकारी पर नियंत्रण आदि के माध्यम से काफी मात्रा में सन्तुलन कायम हुआ है। असम, त्रिपुरा और मिजोरम में, स्वायत्त परिषदों को यह निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है कि क्या कोई राज्य विधान, परिषद के क्षेत्राधिकार के तहत किसी विषय पर, लागू नहीं हो सकता अथवा ऐसे अपवादों के साथ लागू होगा जिनके बारे में इन निकायों द्वारा अपने-अपने क्षेत्रों के अन्दर, निर्णय लिया जाए। ऐसी ही विषयों पर केन्द्रीय विधानों को, असम में राज्य सरकार और अन्य दो राज्यों में संघ सरकार द्वारा, इन क्षेत्रों पर लागू होने से

रोका जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों की परिकल्पना, प्रशासनिक रूप से "आत्म निर्भर" के रूप में की गई है। वस्तुत:, अनुसूची के तहत राज्य स्तर कार्यकारी एजेन्सियां ऐसे क्षेत्रों से हट सकती हैं जैसाकि कर्बी अंगलोंग में गड़बडी के संदर्भ में स्पष्ट है। मेघालय में एक विशिष्ट स्थिति है, क्योंकि राज्य के निर्माण के बावजूद (और मिजोरम के विपरीत), पूरा राज्य छठी अनुसूची के अन्तर्गत बना हुआ है जिसकी वजह से राज्य सरकार के साथ प्राय: विवाद होते रहते हैं, किन्तु उसे इन निकायों के संबध में अत्यधिक शक्तियां प्राप्त हैं जिसमें "परिषद विधान" की तुलना में राज्य विधान की श्रेष्ठता सम्मिलित है। यद्यपि कहा जाता है कि मेघालय में स्वायत्त परिषदों के जारी रहने से अन्तर-जनजाति समीकरणों को बनाए रखने में योगदान मिला है, तथापि इस व्यवस्था से राज्य सरकार के साथ प्राय: विवाद होता है जैसाकि जनवरी 2007 में मेघालय के इसके दौरे के दौरान आयोग को बताया गया। राज्य अधिकारियों द्वारा यह कहा गया कि राज्य और परिषदों के भौगोलिक क्षेत्र की व्यवस्था एक जैसी है जो क्षेत्र में अभूतपूर्व है। यह भी दलील दी गई कि मेघालय जैसे जनजातीय बाहुल्य वाले राज्यों की परिस्थितियों में, जिला स्तरीय विधायी निकायों की जरूरत नहीं है।

12.6.3.1.4 आयोग के असम और मेघालय के दौरे के दौरान, परिषद के प्रतिनिधियों ने संबंधित राज्य सरकारों के साथ अपने विचार-विमर्श के बारे में असंतोष व्यक्त किया - ऐसी भावना थी कि इन स्वायत्त निकायों को सरकार के विस्तार के रूप में समझा जाता है। यद्यपि अनुसूची के विभिन्न प्रावधानों से ऐसी धारणा बनती है कि उस अनुसूची के तहत राज्यपाल को अपने विवेकानुसार कार्य करना है, तथापि वर्तमान स्थिति यह है कि लगभग सभी मामलों में राज्यपाल मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह से कार्य करता है। यह एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। अनुसूची में ऐसे प्रावधान हैं जिसके अन्तर्गत राज्य सरकार के लिए एक भूमि की परिकल्पना की गई है। उदाहरण के लिए पैराग्राफ 4(3) के तहत अपेक्षित है कि सरकार के एक मंत्री को स्वायत्त जिलों के विषय का प्रभारी बनाया जाना चाहिए। उसी प्रावधान के उप-पैराग्राफ (2) के अन्तर्गत अपेक्षित है कि स्वायत्त जिलों के मामलों की जाँच करने संबंधी आयोग की रिपोर्ट तथा नए जिले स्थापित करने आदि से संबंधित रिपोर्ट राज्य विधान मंडल के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी। इसी प्रकार पैरा 15, संकल्पों को रद्द करने और परिषदों के निलम्बन से संबधित है तथा पैराग्राफ 16 जिसके तहत उन्हें भंग किया जा सकता है, राज्य विधानमंडल की प्रतिसंहरण और अनुमोदन की क्रमश: शक्तियां के विषय है। विधान सभा का अनुमोदन और अनुसमर्थन चाहने वाले मामलों के विषय में स्पष्ट है कि राज्यपाल संविधान के अनुच्छेद 163(1) के अर्थों में उसकी "सहायता और सलाह" से काम करेगा और न कि अपने विवेकानुसार। तथापि,

अन्य प्रावधान हैं जिनमें यह गुजांइश है कि राज्यपाल राज्य सरकार सहित उपयुक्त स्त्रोतों से इनपुट प्राप्त करने के बाद अपना निर्णय ले। इनमें से कुछ प्रावधान सिविल प्रक्रिया संहिता (सी पी सी) और द. प्र. सं. के तहत परिषद की शक्तियों के तहत प्रतीत हो सकते हैं (पैरा 5); परिषद विधानों और विनियमों को अनुमोदित करने की शक्तियां (पैराग्राफ 3 और 8); खनन लाइसेन्सों और पट्टों के बारे में विवाद समाधान परिषद (पैरा 9) को प्रदान की गई शक्तियां प्रतीत होती हैं। आयोग का मत है कि छठी अनुसूची में अन्तर्निहित व्यापक स्वायत्तता की भावना को समझते हुए, इस पहलू की गृह मंत्रालय द्वारा जाँच किए जाने की जरूरत है।

12.6.3.1.5 संविधान की शुरूआत में तथा उसके बाद दो दशकों से भी अधिक अवधि तक सभी स्वायत्त जिले असम राज्य के अन्दर स्थित थे। इसलिए इस राज्य में ऐसे जिलों में प्रशासन की स्थिति की जांच करने तथा पैराग्राफ 14 में वर्णित अन्य मामलों की जाँच करने के लिए, एक आयोग नियुक्त करना राज्यपाल के लिए ठीक ही था। अब चार राज्यों में ऐसे जिले होने से, इस व्यवस्था पर फिर से गौर किए जाने की जरूरत है। इसके अलावा, विगत दो दशकों के दौरान इस प्रावधान का बिलकुल इस्तेमाल नहीं किया गया है जिसके फलस्वरूप इन संवेदनशील क्षेत्रों में शासन के स्तरों में गिरावट आई है। आयोग की राय में, केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुसूची के अन्तर्गत सभी स्वायत्त जिलों के लिए एक सामान्य आयोग गठित करने और एक निश्चित अन्तराल पर ऐसे आयोग नियुक्त करने का मामला बनता है। आयोग ने यह भी नोट किया है कि पंचायती राज मंत्रालय के एक सदस्य (श्री वी. रामचन्द्रन) की अध्यक्षता वाली विशेषज्ञ समिति ने भी ऐसी ही सिफारिश की थी।

12.6.3.1.6 विवाद का एक अन्य उभरता हुआ क्षेत्र स्वायत्त परिषदों और 73वें संशोधन के अनुसरण में स्थापित स्थानीय निकायों के बीच बढ़ती असमानता का है क्योंकि स्वायत्त निकायों को राज्य वित्त आयोगों के माध्यम से अधिक उदारतापूर्वक धन दिया जाता है। यह असमानता सम्भवतः असम और त्रिपुरा में विशेष रूप में महत्वपूर्ण है जहाँ दोनों श्रेणी के स्थानीय निकाय विद्यमान हैं। इसी प्रकार, असम में इस धारणा पर दोनों पुरानी परिषदों में असंतोष की भावना है कि धन जारी करने से संबंधित प्रक्रियाओं और साथ ही बजट आवंटनों आदि के आधार के मामले भी नई स्वायत्त परिषद, अर्थात बोडोलेण्ड क्षेत्रीय परिषद के साथ प्राथमिकतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। यद्यपि अनुच्छेद 243 एम (1) के अन्तर्गत छठी अनुसूची के तहत क्षेत्रों को 73वें संशोधन के प्रचालन से स्पष्ट रूप से छूट दी गई है तथापि इसके द्वारा उस अनुसूची में शामिल किए जाने के लिए कुछ व्यवस्था करने पर कोई रोक नहीं है।

12.6.3.1.7 सिफारिशें

क– कुछ दृष्टि में "अनुसूचित क्षेत्रों" के साथ कम अनुकूल व्यवहार की शिकायतों से बचने के लिए संविधान की छठी अनुसूची में उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए जिससे कि स्वायत्त परिषदें राज्य वित्त आयोगों और राज्य चुनाव आयोगों की सिफारिशों से लाभान्वित हो सकें जिसकी व्यवस्था भारत के संविधान के क्रमशः अनुच्छेद 243 आई और 243 के में की गई है।

ख– केन्द्रीय सरकार, मेघालय सरकार और उस राज्य में स्वायत्त परिषदें, राज्य सरकार और परिषदों के बीच विवादों का समाधान करने के लिए एक संतोषजनक प्रणाली विकसित करने के लिए परिषदों और राज्य सरकारों के बीच संबंध की विद्यमान पद्धति की समीक्षा की जा सकती है।

ग– गृह मंत्रालय, संबंधित राज्य सरकारों और स्वायत्त परिषदों के साथ परामर्श करके, छठी अनुसूची के अन्तर्गत उन शक्तियों का विनिर्धारण कर सकता है जिन्हें राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद की "सहायता और सलाह" पर कार्रवाई करने की बजाए इस्तेमाल किया जा सके, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 163 (1) में परिकल्पित है।

घ– छठी अनुसूची के पैराग्राफ 14 में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जा सकता है जिससे कि केन्द्रीय सरकार सभी स्वायत्त जिलों के प्रशासन की स्थिति का आकलन करने और उस पैराग्राफ में परिकल्पित अन्य सिफारिशें करने के लिए उनके संबंध में एक सामान्य आयोग नियुक्त कर सके। आयोग के लिए समय के अन्तराल की भी व्यवस्था की जा सकती है।

ड.–असम सरकार को "मूल" स्वायत्त परिषदों के लिए बजटीय आवंटन निर्धारित करने तथा धन जारी करने की विद्यमान व्यवस्था की समीक्षा करनी चाहिए जिससे कि जहाँ तक व्यवहार्य हो, उन्हें बोडोलेण्ड क्षेत्रीय परिषद के संबध में व्यवस्थाओं के समान बनाया जा सके।

12.6.3.2 जनजातीय पूर्वोत्तर में ग्राम स्तर स्वः शासन

12.6.3.2.1 सम्भावित नाराजगी और असंतोष का एक अन्य विषय अधिकांश अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधिक निकायों की वस्तुतः अनुपस्थित होना है। काफी पूर्वोत्तर क्षेत्र में, अरूणाचल प्रदेश सहित (एक ऐसा क्षेत्र जिसे इस आधार पर कि यह अत्यंत "आदिम" है, छठी अनुसूची से बाहर रखा गया था), पंचायती राज निकायों के स्थिर होने से, शेष रह गए क्षेत्रों में एक वंचना की भावना होना अनिवार्य है। संविधान की शुरूआत में, गैर-अनुसूचित क्षेत्रों में भी कोई ग्राम स्तर निर्वाचित

घटक नहीं था। इसलिए ग्राम स्व: शासन की उपेक्षा करने में छठी अनुसूची में कोई असामान्य बात नहीं थी। पिछले वर्षों के दौरान स्थिति में पर्याप्त रूप से बदलाव आया है। छठी अनुसूची क्षेत्रों के अन्दर त्रिपुरा में निर्वाचित ग्राम परिषदें और राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम के कार्यान्वयन पर नजर रखने के लिए मेघालय के कुछ भागों में प्रयोग की जा रही अशंत: निर्वाचित ग्राम कार्यकारी समितियों से ग्राम स्तर प्रतिनिधिक संस्थानों के महत्व की प्राप्ति को समर्थन मिलता है। गैर-अनुसूचित क्षेत्रों में, नागालेण्ड ने, ग्राम शासन में भूमिका के साथ, पारम्परिक ग्राम नेताओं और निर्वाचित प्रतिनिधियों के एक "मिश्रण" के रूप में ग्राम क्षेत्र विकास बोर्डों को औपचारिकता प्रदान कर दी है। मिजोरम और मणिपुर के पर्वतीय इलाकों में कोई औपचारिक ग्राम स्तर प्रतिनिधिक निकाय नहीं हैं। असम के कुछ जनजातीय जिलों में, वस्तुत निर्वाचित ग्राम पंचायतें, इन इलाकों को छठी अनुसूची के अन्तर्गत लाए जाने से पहले, विद्यमान थी;तब से वे विद्यमान नहीं हैं।

12.6.3.2.2 छठी अनुसूची की जाँच करने से पता चलता है कि इससे ग्राम स्व शासन की व्यवस्था करने का पर्याप्त अवसर उपलब्ध है। पैराग्राफ 3(1) के खण्ड (ड.) और (च) में अन्यों के साथ-साथ, ग्राम समितियां/परिषदें स्थापित करने और उन्हें ग्राम पुलिस व्यवस्था, सार्वजनिक स्वास्थ्य व सफाई आदि सहित ग्राम प्रशासन से संबंधित अन्य कार्य और शक्तियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। इन खण्डों में यह सुझाने के लिए कोई बात नहीं है कि इन निकायों का चुनाव नहीं किया जा सकता। अनुसूची की स्कीम को देखते हुए, निर्वाचित ग्राम परिषदों की स्थापना करने के लिए संबंधित स्वायत्त परिषदों की स्थापना करने के लिए संबंधित स्वायत्त परिषदों द्वारा उपयुक्त विधानों की जरूरत होगी। परिषदों को इस "सुधार एजेण्डे" को अपनाने के लिए प्रेरित करने के वास्ते उनके दायित्व निर्वहन को परिषदों के लिए अनुदानों का कुछ भाग जारी करने के साथ जोड़ना आवश्यक होगा। क्या निर्वाचित ग्राम परिषदों को अनिवार्य रूप से पारम्परिक ग्राम मुखिया का स्थान लेना चाहिए यह एक टेढ़ा प्रश्न है और इस पर सावधानी, होशियारी व धैर्य के साथ विचार करना होगा।

12.6.3.2.3 जहाँ कहीं ग्राम स्तर संस्थानों द्वारा न्याय प्रशासित किया जाता है, विशेष रूप से छठी अनुसूची क्षेत्रों में, लागू कानून, विशेष रूप से भूमि और सीमा विवादों के संबंध में, स्थानीय प्रथागत कानून हैं। ऐसे कानूनों के संहिताबद्ध न होने की वजह से उनके एकीकरण के संबंध में प्राय: अस्पष्टता रहती है जिसके फलस्वरूप पक्षकार असंतुष्ट रहते हैं और विवाद निपटान की यह सदियों पुरानी प्रणाली कम प्रभावी होती जा रही है। इससे प्रथागत कानूनों के, स्थानीय परम्परा पर आधारित कानूनों सहित, संहिताबद्ध किए जाने की जरूरत का पता चलता है। मिजोरम में चकमा स्वायत्त परिषद द्वारा प्रथागत

कानूनों को संहिताबद्ध किया जाना सामान्यत: एक प्रत्यक्ष सफलता समझी जाती है। यह अनिवार्य है कि सभी राज्य, जहाँ छठी अनुसूची अथवा अन्य कानूनों के नाते ग्राम निकाय न्याय का प्रशासन करते हैं, लागू कानूनों को जनजातियों द्वारा शासन की सहायता से यथापूर्वक संहिताबद्ध किया जाना चाहिए।

12.6.3.2.4 **सिफारिशें**

क– यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए कि सभी स्वायत्त परिषदें, सु–परिभाषित शक्तियों और संसाधनों के आवंटन की एक पारदर्शी पद्धति के साथ ग्राम स्तर निकाय स्थापित करने के लिए उपयुक्त विधान पारित करें।

ख–स्वायत्त परिषदों के लिए अनुदान जारी करने से संबंधित नियमों में इस संबंध में निर्धारण किए जाने चाहिए कि निर्वाचित ग्राम स्तर निकायों के लिए उपयुक्त विधान पारित करने और उसे लागू करने पर ही परिषदें अतिरिक्त निधियन की पात्र होंगी।

ग– स्वायत्त परिषदों को अपने दायित्व संतोषजनक ढंग से निपटाने में समर्थ बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन निकायों के लिए धन की आवश्यकता, प्रदान की जाने वाली सेवा के न्यूनतम मानकों और स्थानीय संसाधन जुटाने की क्षमता के संदर्भ में, मानकीय रूप से तय की जाए। यह कार्य राज्य वित्त आयोग द्वारा किया जा सकता है।

घ– विकेन्द्रीकृत ग्राम स्व: शासन के प्रतिमान की दिशा में नागालेण्ड ने सराहनीय कार्य किया है जिसने निर्वाचित तत्वों को पारम्परिक शक्ति केन्द्रों के साथ मिला दिया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय को, विभिन्न विकास तथा निर्धनता उपशमन पहुओं को कार्यान्वित करने के लिए इस व्यवस्था को औपचारिक रूप से मान्यता देनी चाहिए।

ङ.–मेघालय सरकार, राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए गारो पहाड़ियों में निर्वाचित ग्राम समितियों के प्रयोग का, सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए राज्य भर में विस्तार करने के लिए उपाय कर सकती है।

च– जरूरी है कि उन सभी राज्यों में जहाँ ग्राम निकाय छठी अनुसूची अथवा अन्य कानूनों के नाते, प्रथागत कानूनों के तहत न्याय प्रशासित करते हैं, ऐसे कानूनों को यथापूर्वक संहिताबद्ध किया जाए।

12.6.3.3 असम में जनजाति विशिष्ट परिषदें

12.6.3.3.1 असम के बारह जिलों में फैली छ: जनजाति विशिष्ट परिषदें ऐसे क्षेत्रों में विद्यमान हैं जहाँ तदनुरूपी ग्राम परिषदों के साथ-साथ तिहरी प्रणाली पंचायती राज संस्थान स्थापित किए जा चुके हैं।

परिषदों की एक असामान्य बात यह है कि यथा सम्भव "जनजाति सम्बद्ध" बहुत सी बस्तियाँ को शामिल करने के लिए उनका क्षेत्राधिकार न केवल जिले की सीमाओं तक फैला है बल्कि उन "उछल" गए क्षेत्रों तक फैला है जहाँ तथाकथित "अनुषंगी क्षेत्रों में उस आबादी के पाकेटों को कवर करने के लिए संगत आबादी का अभाव है। दूसरे शब्दों में, ऐसी परिषदों का क्षेत्राधिकार प्रायः भौगोलिक दृष्टि से "असम्पकृत" क्षेत्रों तक फैला है। ये निकाय, संबंधित जनजातियों द्वारा पहचान के दबाव के साथ डील करने के लिए असम सरकार द्वारा किए गए विवाद निपटान प्रयासों का परिणाम है। वस्तुतः प्रत्येक परिषद सरकार तथा संबंधित जनजाति द्वारा 1990 के दशक के दौरान हुए ""समझौतों" का परिणाम है।

तालिका 12.2 असम में "जनजाति विशिष्ट स्वायत्त परिषद की सारांश सूचना (ए.सी–स्वायत्त परिषद)

परिषद	जनसंख्या (लाख) जोड़	अनु. जन. (क)	जिले	प्रमुख क्षेत्र	अनुषंगी क्षेत्र
राभा हसंग ए.सी	5.53	3.29 (1.84)	दक्षिण कामरूप और गोलपाडा	779	–
सोनोवाल कछारी ए सी	58.47	8.0 (1.94)	डिब्रुगढ़, तिनसुखिया, धिमाजी, लखीमपुर, शिवसागर और जोरहाट	451 (ग)	(ग)
मिसिंग ए सी	74.23	10.47 (5.30)	धेमजी, सोनितपुर, लखीमपुर, डिब्रुगढ़, तिनसुखिया, शिवसागर, जोरहाट और गोलाघाट	1245	366
लालुंग (तिवा) ए सी	56.13	4.60 (1.63)	मोरीगाँव, नागाँव और कामरूप	262	153
देवड़ी ए सी	48.47	16.76 (3.44)	लखीमपुर, धेमजी, डिब्रुगढ़, तिनसुखिया और शिवसागर	133(ग)	(ग)
तेनगल कछारी ए सी	50.71	5.55 (d)	जोरहाट, शिवसागर, डिब्रुगढ़ और लखीमपुर	(घ)	(घ)

टिप्पणीः (क) "कोष्ठक" में दिए गए आंकड़ों में, 1991 जनगणना (2001 जनगणना में जनजाति विशिष्ट आँकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं) के अनुसार कुल मिलाकर अनु. जनजाति आबादी के अन्दर "संगत जनजाति" की आबादी का पता चलता है; (ग) सोनोवाल कछारी और देवड़ी स्वायत्त परिषदों के संबंध में गाँवों को "प्रमुख" और "अनुषंगी" क्षेत्रों में अभी तक पृथक्कृत नहीं किया गया है; (घ) 1991 जनगणना में थंगल कछारी जनजाति की पृथक रूप से गणना की गई; (ड.) थेंगल कछारी स्वायत्त परिषद के लिए ग्रामों को अभी अधिसूचित किया जाना है।

स्त्रोतः राज्य सरकार की रिपोर्टें/प्रलेख

12.6.3.3.2 ये परिषदें जिला परिषदों के समानान्तर कार्य करती हैं जबकि परिषदों के अधीन ग्राम पंचायतें और ग्राम परिषदें उसी प्रकार के कामकाज की आशा करती हैं। यद्यपि जनजाति विशिष्ट व्यवस्था और पंचायत राज प्रणाली परस्पर विरोधी नहीं हैं, किन्तु उनमें पूरकताओं का अभाव है। इस मुद्दे पर असम में जनजातीय मामले संबंधी एक सदस्यीय आयोग ने विचार किया था तथा अपनी रिपोर्ट 1996 में प्रस्तुत की। समिति ने निम्न प्रकार टिप्पणी की:

> *"बोडोलेण्ड स्वायत्त परिषद, बोडोलेण्ड स्वायत्त परिषद अधिनियम 1993 के परिणामस्वरूप 1993 में अस्तित्व में आई। अन्य तीन परिषदें, राभा हसंग स्वायत्त परिषद अधिनियम 1955 लालुंग (तिवा) स्वायत्त परिषद अधिनियम, 1995 और मिशिंग स्वायत्त परिषद अधिनियम 1955 पारित होने के परिणामस्वरूप 1955 में गठित की गई।" सभी चारों परिषदों में अन्तरिम नामजद परिषद सदस्य हैं। इन निकायों के चुनाव होने शेष हैं। इसी बीच, 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 (प्रतिलिपि संलग्नक VIII में संलग्न), के पारित होने के परिणामस्वरूप, असम में जनजातीय क्षेत्रों में भी निर्वाचित पंचायतें अस्तित्व में आ गई हैं तथा उनका क्षेत्र अधिसूचित कर दिया गया है। ग्राम पंचायतें कार्य कर रही हैं तथा कर एकत्र कर रही हैं, आदि। राज्य के चार विधान, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, परिषदों को ऐसी ही शक्तियाँ प्रदान करते हैं जिनका इस्तेमाल पंचायतों द्वारा असम पंचायत अधिनियम, 1992 के अन्तर्गत किया जा सकता है। इस प्रकार, इस विषय में स्व: प्रबंधन दोहरेपन के कारण एक विषम और अजीब स्थिति पैदा हो गई है।"*

12.6.3.3.3 समिति का विचार था कि इन परिषदों को पाँचवीं अनुसूची के अन्तर्गत लाने से इस दोहरेपन का समाधान हो सकता है। तथापि, जहाँ तक बोडोलेण्ड क्षेत्रों को संबंध है, इन्हें संवैधानिक संशोधन, 2003 द्वारा छठी अनुसूची के अन्तर्गत विशेष दर्जा प्रदान किया गया है।

12.6.3.3.4 इन निकायों के स्थानिक तालमेल के अभाव में ग्राम सड़कें, लघु सिंचाई, मृदा कटाव का नियत्रंण और ग्राम तथा कुटीर उद्योगों जैसे क्षेत्रों में इनके कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना असम्भव है। वस्तुत: इन निकायों का वित्त-पोषण मात्र जनजातीय उप-योजना से आंवटनों पर निर्भर है तथा इस स्त्रोत से उपलब्ध परिव्यय किसी भी प्रकार से परिषदों द्वारा पूर्वानुमानित आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है। आयोग इस बात को समझता है कि इन निकायों की स्थापना करने में राज्य सरकार के लिए बाध्यकर सामाजिक-राजनीतिक और प्रशासनिक कारण थे। एक भौगोलिक रूप से असंगत क्षेत्र जिसमें जनजातियों की आकाक्षाएं प्रभावशाली नहीं थी, सम्भवत ऐसे ही अस्पष्ट समाधानों के माध्यम से पूरी

की जा सकती हैं। तथापि, इस व्यवस्था से दीर्घावधि व्यवहार्यता और इस आशंका के संबंध में चिन्ता का एक कारण है कि इस विवाद निपटान उपायों से कुछ और विवाद उत्पन्न हो सकते हैं। स्पष्टत: यह सुनिश्चित करने के प्रयास किए जाने चाहिए कि जहाँ तक सम्भव हो जनजाति विशिष्ट निकायों द्वारा निष्पादित की जाने वाली भूमिका पंचायती राज संस्थानों की भूमिका को पार न करे तथा दोनों प्रणालियों के बीच मतभेदों को दूर करने और उनका समाधान करने के लिए तंत्र स्थापित किया जाए। यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मिश्रित जातिगत संरचना के क्षेत्रों में दोहरे क्षेत्राधिकार वाले निकायों की स्थापना से विवाद में वृद्धि हो सकती है। दोनों प्रणालियों की कार्यात्मक जिम्मेदारियों को इन्हें अलग-अलग रखने से पूरा किया जा सकता है।

12.6.3.4 स्थानीय शासन के अन्य मुद्दे

12.6.3.4.1 छठी अनुसूची से बाहर केवल अरूणाचल प्रदेश ऐसा राज्य है जहाँ 73वाँ संशोधन लागू होता है। नागालेण्ड, मणिपुर और अधिकांश मिजोरम, नागालेण्ड, मणिपुर, भी अनुसूची से बाहर होने के बावजूद, उक्त संशोधन के कार्यक्षेत्र से मुक्त है। इन तीन राज्यों में से नागालेण्ड ने, कम से कम निर्वाचित ग्राम स्तर संस्थानों की व्यवस्था करने और अत्यंत सफल "संचार अधिनियम" के माध्यम से सेवाएं प्रदान करने में सामुदायिक भागीदारी कायम करने में काफी प्रगति की है। मिजोरम ने पारम्परिक ग्राम "मुखिया" पद्धति को समाप्त कर दिया है तथा उसके स्थान पर पूरे राज्य में, शहरी क्षेत्रों सहित, निर्वाचित ग्राम परिषदें स्थापित की हैं-राज्य की राजधानी आइजोल में अनेक प्रकार की परिषदें हैं। बढ़ते शहरीकरण के लिए "एकीकृत" नागरिक सुविधाएं प्रदान करने की जरूरत है जिसके लिए शहरी म्युनिसिपल माडल अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। समझा जाता है कि राज्य सरकार आइजोल के लिए एक म्युनिसिपल निकाय लागू करने के वास्ते एक विधान की परिकल्पना कर रही है। इस प्रक्रिया को तेज किया जाना चाहिए।

12.6.3.4.2 मणिपुर में, पहाड़ी क्षेत्रों में स्थिति एक चिन्ता का विषय है। यद्यपि घाटी के जिले 73वें संशोधन के अन्तर्गत शामिल हैं, तथापि पहाड़ी क्षेत्रों को छूट दी गई है। जिलों के विधायकों द्वारा भागीदारी के अधिकार के साथ निर्वाचित सदस्यों को मिलाकर छ: सांविधिक स्वायत्त पर्वतीय जिला परिषदें 1990 तक कार्यरत थी जबकि अगला चुनाव होना था। उसके बाद से चुनाव सम्भव नहीं हो सके हैं क्योंकि जनजातीय आबादी के एक बड़े भाग की मांग है कि इन क्षेत्रों को छठी अनुसूची के अन्तर्गत शामिल किया जाए। इस मांग का घाटी क्षेत्रों द्वारा इस आधार पर जोरदार विरोध किया जा रहा है कि इससे राज्य के टुकड़े हो जांएगे। इस परिषदों के अभाव में, प्राथमिक शिक्षा, पशु चिकित्सा देखभाल

और स्थानीय कला और शिल्पकला जैसी आधार स्तर सेवाएं, प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुई हैं तथा उन स्थानीय समस्याओं को उठाने के लिए एक मंच भी समाप्त कर दिया गया है। प्रतीत होता है कि दोनों ओर से सख्त रूख अपनाए जाने के कारण, गतिरोध को दूर करने के लिए काफी प्रयास नहीं किए जा सके हैं। मणिपुर ही केवल ऐसा राज्य है जहाँ अभी तक निर्वाचित ग्राम परिषदों की स्थापना नहीं की गई है तथा ग्राम मामलों से संबंधित ग्राम प्राधिकारियों में प्रमुख रूप से पारम्परिक ग्राम प्रधानों का एक निकाय शामिल है। प्रतिनिधिक आधार स्तर निकायों के अभाव में, लाभार्थियों के चयन और निर्धनता उपशमन स्कीमों के मानीटरन तथा ऐसे ही अन्य उपायों को काफी क्षति पहुंची है। यद्यपि, राज्य में जिला परिषदों के मुद्दे पर सर्वसम्मति निर्मित करने के लिए और अधिक प्रयासों की आवश्यकता है, तथापि राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम स्व: शासन लागू करने के लिए एक उपयुक्त विधान अधिनियमित करने की तत्काल जरूरत है।

12.6.3.4.3 सिफारिशें

क– असम सरकार, जनजाति विशिष्ट परिषदों/ग्राम परिषदों और पंचायती राज संस्थानों के बीच कार्यों का इस प्रकार से विभाजन कर सकती है कि अलग–अलग जनजातीय लाभार्थियों वाली स्कीमों को जनजाति विशिष्ट परिषदों को सौंपा जा सकता है, तथा क्षेत्र विकास स्कीमें पंचायती राज संस्थानों को सौंपी जा सकती हैं।

ख– राज्य सरकारें, एक ऐसी पद्धति शुरू कर सकती हैं जिससे कम से कम परिषदों की स्थापना लागतें जनजातीय उप–योजना से इतर स्त्रोतों से पूरी की जा सकें तथा इन आवश्यकताओं को अगले वित्त आयोग के पूर्वानुमानों में शामिल किया जा सके।

ग– राज्य सरकारें उन नूतन उपायों का पता लगाने के लिए उपाय करें जिन्हें क्षेत्र विकास हितों को प्रभावित किए बगैर जनजाति विशिष्ट परिषदों को सौंपा जा सके।

घ– जनजाति विशिष्ट परिषदों और पंचायती राज संस्थानों के संयुक्त प्रयासों के माध्यम से संगत क्षेत्रों में जिला तथा उप–जिला योजनाएं तैयार करने के लिए उपयुक्त मार्गनिर्देश तैयार किए जा सकते हैं।

ड.–यद्यपि, पर्वतीय जिला परिषदों के पुररूद्धार के बारे में मणिपुर में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सर्वसम्मति कायम करने के लिए सतत रूप से व कठोर प्रयास करने की जरूरत है, तथापि उस राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम स्तर निकाय कायम करने के लिए उपयुक्त विधान तैयर करने के लिए तत्काल उपाय किए जाने चाहिए।

12.6.4. क्षेत्रीय संस्थानों में क्षमता निर्माण

12.6.4.1 *पूर्वोत्तर परिषद*

12.6.4.1.1 क्षेत्र की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण "शीर्ष राज्य" संस्थान, पूर्वोत्तर परिषद अधिनियम, 1971 के अधिनियम के बाद, 1972 में स्थापित पूर्वोत्तर परिषद (एन ई सी) है। क्षेत्र का पाँच राज्यों और दो संघ राज्य क्षेत्रों में पुनर्गठन के कारण तथा आन्तरिक सुरक्षा बनाए रखने व पूर्वोत्तर के नियोजित, एकीकृत विकास को सुकर बनाने के लिए, बेहतर अन्तर-राज्य/संघ राज्य क्षेत्र समन्वय कायम करने की दोहरी जरूरतों के प्रतिक्रियास्वरूप इसकी स्थापना की आवश्यकता हुई। यद्यपि सुरक्षा समन्वयन के पहलू पर प्रारम्भिक चरणों में पूर्वोत्तर परिषद द्वारा पर्याप्त रूप से ध्यान दिया गया, तथापि असम राइफिल्स महानिरक्षक ने पदेन सुरक्षा सलाहकार के रूप में कार्य किया-इस दायितव को बाद में गृह मंत्रालय ने सम्भाल लिया तथा एन ई सी अब प्रमुख रूप से अन्तर-राज्य महत्व की विकास स्कीमें तैयार और वित्त पोषण की एक एजेन्सी है। यह क्षेत्र की जरूरतें पूरी करने वाली अनेक शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों का भी संचालन करता है।

12.6.4.1.2 प्रारंभ में, एन ईसी में पूर्वोत्तर राज्यों का "साँझा राज्यपाल" इसके अध्यक्ष के रूप में और संघ राज्य क्षेत्रों के उप राज्यपाल व सभी मुख्य मंत्री सदस्यों के रूप से सम्मिलित थे। पृथक राज्यपालों की नियुक्ति (1981) के बाद या तो असम के राज्यपाल अथवा वरिष्ठतम राज्यपाल द्वारा इसकी अध्यक्षता करने की नीति का पालन किया गया। 2002 में एन ई सी अधिनियम में संशोधन किए जाने के बाद, सिक्किम को उसकी असम्पकृतों के कारण एक सदस्य के रूप में शामिल किया गया, इस राज्य के लिए "अकेले रूप " में स्कीमें मंजूर की जा सकती हैं। इस संशोधन के जरिए, राष्ट्रपति द्वारा एन ई सी के अध्यक्ष की नामजदगी और कुछ पूर्णकालिक सदस्य नियुक्त करने का प्रावधान किया गया। इस प्रावधान के अनुसरण में और विशेषज्ञ समिति (2003) की सिफारिशों के अनुसरण में यह निर्णय लिया गया कि सामान्य रूप से केन्द्रीय पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्री एन ई सी की अध्यक्षता करेगा। परिषद में दो पूर्णकालिक सदस्य भी नियुक्त किए गए हैं।

12.6.4.1.3 अभी तक, पूर्वोत्तर परिषद के किसी व्यवस्थित समग्र संगठनात्मक मूल्यांकन के अभाव में, इसकी सफलताओं और असफलताओं के बारे में स्पष्ट रूप से कुछ कहना कठिन है। तथापि, यह एक तथ्य है कि बहुत से अन्य उच्च स्तर निकायों की भाँति, एन ई सी द्वारा सादेश्य कामकाज के निष्पादन में बाधा पहुँची है क्योंकि इसकी कार्यवाहियों में शोर-शराबा ज्यादा होता है तथा विचार-विमर्श करने पर

कम समय दिया जाता है, इसी प्रकार, बढ़े हुए राज्य योजना परिव्ययों, सांविधिक अन्तरणों के जरिए बढ़ते केन्द्रीय हस्तक्षेपों, केन्द्र प्रायोजित स्कीमों और तदर्थ आवंटनों के परिणामस्वरूप, इस क्षेत्रीय संस्थान से सदस्य राज्यों का "ध्यान बदलाव" हुआ है। तथापि यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि एन ई सी प्रायोजित स्कीमों से अन्तर-राज्य सड़क और हवाई संयोजकता सुधारने, बिजली वितरण में पर्याप्त रूप से वृद्धि करने और सामन्जस्यपूर्ण क्षेत्रीय सहयोग में काफी योग मिला है। सभी इस बात से सहमत हैं कि इसके द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित और अनुरक्षित मेडिकल, डेन्टल, तकनीकी तथा अर्ध-तकनीकी शिक्षा की अन्तर-राज्य संस्थानों से न केवल मानव संसाधनों के विकस में वृद्धि हुई है बल्कि क्षेत्र के अन्दर विभिन्न क्षेत्रों के बीच बेहतर समझबूझ में भी वृद्धि हुई है।

12.6.4.1.4 विवाद काम करने में एन ई सी की भूमिका की समीक्षा करने के लिए, प्रथमतः इसके अधिनियम की धारा 4 के अन्तर्गत मूलतः इसे दिए गए अधिदेश और वर्तमान स्थिति का हवाला दिया जा सकता है। प्रारंभ में, परिषद के लिए तीन अधिदेश थे: (क) ऐसे मुद्दों पर विचार करना जिनमें क्षेत्र के दो से अधिक राज्यों का हित था तथा इस विषय में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना; (ख) क्षेत्रीय योजनाएं तैयार करना ; और (ग) क्षेत्र में सुरक्षा समन्वय/संशोधनों के बाद, वर्तमान चार्टर निम्न प्रकार है:

(क) एक क्षेत्रीय योजना निकाय के रूप में कार्य करना;

(ख) दो अथवा अधिक राज्यों (सिक्किम को छोड़कर) के लाभ वाली परियोजनाओं का वित्त पोषण और कार्यान्वयन;

(ग) क्षेत्र में, विशेष रूप से क्षेत्रीय विकास योजनाओं के संदर्भ में क्षेत्र में विकास की गति की समीक्षा करना; और

(घ) क्षेत्र में सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए राज्यों द्वारा उठाए गए कदमों की समीक्षा करना ।

12.6.4.1.5 इस रिपोर्ट के प्रयोजनार्थ, विवाद समाधान में एन ई की की भूमिका का तीन संदर्भों में अध्ययन किया जा सकता है: एक अन्तर-राज्य समन्वय निकाय के रूप में एन ई सी; एक क्षेत्रीय योजना निकाय के रूप में एन ई सी और सार्वजनिक व्यवस्था का अनुरक्षण सुनिश्चित करने में इसकी भूमिका। इन पहलुओं पर आगामी पैराग्राफों में संक्षेप में विचार किया गया है।

12.6.4.1.6 परिषद का एक प्रमुख कार्य क्षेत्र में विकास की गति की समीक्षा करने के लिए एक मंच के रूप में कार्य करना है। परिषद के अधिदेश में संशोधन का, जिसके जरिए "दो अथवा अधिक राज्यों के सामान्य हित के मुद्दों पर विचार करने व उनके संबंध में सरकार को सलाह देने" का पहले ही उल्लेख किया जा

चुका है। "वापस लिया गया दायित्व", राज्य पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अन्तर्गत क्षेत्रीय परिषदों को दिए गए अधिदेश के समान है। यद्यपि,आयोग अध्याय 14 में बताए गए कारणों की वजह से अन्य क्षेत्रों में क्षेत्रीय परिषदों को पुनरूज्जीवित करने की सिफारिश नहीं कर रहा है, तथापि यह स्पष्ट है कि आपूर्तियों के संचलन, खाद्यान्न और यात्रियों सहित, स्थानीय कराधान नीतियों और सीमा विवाद आदि जैसे मामलों में, एन समन्वयकर्ता तथा समस्या समाधान मंत्र पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए अभी भी अत्यंत संगत है। इसलिए यह जरूरी है कि समाधान समाधान के साथ इसके सीधे गठजोड़ के साथ अन्तर-राज्य समन्वय हेतु मूल प्रावधनों को बहाल किया जाए।

12.6.4.1.7 एन ई सी अधिनियम 2002 में संशोधनों के तहत, यद्यपि परिषद के सलाहकार संबंधी कार्य क्षेत्र को कुछ संकीर्ण बना दिया गया है तथापि सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण की समीक्षा करने के इसके दायित्व का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है। पहले, यह दायित्व, एन ई सी की समन्वयक और परामर्श भूमिका के भाग के रूप में केवल अप्रत्यक्ष रूप से सौंपा गया था, फिर भी परिषद के एजेण्डा में इसे पर्याप्त स्थान प्राप्त था। 2002 के संशोधन के माध्यम से इस दायित्व को स्पष्ट रूप से सौंपे जाने से, एन ई सी के लिए प्रशासनिक मंत्रालय के रूप में, डी ओ एन ई आर के लिए समस्याएं पैदा होती हैं। डी ओ एन ई आर को क्षेत्र की सुरक्षा के क्षेत्र में कोई भूमिका नहीं सौंपी गई है। इसलिए, एन ई सी की, इस दायित्व के निपटान में गृह मंत्रालय के साथ कोई सीधी भूमिका नहीं है। बड़ा मुद्दा यह है कि किस प्रकार इस दायित्व का निपटान करने की प्रक्रियाएं तय की जाएं। यह स्पष्ट है कि यदि "आन्तरिक सुरक्षा समीक्षा " के कार्य क्षेत्र का बैठक आयोजित करने के अलावा, थोड़ा सा भी विस्तार किया जाता है तो एन ई सी सचिवालय को सुरक्षा समन्वय मुद्दों में और अधिक सक्रिय रूप से भाग लेना होगा। सार्थक समीक्षाओं को सुकर बनाने के लिए, परिषद सचिवालय को क्षेत्र में उभरती घटनाओं के साथ व्यापक रूप से विचार करना चाहिए। गृह मंत्रालय को भी इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या एन ई सी के तत्वावधान में सुरक्षा और सार्वजनिक व्यवस्था समीक्षाएं" लाभप्रद हैं जिसे गृह मंत्रालय की अपनी समीक्षाओं के माध्यम से प्राप्त नहीं किया जा सकता। गृह मंत्रालय को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि इस दायित्व द्वारा निहित एन ई सी के विशेष सशक्तीकरण के परिणामस्वरूप सामान्य रूप से क्षेत्र की कानून और व्यवस्था स्थिति के मानीटरन में लगी एजेन्सियों पर अधिक बोझ पड़ेगा। आन्तरिक सुरक्षा सम्बद्ध मुद्दों पर विचार-विमर्श का प्रभावी ढंग से समन्वयन करने अथवा उसमें मदद देने के लिए भी परिषद सचिवालय को उपयुक्त रूप से सुदृढ़ करने की जरूरत होगी। संक्षेप में, यदि आन्तरिक सुरक्षा समीक्षाओं के संबंध में एन ई सी के नए अधिदेश का सार्थक रूप से निपटान किया जाना है तो पर्याप्त प्रारम्भिक व्यवस्थाएं जरूरी हैं।

12.6.4.1.8 आन्तर-क्षेत्र विषमताएं और विकास के लाभों का असमान विभाजन पूर्वोत्तर क्षेत्र के अन्दर अधिकाधिक स्पष्ट होने से, कठिनाइयों का अनुमान लगाने और उन्हें कम करने तथा संधारणीय विकास सुनिश्चित करने में क्षेत्रीय योजना की भूमिका अधिक संगत हो जाती है। सामान्य संसाधन आधार, तुलनीय कृषि-जलवायु पद्धतियाँ और एकजैसा परिवेश जैसे कारक, सभी पूर्वोत्तर को क्षेत्रीय आयोजना का एक तर्कसंगत यूनिट बनाते हैं। नियोजित विकास के विवाद निवारण लाभों पर विचार करना, सिवाय इस बात को नोट करने के कि तालमेल की इस प्रक्रिया से इष्टतम लाभ प्राप्त करने के नुकसान की प्राय उपेक्षा की जाती है। अन्तर-राज्य परियोजनाओं से, विशेष रूप से विविध प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा और तृतीयक स्वास्थ्य देखरेख प्रदान करने वाले बहुत से संचार और अनेक क्षेत्रीय संस्थानों से निश्चित रूप से क्षेत्रीय एकता और तालमेल को बढ़ावा मिला है। तथापि, इस बात में संदेह है कि क्या देश के अत्यंत असुविधाप्राप्त क्षेत्र के विकास में सकारात्मक योगदान के बावजूद, यह एक "क्षेत्रीय योजना निकाय " के नाते अपने सांविधिक अधिदेश को पूरा करने में समर्थ रही है। एकसमान संसाधन आधारों और अवसरों के साथ, क्षेत्र के राज्य अपने बीच अधिकाधिक प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं-स्थानीय विवादों को बढ़ाने के लिए क्षमता के साथ प्रतिस्पर्धा, किन्तु उसे उत्पादक प्रयोजनार्थ उपयोग किया जा सकता है। अन्त में, यह नोट करने योग्य है कि एन ई सी अधिनियम की धारा 4, क्षेत्रीय योजना के दायित्व को विकास तथा वित्त पोषण स्कीमों की समीक्षा करने से भिन्न करती है।

12.6.4.1.9 मूल विषय यह है कि क्या एन ई सी के लिए पर्याप्त नीतिगत रूपरेखा और संसाधनों की व्यवस्था की गई है ताकि यह क्षेत्रीय योजनाएं तैयार करने और एकीकृत क्षेत्रीय विकास के संबंध में सदस्य-राज्यों का मार्गदर्शन करने में समर्थ हो सके। एक सम्बद्ध मुद्दा क्षेत्रीय योजना कार्यान्वित करने के लिए परिषद द्वारा उपयुकत क्रियाविधियां तैयार करने का है। इसी प्रकार, इस बात का समाधान करने की जरूरत है कि क्या क्षेत्र के विकास में भूमिका रखने वाले केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों ने एन ई सी को अपनी विकास पहलों में प्रभावी ढंग से शामिल किया है। योजना क्रियाविधियाँ तैयार करना और उनमें सुधार करना इस आयोग के विचारार्थ विषयों का भाग नहीं है। क्योंकि शासन और विकास पूर्वोत्तर में अन्तर-सम्बद्ध है, इसलिए क्षेत्रीय आयोजना की प्रथा शुरू करने की स्कीम की एक सम्भावित रूपरेखा का उल्लेख किया जा सकता है;

(क) क्षेत्रीय योजनाएं राज्य योजनाओं का पूरक नहीं हो सकती -ऐसे प्रयास अनुपयोगी हो सकते हैं, इसलिए क्षेत्रीय योजनाओं का प्रमुख उद्देश्य (कम से कम प्रारंभ में) असमानताएं कम करना तथा बेमानी अन्तर-राज्य प्रतिस्पर्धा से बचना होना चाहिए। ऐसी योजनाएं कार्यान्वित करने

की पद्धतियां तथा राज्यों, एन ई सी व केन्द्रीय सरकार (योजना आयोग सहित) की परस्पर जिम्मेदारियों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जाना चाहिए।

(ख) एन ई सी ऊपर बताई गई रूपरेखा के अनुसार एक क्षेत्रीय आयोजक के रूप में अपनी भूमिका निभा सकती है। यदि योजनाएं तैयार करने की प्रक्रियाओं और विधियों में योजना आयोग द्वारा इस प्रकार से संशोधन किया जाए कि एन ई सी क्षेत्र में और सदस्य-राज्यों में योजना के सभी पहलुओं में एक सक्रिय बन जाए।

(ग) इसी प्रकार, कुछ "विकास शीर्षों" को राज्य योजनाओं से हस्तान्तरित किया जा सकता है और उन पर क्षेत्रीय योजना के एक भाग के रूप में विचार किया जा सकता है।

(घ) केन्द्रीय सरकार को, एन ई सी को विभिन्न नोडल मंत्रालयों की स्कीमों और कार्यक्रमों के साथ जोड़ने के उपाय और तरीके खोजने की जरूरत है जिससे कि ऐसे कार्यक्रमों की सामग्री और कार्यान्वयन में क्षेत्र विशिष्ट मुद्दों की पर्याप्त झलक मिले।

(ड.) क्षेत्रीय योजना को संस्थागत बनाने के लिए एन ई सी सचिवालय में पर्याप्त उन्नयन और विशेषज्ञों के विविधीकरण की जरूरत होगी, जिसमें सुरक्षा सलाहकार की नियुक्ति करना शामिल है।

(च) यह सुनिश्चित करने के लिए कि क्षेत्र की "शक्तियों" का उचित रूप से इस्तेमाल किया जाए, क्षेत्रीय आयोजना विशेष रूप से संगत है। इन "शक्तियों" के अन्तर्गत अपेक्षाकृत सहज सुलभ भूमि की उपलब्धता तथा 40000 मेगावाट से अधिक की क्षमता के साथ विशाल पन विद्युत क्षमता (विशेष रूप से असम और अरूणाचल प्रदेश की) शामिल है, ताकि क्षेत्र को "राष्ट्र के लिए बिजली आपूर्तिकर्ता क्षेत्र बनाया जा सके। क्षेत्र के विकास में कुछेक प्रमुख बाधाओं को दूर करने के लिए जैसे कि बाढ़ों की रोकथाम, मृदा कटाव का नियंत्रक और बड़े पैमाने पर वाटरशेड विकास आदि क्षेत्रीय आयोजना समानरूप से संगत है। संक्षेप में, आयोजना के कतिपय "विषयों" को राज्य-इतर अथवा क्षेत्रीय स्तर पर अधिक सार्थक ढंग से आयोजित किया जा सकता है। यह वांछनीय है कि पूरे क्षेत्र के लिए एक दस वर्षीय भावी योजना तैयार की जाए जिसके अन्तर्गत मानव संसाधनों और अवस्थापना विकास जैसे क्षेत्रों को सम्मिलित किया जाए। यह व्यापक सुधार एजेण्डा भी इस योजना का भाग होना चाहिए। इस व्यापक योजना की प्रधान मंत्री द्वारा मुख्य मंत्रियों के साथ नियमित रूप से समीक्षा की जानी चाहिए।

12.6.4.2 डी ओ एन ई आर

12.6.4.2.1 पूर्वोत्तर के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण संगठनात्मक मुद्दा, प्रारंभ में, गृह मंत्रालय के अन्दर 2001 में पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास के लिए एक विभाग की स्थापना किया जाना है और इसे बाद में 2004 में एक परिपूर्ण मंत्रालय के रूप में स्तरोन्नत कर दिया गया। इस मंत्रालय के निर्माण के बावजूद, भारत सरकार (व्यवसाय आवंटन) नियमों के तहत क्षेत्र के संबंध में समग्र नोडल जिम्मेदारी डी ओ एन ई आर को नहीं सौंपी गई है। यह अभी भी गृह मंत्रालय के पास है। नियमों के अन्तर्गत डी ओ एन ई आर को केवल एन ई सी के संबध में नोडल मंत्रालय घोषित किया गया है। इसके अन्य कार्य हैं: (1) "अ-व्यपगत योग्य संसाधनों का केन्द्रीय पूल (एन एल सी पी आर) का प्रशासन; (ii) केन्द्रीय निधियों से वित्त पोषित, सिंचाई, विद्युत और सड़क निर्माण कार्यों का विकास, (iii) क्षेत्र में सड़क मार्गों और जलमार्गों का विकास, और (iv) अलग-अलग राज्यों के लिए मंजूर विशेष आर्थिक पैकेजों का कार्यान्वयन। डी ओ एन ई आर और एन ई सी के सम्वर्ती अस्तित्व से समन्वय और दोहरेपन के मुददे पैदा हो गए हैं। इससे, पूर्वोत्तर राज्य, विद्युत और जल संसाधन जैसे मोडल मंत्रालयों के विशेष मार्गदर्शन से वंचित हो गए हैं क्योंकि इन मंत्रालयों का प्राय: विचार रहता है कि जहाँ तक पूर्वोत्तर का संबंध है उनके दायित्व अब पर्याप्त रूप में डी ओ एन ई आर द्वारा सम्भाल लिए गए हैं। यह भी स्पष्ट है कि गृह मंत्रालय और डी ओ एन ई आर के बीच विकास व अन्य जिम्मेदारियों का विभाजन क्षेत्र के दीर्घावधिक विकास और कल्याण के लिए प्रेरक नहीं है। क्षेत्र में सतत विवाद स्थिति को देखते हुए यह जरूरी है कि इसका क्षेत्रीय दायित्व गृह मंत्रालय के पास बना रहना चाहिए।

12.6.4.2.2 जनवरी और जुलाई 2007 में आयोग के पूर्वोत्तर दौरे के दौरान जनता के एक बड़े वर्ग, और अधिकांश राज्य सरकारों, का यह मत था कि डी ओ एन ई आर की स्थापना से एन ई सी की कार्यकुशलता में हास के अलावा, क्षेत्र के विकास के लिए कोई अतिरिक्त लाभ नहीं हुआ है। इस बात पर सर्वसम्मति थी कि इसके विकास का सार्थक ढंग से मानीटरन दिल्ली से डी ओ एन ई आर के प्रचालन की अपेक्षा शिलांग से (एन ई सी मुख्यालय) अधिक प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। इसके साथ ही यह भी दलील दी गई कि स्थानीय रूप से उपलब्ध सीमित तकनीकी विशेषज्ञता से यह खासकर महत्वपूर्ण है कि भारत सरकार के नोडल मंत्रालय इसके जल और विद्युत संसाधनों के विकास में और अवस्थापना को सुदृढ करने में अपनी रुचि पुन: जाग्रत करें - प्रतीत होता है कि डी ओ एन ई आर के निर्माण के बाद इन मंत्रालयों ने पूर्वोत्तर राज्यों के साथ विचार-विमर्श में अपने आप को अलग-थलग कर लिया है। विभिन्न क्षेत्रकों के संबंध में डी ओ एन ई आर को सौंपी गई जिम्मेदारियों का निपटान करना कठिन है जबतक कि

मंत्रालय इन-हाउस विशेषज्ञता प्राप्त न करे जिससे कि यह संगत योजनाओं और स्कीमों का व्यवस्थित ढंग से मानीटरन करने में समर्थ हो सके। इसी प्रकार, यद्यपि एन एल सी पी आर सीमित खपत क्षमता की स्थिति में विकास हेतु एक नूतन प्रणाली उपलब्ध कराता है, किन्तु यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि इसके प्रचालन एक एकमात्र एजेन्सी द्वारा बेहतर ढंग से कार्यान्वित किए जा सकते हैं; इसके विपरीत, यह सलाह योग्य व उचित होगा यदि इस पूल से वित्त पोषित की जाने वाली योजनाओं का संचालन विषय संबद्ध मंत्रालयों द्वारा किया जाए।

12.6.4.2.3 सभी संगत कारकों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, आयोग का मत है कि क्षेत्र के संबंध में आंशिक दायित्व के साथ "पृथक" मंत्रालय का जारी रखा जाना इसके दीर्घाकालिक हित में नहीं है। इसलिए, आयोग की सिफारिश है कि डी ओ एन ई आर को समाप्त कर दिया जाए। आयोग का यह भी मत है कि एकीकृत क्षेत्रीय योजना और बेहतर अन्तर-राज्य समन्वयन के माध्यम से पूर्वोत्तर के समग्र विकास के लिए एन ई सी को और अधिक प्रभावी एजेन्सी बनाने के लिए इस रिपोर्ट में जिन उपायों की सिफारिश की जा रही है उनके अलावा डी ओ एन ई आर की कुछेक जिम्मेदारियाँ, जैसे कि एन एल सी पी आर में से मंजूरियाँ और विशेष आर्थिक पैकेजों का मानीटरन, एन ई सी द्वारा निभाई जा सकती हैं (पूल से वित्त पोषित पहलों से सम्बद्ध मंत्रालयों के साथ-साथ)।

12.6.4.2.4 पूर्वोत्तर परिषद (एन ई सी) अधिनियम के अनुसार पूर्वोत्तर परिषद की संरचना में राज्यपाल और राज्यों के मुख्य मंत्री सम्मिलित हैं। डी ओ एन ई आर की स्थापना के बाद, राष्ट्रपति ने, एन ई सी अधिनियम की धारा 3(3) के अन्तर्गत, डी ओ एन ई आर के प्रभारी केन्द्रीय मंत्री को पूर्वोत्तर परिषद के अध्यक्ष के रूप में मनोनीत किया है। यदि डी ओ एन ई आर को समाप्त किया जाता है तो इस उच्च अधिकार प्राप्त-बोर्ड के अध्यक्ष के रूप में मनोनयन के संबंध में निर्णय लेना होगा। एन ई सी की संरचना को ध्यान में रखते हुए, सुझाव है कि किसी वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री अथवा क्षेत्र के जानकार किसी विख्यात व्यक्ति को, केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के मंत्री दर्जे के साथ परिषद के सदस्य के रूप में और बाद में एन ई सी के अध्यक्ष के रूप में मनोनीत किया जा सकता है।

12.6.4.3 सिफारिशें

क– मूल "विवाद निपटान प्रावधान" को बहाल करने के लिए, एन ई सी अधिनियम, 1971 में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाए जिससे कि परिषद के लिए "क्षेत्र में दो अथवा अधिक राज्यों के परस्पर हित के मुद्दों पर चर्चा करना और उनके संबंध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना" आवश्यक हो।

ख– परिषद को, क्षेत्र में सुरक्षा के अनुरक्षण के लिए सदस्य राज्यों द्वारा किए गए उपायों की समीक्षा करने की अपनी जिम्मेदारी का प्रभावी ढंग से निपटान करने में मदद देने के लिए समर्थ बनाने के वास्ते, गृह मंत्रालय को परिषद सचिवालय को नियमित रूप से अपने "सुरक्षा समन्वय दायरे" के अन्दर रखना चाहिए। परिषद सचिवालय को, सुरक्षा समन्वयन में प्रभावी ढंग से सहायता देने के लिए उपयुक्त रूप से सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए।

ग– योजना आयोग को, प्राथमिकताओं के साथ और न कि एन ई सी द्वारा स्कीमों के आवंटन के साथ, एकीकृत क्षेत्रीय योजनाएं तैयार करने के लिए एक रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए। क्षेत्रीय योजना के अन्तर्गत, आन्तर–क्षेत्रीय, अन्तर–राज्य प्राथमिकताओं वाले क्षेत्रों पर बल देते हुए, जिनमें विवादों से बचने और क्षेत्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करने की क्षमता हो, क्षेत्रों पर बल दिया जाना चाहिए।

घ– योजना आयोग को, अपने मार्गनिर्देशों में उपयुक्त रूप से संशोधन करके, राज्य योजना निर्माण प्रक्रिया में एन ई सी की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

ड.–"अ–व्यपगत योग्य संसाधनों के केन्द्रीय पूल (एन एल सी पी आर) से निधियां मंजूर करने की जिम्मेदारी पूर्वोत्तर परिषद (एन ई सी) को सौंपी जानी चाहिए। एन ई सी को, "पूल" से वित्त पोषण के लिए प्रस्तावों की जाँच–पड़ताल करने के लिए और उनके वित्त–पोषण के संबंध में संबंधित मंत्रालयों के साथ समन्वय से, पद्धतियाँ तैयार करनी चाहिए।

च– यह वांछनीय है कि मानव संसाधनों और अवस्थापना के विकास जैसे क्षेत्रों को शामिल करते हुए पूरे क्षेत्र के लिए एक दस वर्षीय भावी योजना तैयार की जाए। शासन सुधार एजेण्डा भी इस योजना का एक भाग होना चाहिए। इस व्यापक योजना पर जल्द अनुवर्ती कार्रवाई करने के वास्ते, प्रधान मंत्री द्वारा नियमित रूप से मुख्य मंत्रियों के साथ समीक्षा की जानी चाहिए।

छ– पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय (डी ओ एन ई आर) को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा क्षेत्र के विकास की जिम्मेदारी, अवस्थापना क्षेत्रकों और अ–व्यपगत योग्य निधियों के उपयोग सहित, विषय सम्बद्ध मंत्रालयों को बहाल की जानी चाहिए तथा गृह मंत्रालय को नोडल मंत्रालय के रूप में कार्य करना चाहिए।

12.6.5 अन्य क्षेत्रीय संस्थान

12.6.5.1 एन ई सी द्वारा संचालित किए जाने वाले दस से भी अधिक अन्तर-राज्य/क्षेत्रीय तकनीकी, मेडिकल और व्यावसायिक शिक्षा संस्थान तथा एक पूर्वोत्तर केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय है जिसके सभी राज्यों में (सिक्किम सहित), असम को छोड़कर, परिसर हैं, जिन्होंने पिछले वर्षों के दौरान क्षेत्र के मानव संसाधनों के उन्नयन और संवर्धित अन्तर-राज्य समझ बूझ और सहयोग में महत्त्वपूर्ण प्रयोजन सिद्ध किया है यद्यपि इनका संघर्ष समाधान में सीधे ही बहुत कम योग है। क्षेत्र स्तरीय सार्वजनिक क्षेत्रक इकाइयाँ भी हैं जिनकी विपणन/प्रोन्नयन भूमिकाएं हैं, जिनकी स्थापना आर्थिक विकास के माध्यम से शान्ति और व्यवस्था को सुकर बनाने के उद्देश्य से की गई थी। कुछेक महत्वपूर्ण संगठनों के बारे में नीचे चर्चा की गई है:-

"नीपको" अथवा पूर्वोत्तर क्षेत्रीय विद्युत परियोजना निगम को, न केवल पूर्वोत्तर की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बल्कि क्षेत्र से बाहर बिजली बेचने के लिए भी इसकी प्रचुर पन-विद्युत उत्पादन क्षमता का विकास करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है। यद्यपि, संगठन ने लगभग 150 मे. वा. की स्थापित क्षमता सृजित की है तथापि, यह वह भूमिका निभाने में समर्थ नहीं हुआ है जिसकी क्षेत्र को विद्युत क्षेत्रक का तीव्र विकास सुनिश्चित करने की जरूरत है। विद्युत के सीमित उत्पादन से न केवल आर्थिक विकास में बाधा पहुंची है बल्कि इसकी वजह से राज्य सम्भावित राजस्व स्त्रोत से भी वंचित हो गए हैं। विद्युत मंत्रालय द्वारा क्षेत्र की क्षमता का और प्रभावी ढंग, तेजी से व इष्टतम विकास और क्षेत्र के लिए एक मार्गदर्शी नक्शा तैयार करने के लिए एक सक्षम ऊर्जा प्राधिकरण की स्थापना करने की व्यवहार्यता का पता लगाया जाना चाहिए। प्राधिकरण के तहत जो एन ई सी से जुड़ा हो, "नीपको" को भी, इसकी प्रचालन क्षमता में सुधार करने के लिए, मजबूत बनाया जाना चाहिए। प्रस्तावित प्राधिकरण को, राष्ट्रीय ग्रिड से जुड़े एक क्षेत्रीय ग्रिड की योजना और कार्यान्वयन का काम सौंपा जाना चाहिए।

'नेरामैक' अथवा पूर्वोत्तर क्षेत्रीय कृषि विपणन निगम, क्षेत्र के कृषि और बागवानी उत्पाद के विपणन, ऐसे उत्पाद के प्रसंस्करण सहित, को प्रोत्साहित करने के लिए एक सरकारी क्षेत्रक कम्पनी है। निगम ने, अत्यंत सीमित संसाधनों के साथ, प्रसंस्करण यूनिटों के संचालन के माध्यम से अपने अधिदेश को मुख्यत: पूरा करने का प्रयास किया है। यह जरूरी है कि यह पूर्वोत्तर के उत्पाद के लिए क्षेत्र से बाहर बाजार विकसित करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करे तथा उद्यमियों को प्रसंस्करण संयंत्र कायम करने में सुविधा प्रदान करे। निगम को, क्षेत्र में प्रत्येक राज्य के संबंध में "सर्वोत्तम उत्पाद" विकसित करने की एक पद्धति तैयार करके क्षेत्र के अन्दर अन्तर-राज्य प्रतियोगिता को कम करने की दिशा में भी कार्य करना चाहिए।

"एन ई एच एच डी सी" अथवा पूर्वोत्तर हथकर्घा और हस्तशिल्प विकास निगम का उद्देश्य क्षेत्र के सदियों पुराने हथकर्घा और हस्तशिल्प क्षेत्रक को प्रोत्साहित करना है, जो इसकी संस्कृति और मूल्यों का भाग हैं। इस क्षेत्रक के हास ने क्षेत्र में असंतोष की भावना पैदा करने में निःसन्देह रूप से योग दिया है किन्तु एन ई एच एच डी सी के प्रयासों ने इस गिरते क्षेत्रक में परिवर्तन लाने में वांछित योगदान नहीं किया है। कपड़ा मंत्रालय को इस संगठन की क्षमता के बारे में आकलन करना चाहिए तथा इसके पुनरूद्धार अथवा इसके समापन के संबंध में उपयुक्त उपायों की सिफारिश करनी चाहिए।

"नेडफी" अथवा पूर्वोत्तर विकास और वित्त निगम, वाणिज्यिक आधार पर क्षेत्र की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों के विकास के लिए उद्यम स्थापित करने के लिए औद्योगिक घरानों और उद्यमियों को धन प्रदान करने के लिए अनेक वित्तीय संस्थानों द्वारा संयुक्त रूप से प्रवर्तित एक कम्पनी है। संगठन की काफी अप्रयुक्त क्षमता है।

"एन ई सी" प्रवर्तकों के सहयोग से, इस संगठन के कार्यकलापों के लिए एक ठोस कार्रवाई योजना तैयार कर सकती है।

अन्त में, आयोग उन कुछ क्षेत्रीय स्तर के संस्थानों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेगा जिससे कि उनके लाभ पूरे क्षेत्र को प्राप्त हो सकें। पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय (नेहू) की स्थापना पूरे क्षेत्र के बौद्धिक विकास को बढ़ावा देने के लिए 1975 में की गई थी। यद्यपि, नेहू ने कुछ नूतन शैक्षिक कार्यक्रम विकसित किए हैं, तथापि, प्रत्येक पर्वतीय राज्य में विश्वविद्यालयों और असम में दो अतिरिक्त विश्वविद्यालयों की स्थापना से नेहू की "शैक्षिक नेतृत्व" की भूमिका में कुछ कमी आई है। इस संस्थान को, अर्थशास्त्र, राजनीति, संस्कृति, सोसायटी और पर्यावरण में, अन्तर-राज्य सीमाओं को पार करते हुए, क्षेत्रीय मुद्दों के संबंध में एक उत्कृष्टता केन्द्र के रूप में विकसित करने का एक मामला है, यह क्षेत्र के लिए उत्तम शासन और प्रशासन के लिए एक संसाधन केन्द्र के रूप में भी भूमिका निभा सकता है। इसी प्रकार, पूर्वोत्तर इन्दिरा गांधी क्षेत्रीय स्वास्थ्य और मेडिकल विज्ञान संस्थान, शिलांग काफी देर से चालू किए जाने के बाद भी, तृतीयक स्वास्थ्य देखभाल के लिए एक क्षेत्रीय केन्द्र बिन्दु (हब) के रूप में नहीं उभर पाया है- जो इसका प्राथमिक उद्देश्य था जिसकी वजह से इसकी स्थापना हुई थी, परिणामतः इस क्षेत्र में सोसायटी का बड़ा भाग "अति विशिष्ट" उपचार की सुलभता से वंचित रहा है।

12.6.5.2 सिफारिश

क– एन ई सी, पूरे क्षेत्र के लिए एकसमान विविध मुद्दों का समाधान करने के लिए विज्ञानों, समाज विज्ञानों और मानविकियों में उच्च अध्ययन के एक केन्द्र के रूप में "नेहू" का विकास करने के लिए एक विस्तृत योजना तैयार कर सकती है। एन ई सी, एन ई आई जी आर आई एच एम एस को तृतीयक स्वास्थ्य उपचार के लिए विशेष रूप से क्षेत्र में निम्न आय वर्गों के लिए, एक केन्द्र के रूप में विकसित करने के लिए राज्य सरकारों के साथ व्यवस्था को भी सक्रिय रूप से समन्वित कर सकती है।

12.6.6 भारतीय नागरिकों का राष्ट्रीय रजिस्टर

12.6.6.1 राष्ट्रीय सुरक्षा पद्धति में सुधार करने संबंधी मंत्रियों के समूह ने सिफारिश की थी कि क्योंकि गैर-कानूनी उत्प्रवास ने एक गम्भीर रूप ले लिया है, इसलिए नागरिकों तथा गैर-नागरिकों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। इसे, प्रारंभ में सीमावर्ती जिलों अथवा 20 कि. मी. की सीमा पट्टी में लागू किया जा सकता है तथा धीरे-धीरे पृष्ठ प्रदेश में इसका विस्तार किया जा सकता है। इस सिफारिश को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया था और एक प्रायोगिक परियोजना शुरू करने के लिए तत्काल कदम उठाए गए थे। इस प्रायोगिक परियोजना से यह समझने में मदद मिलेगी और नागरिकों के डाटाबेस के संकलन और प्रबंधन के संबंध में प्रक्रिया विकसित करने में मदद मिलेगी जिसे अनेक राज्यों में कार्यान्वित किया जा रहा है। एम एन आई सी के सबंध में प्रायोगिक परियोजना के अन्तर्गत प्रायोगिक क्षेत्रों में प्रत्येक व्यक्ति का विवरण एकत्र करने के लिए जनगणना दृष्टिकोण का अनुसरण किया गया है। व्यक्तियों के विवरणों के साथ-साथ 18 वर्ष और उससे अधिक आयु के व्यक्तियों के संबंध में फोटोग्राफ तथा उंगली बायोमिट्रिक्स भी संकलन किया जा रहा है। इससे अन्तत: एक विश्वसनीय वैयक्तिक पहचान पद्धति कायम होगी तथा व्यक्तियों और सेवा प्रदाता के बीच और अधिक कार्यकुशलता के साथ काम-काज में तेजी आएगी। बहु-प्रयोजन राष्ट्रीय पहचान कार्ड (एम एन आई सी), ई-शासन के लिए एक आवश्यक साधन के रूप में भी कार्य करेंगे। इनसे नागरिकों और सरकार के बीच उपभोक्ता अनुकूल अन्योन्यक्रिया उपलब्ध होगी तथा भावी गैर-कानूनी आप्रवास के लिए एक अवरोध कायम होगा। नागरिकता अधिनियम, 1955 में संशोधन कर दिया गया है तथा अब नागरिकों के पंजीकरण और कार्ड जारी करने के संबंध में एक विशिष्ट खण्ड शामिल कर दिया गया है:

खण्ड 14-क

(1) केन्द्रीय सरकार अनिवार्य रूप से भारत के प्रत्येक नागरिक का अनिवार्यतः पंजीकरण कर सकती है और उसे राष्ट्रीय पहचान कार्ड जारी कर सकती है।

(2) केन्द्रीय सरकार भारतीय नागरिकों का एक राष्ट्रीय रजिस्टर रख सकती है तथा इस प्रयोजनार्थ एक राष्ट्रीय पंजीकरण प्राधिकरण की स्थापना कर सकती है।

(3) नागरिकता (संशोधन) अधिनियम, 2003 के लागू होने की तारीख को और उसके बाद से, जन्म और मृत्यु पंजीकरण अधिनियम 1969 की धारा 3 की उप धारा (1) के तहत नियुक्त भारत का महापंजीयक, राष्ट्रीय पंजीकरण प्राधिकरण के रूप में कार्य करेगा और नागरिक पंजीकरण महापंजीयक के रूप में कार्य करेगा।

नागरिकता (नागरिकों का पंजीकरण और राष्ट्रीय पहचान कार्ड जारी करना) अधिनियम 2003 के अलावा, नियमों को दिनांक 10 दिसम्बर 2003 के जी एस आर सं. 937 (ई) के द्वारा भारत सरकार राजपत्र में अधिसूचित कर दिया गया है।

12.6.6.2 एम एन आई सी परियोजना कार्यान्वित करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है, भारत सरकार सर्वप्रथम एक राष्ट्रीय जनसंख्या रजिस्टर तैयार करने के लिए एक जनगणना किस्म का सर्वेक्षण आयोजित करेगी जिसके आधार पर कार्ड जारी किए जाएंगे। बड़ी निरक्षरता दरों और अनेक क्षेत्रों में लोगों के पास बहुत कम दस्तावेजी सबूत के अभाव में कार्यान्वयन एजेन्सियों को इस मुददे पर अत्यंत सावधानी से कार्रवाई करनी होगी। आयोग का मत है कि एम एन आई सी परियोजना को प्राथमिकता के आधार पर कार्यान्वित किया जाना चाहिए, आयोग ने यह भी नोट किया है कि अनेक केन्द्रीय और राज्य सरकार एजेन्सियां ऐसे पहचान पत्र जारी करती हैं। ऐसी सभी पद्धतियों के बीच तालमेल कायम करना आवश्यक होगा जिससे कि एम एन आई सी किसी व्यक्ति की पहचान के लिए एक बुनियादी प्रलेख बन सके और उसे एक बहु-प्रयोजन वैयक्तिक कार्ड के रूप में उपयोग में लाया जा सके।

12.6.6.3 सिफारिश

क– एम एन आई सी परियोजना को प्राथमिकता के आधार पर कार्यान्वित किया जाना चाहिए क्योंकि अनेक केन्द्रीय और राज्य सरकार एजेन्सियाँ ऐसी ही पहचान पत्र जारी करती हैं इसलिए ऐसी सभी पद्धतियों के बीच तालमेल कायम करना आवश्यक होगा जिससे कि एम एन आई सी किसी व्यक्ति की पहचान के लिए एक बुनियादी प्रलेख बन सके और उसे एक बहु–प्रयोजन वैयक्तिक कार्ड के रूप में उपयोग में लाया जा सके। इस परियोजना के कार्यान्वयन में, अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

12.6.7 क्षमता निर्माण –विविध मुद्दे

12.6.7.1 विकास प्रशासन और सम्बद्ध पहलुओं से संबंधित अनेक मामले हैं जिनका उपयुक्त रूप से समाधान और निपटान किए जाने से भावी विवादों में कमी आ सकती है। संक्षेप में निम्नलिखित की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है:

(क) प्राथमिक क्षेत्रक की आय में 55-60 प्रतिशत योगदान और माध्यमिक क्षेत्रक की आय में 55-60 प्रतिशत योगदान के साथ यह अत्यंत घटिया आधारभूत ढाँचे के कारण देश का सर्वाधिक औद्योगिक रूप से पिछड़ा क्षेत्र है। गुवाहाटी में 1996 में "पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए नई पहलों" की प्रधान मंत्री की घोषणा के अनुसरण में, पूर्वोत्तर क्षेत्र में आधारिक ढाँचे में खामियों का पता लगाने के लिए तथा उन्हें दूर करने के वास्ते सिफारिशें करने के लिए, तत्कालीन सदस्य, योजना आयोग श्री एस.पी. शुक्ला की अध्यक्षता में एक उच्च स्तरीय आयोग स्थापित किया गया था। योजना आयोग ने विनिर्धारित खामियों को दूर करने के लिए 1,03,014 करोड़ रुपए की राशि की सिफारिश की - इस सिफारिश को अभी तक कार्यान्वित नहीं किया गया है, इस सिफारिश को तथा साथ ही विकास पहल संबंधी एन ई सी के कार्य बल की रिपोर्ट को ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा पूर्वोत्तर में आधारभूत ढाँचे में कमियों को पूरा करने के लिए निधियों की जरूरत का आकलन करने के लिए आधार बनाया जाना चाहिए।

(ख) औद्योगिकरण को प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यापक नीतिगत संरचना तैयार की जानी चाहिए ताकि क्षेत्र को एक प्राथमिकतापूर्ण निवेश स्थल के रूप में प्रोत्साहित किया जा सके। सम्भाव्य निवेशकों द्वारा क्षेत्र के एक आकर्षक स्थल के रूप में शक्तियों का लाभ उठाने के वास्ते एक बडा जागरूकता अभियान आयोजित किया जाना चाहिए। सीमित उद्यमी आधार में सुधार करने के लिए स्थानीय उद्यमियों के वास्ते एक बड़ा क्षमता निर्माण प्रयास आयोजित किया जाना चाहिए। एक आवश्यक प्रथम उपाय के रूप में क्षेत्र की सरकारों के क्षेत्र के अन्दर से और क्षेत्र के बाहर से, प्रबंधकीय और प्रौद्योगिकीय नेतृत्व प्रदान करने के वास्ते, मुक्त रूप से संचलन और रोजगार की अनुमति प्रदान की जानी चाहिए। पूर्वोत्तर औद्योगिक नीति 1997 को, उपयुक्त संशोधन करने के बाद दस वर्ष के लिए बढ़ा दिया जाना चाहिए। क्षेत्र के औद्योगिक विकास के लिए पर्यटन को एक प्राथमिकतापूर्ण क्षेत्र के रूप में विनिश्चित किया जाना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा के प्रोत्साहन, आई टी आई

और पालिटेक्निकों तथा होटल प्रबंधन संस्थानों की स्थापना के माध्यम से दक्षता उन्नयन और दक्षता निर्माण को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की जानी चाहिए। मेडिकल तथा स्वास्थ्य देखभाल कार्यकर्ताओं और शिक्षा (विशेष रूप से अंग्रेजी) जैसे विशेषज्ञों की सेवाएं एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

(ग) क्षेत्र में सड़क निर्माण के संबंध में एक व्यवस्थित दृष्टिकोण अपनाए जाने की जरूरत है। एक क्षेत्र विशिष्ट परिवहन विकास निधि कायम की जानी चाहिए जिसमें सभी स्त्रोतों से निधियाँ एकत्र की जाएं तथा उस धन का उपयोग सभी महत्वपूर्ण गलियारों के निर्माण के वित्त-पोषण के लिए किया जा सकता है। पूर्वोत्तर क्षेत्र के विकास के लिए एक भावी परिवहन योजना तैयार करने के वास्ते पूर्वोत्तर परिषद द्वारा प्रायोजित अध्ययन में निकटवर्ती देशों के साथ संयोजकता प्रदान करने के लिए कतिपय सड़क गलियारों की सिफारिश की गई है। सिफारिश किए गए गलियारों की बारीकी से जाँच की जानी चाहिए, प्राथमिकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए तथा व्यवहार्यता रिपोर्टें तैयार की जानी चाहिए। क्षेत्र की अनूठी जलवायु, स्थलाकृति, भूगर्भशास्त्र और प्रशासन की वजह से यहाँ सड़क निर्माण और प्रबंधन प्रथाएं देश में अपनाई जाने वाली प्रथाओं से भिन्न हैं। क्षेत्र में, केन्द्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान के अधीन सड़क अनुसंधान के संबंध में एक अलग इकाई कायम की जानी चाहिए ताकि सड़क और पुल निर्माण कार्यकलापों के लिए प्रौद्योगिकीय सहायता प्रदान की जा सके।

(घ) क्षेत्र में बेरोजगारी की दर अखिल भारतीय आंकड़ों की तुलना में लगभग दुगनी है। शहरी क्षेत्रक में पुरूष युवा बेरोजगारी 77 प्रतिशत से अधिक अत्यंत ऊँची है जबकि राष्ट्रीय औसत लगभग 40 प्रतिशत है।[53] इसके लिए रोजगार अवसर पैदा करने के वास्ते क्षेत्र के संबंध में एक कार्रवाई योजना तैयार करने की जरूरत है जिसके अन्तर्गत उद्योगों और सम्बद्ध क्षेत्रकों को शामिल किया जाना चाहिए। बड़े पैमाने पर क्षमता निर्माण पर विशेष बल दिए जाने की जरूरत है जिससे कि शिक्षित बेरोजगार युवा निजी क्षेत्रक में, विशेष रूप से सेवा उद्योग क्षेत्रक में, रोजगार प्राप्त कर सकें। इस प्रयोजनार्थ क्षेत्र के युवाओं के प्रशिक्षण में देश भर में विभिन्न विख्यात क्षमता निर्माण संस्थानों द्वारा विशेष कार्यक्रम तैयार करने की जरूरत है जिससे कि वे निजी क्षेत्रक में रोजगार प्राप्त कर सकें। नर्सों की विशाल अन्तर्राष्ट्रीय मांग को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित नर्सों के लिए विशेष अवसरों की व्यवस्था करनी होगी। आई टी आई को

[53] एन. श्रीवास्तव और ए. दुबे, ""अनएम्प्लायमेंट इन नार्थ ईस्टर्न रीजन आफ इण्डिया: एन इन्टर-स्टेट कम्पेरीजन।"

आधुनिकीकृत और स्तरोन्नत करने की जरूरत है तथा समय की आवश्यकता के अनुसार नए पाठयक्रम प्रारंभ किए जाने चाहिए।

(ड.) पन विद्युत क्षमता का पर्याप्त रूप से दोहन करने, बड़े पैमाने पर बाढ़ नियंत्रण आयोजित करने और मृदा संरक्षण उपायों और प्राकृतिक संसाधनों के विकास की जरूरत पर एक क्षेत्रीय योजना निकाय के रूप में एन ई सी के सुदृढ़ीकरण के संदर्भ में संक्षेप में चर्चा की गई है। इन उपायों से ऐसे अत्यावश्यक संसाधन सुनिश्चित होंगे जिससे कि स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं की खपाने की क्षमता में वृद्धि के साथ-साथ क्षेत्र का संधारणीय विकास हो सके। पन विद्युत क्षमता का दोहन करके प्राप्त होने वाली रायल्टी और अतिरिक्त आय तभी सम्भव होगी यदि ऐसे उपाय सफल हो जाएं। इन बातों को क्षेत्र के आधारभूत ढाँचे के विकास और उपयुक्त आर्थिक कार्यकलापों के लिए न केवल क्षेत्रीय आयोजना प्रयोजनार्थ बल्कि बड़ी निवेश परियोजनाएं तैयार करते समय भी (केन्द्रीय क्षेत्रक अथवा अन्तर्राष्ट्रीय रूप से वित्त पोषित), ध्यान में रखा जाना चाहिए।

(च) यद्यपि भू-राजनीतिक कारको और एक वृद्धिशील एकीकृत अर्थव्यव्स्था की अनिवार्यताएं बाध्य करती हैं कि भारत को एक देश के रूप में अपने पूर्व में देशों के साथ व्यापार, वाणिज्य और वित्त के क्षेत्र में और अधिक सक्रिय रूप से भाग लेना चाहिए, तथापि भौगोलिक स्थिति, पूर्वोत्तर में राज्यों के लिए, जहाँ संसक्त क्षेत्र हैं, विशेष अवसर प्रदान करती है, जहाँ क्षेत्रीय आर्थिक विकास के फल प्राप्त होने लगे हैं। इसलिए, क्षेत्र का दीर्घावधिक आर्थिक विकास, "पूर्व की ओर देखने की नीति" अपनाने के लिए दृढ़ कार्यनीतियों पर अमल करने के साथ निकटतः जुड़ा है। इस क्षेत्र के पूर्व में स्थित राष्ट्रों की अर्थव्यवस्थाओं की शक्तियों का पूर्वोत्तर की अर्थव्यवस्था पर उत्प्रेरक प्रभाव पड़ सकता है यदि उचित रूप से कार्रवाई की जाए और स्थानीय सोसायटी को सभी संक्रमणशील घटनाओं-आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और सुरक्षा- से निपटने के लिए तैयार किया जा सके। एक ठोस एजेण्डे की जरूरत है जिससे कि संगत उद्देश्य प्राप्त हो सके-एक एजेण्डा जिसे क्षेत्र की राज्य सरकारों को सक्रिय रूप से शामिल करके तैयार किया जाना चाहिए। सिक्किम और चीन लोक गणराज्य के तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र के बीच सीमा पार व्यापार, यद्यपि थोड़ी मात्रा में, हाल ही में पुनः शुरू होने से सही अनुभव प्राप्त होना चाहिए कि किस प्रकार यह कार्य किया जाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार के अन्दर, नीति को कार्य रूप देने के लिए जिम्मेदारियों का उपयुक्त रूप से विभाजन भी आवश्यक है जिसके तहत विदेश कार्य मंत्रालय और अन्य नोडल मंत्रालय सुनिश्चित एकसमान उद्देश्यों के साथ परस्पर रूप से पूरक भूमिका अदा करें।

(छ) यद्यपि क्षेत्र में सभी राज्यों को देश के रेल नक्शे के तहत लाने के संबंध में कुछ प्रगति हुई है, तथापि इस कार्य को ब्राडगेज संयोजकता कायम करके और परियोजनाओं को जल्द पूरा करके और सार्थक बनाया जाना चाहिए।

(ज) संस्थागत वित्त प्रणालियों के अभाव में, साहूकारों का साम्राज्य जारी है। बैंकों के अन्तर्गत क्षेत्रों से अदोहित क्षमता की बड़ी मात्रा में कमी का पता चलता है। रिजर्व बैंक व अन्य वित्तीय संस्थानों की नीतियों में और ढील प्रदान करके तथा उन्हें संवेदी बनाकर, बैंक शाखाएं व अन्य ऋण संवितरण केन्द्र स्थापित करने के लिए और अधिक प्रयास किए जाने की जरूरत है। इसी प्रकार, नव-स्थापित आर्थिक कार्यकलापों के लिए पर्याप्त मात्रा में जोखिम कवरेज की जरूरत है; यद्यपि बैंक शाखाओं के विस्तार में कुछ प्रगति हुई है तथापि बीमा क्षेत्रक में स्थिति अत्यंत असंतोषजनक बनी हुई है।

(झ) नागालेण्ड में, म्यॉमार के निकट सीमावर्ती गांवों की रक्षा करने के लिए ग्राम गार्डों की एक पद्धति है। लगभग 5000 ग्राम गार्ड हैं जिनके तहत मोन और त्युएनसंग जिले तथा मेलुरी उप-प्रभाग सम्मिलित हैं। उन्हें मात्र 500 रुपए का मासिक वेतन अदा किया जाता है तथा पूरे जीवन में एक बार वर्दी जारी की जाती है तथा वे एक आग्नेयस्त्र से सज्जित हैं। कहा जाता है कि ग्राम गार्ड की पद्धति ने गाँवों को मिलेटेंट आक्रमणों से बचाने और उनके गाँवों को सुरक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अनुभव किया जाता है कि उनकी कारगरता में वृद्धि हो सकती है यदि उनके मासिक पारिश्रमिक में वृद्धि कर दी जाए तथा उन्हें बेहतर शस्त्रों से सज्जित किया जाए।

(ञ) पूर्वोत्तर में उच्च शिक्षा अवस्थापना के अभाव के कारण बड़ी संख्या में छात्र शिक्षा प्राप्त करने के लिए देश के अन्य भागों में चले जाते हैं जिसकी वजह से जनशक्ति और वित्तीय संसाधन दोनों की निकासी होती है। इस प्रकार अनुमान है कि नागालेण्ड से दस हजार तक छात्र शिक्षा के लिए देश के अन्य भागों में चले जाते हैं। इससे पूर्वोत्तर में व्यावसायिक और उच्च शिक्षा के लिए उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना करने की जरूरत को पुन: बल मिलता है।

(ट) पूर्वोत्तर राज्यों को बहुत से जनजातीय गाँवों में, विवादों का निपटान, विशेष रूप से भूमि से संबंधित विवादों का निपटान प्रथागत कानूनों के तहत ग्राम परिषदों द्वारा किया जाता है। प्रथागत न्यायिक पद्धति का एक गहन अध्ययन करने की जरूरत है जिससे कि विद्यमान मानदण्डों और प्रथाओं की बेहतर समझ और प्रसार हो सके।

(ठ) पूर्वोत्तर में औपचारिक भू-अभिलेखों के अनुरक्षण की पद्धति असंतोषजनक है तथा जनजातीय क्षेत्रों में वस्तुतः नदारद है। इसकी वजह से भू-धारकों को बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थानों से ऋण प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करने में रूकावट आती है तथा बड़ी संख्या में भू-सम्बद्ध विवाद उत्पन्न होते हैं। भू-अभिलेखों के अनुरक्षण की एक विश्वसनीय पद्धति विकसित करने की जरूरत है।

12.6.7.2 सिफारिशें

क– उच्च स्तरीय आयोग की "ट्रांसफोर्मिंग दि नार्थ–ईस्ट" नामक अपनी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों और पूर्वोत्तर परिषद द्वारा तैयार "विकास पहलों के संबंध में कार्य बल" की रिपोर्ट को क्षेत्र में आधारभूत ढाँचे में अन्तरालों को पूरा करने के लिए कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

ख–क्षेत्र को एक प्राथमिकतापूर्ण निवेश स्थल के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यापक रूपरेखा तैयार किए जाने की जरूरत है।

ग– महत्वपूर्ण सड़क गलियारों के निर्माण के वित्त पोषण के लिए एक परिवहन विकास निधि कायम की जानी चाहिए।

घ– "पूर्व की ओर देखने" की नीति को व्यापक रूप से कार्यान्वित करना यद्यपि पूरे देश के लिए संगत है, तथापि यह पूर्वोत्तर के दीर्घावधिक विकास के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, इसे कार्यान्वित करने के लिए एजेण्डा राज्य सरकारों के सक्रिय सहयोग से तैयार किया जाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के बीच नीति के कार्यान्वयन और आयोजना के संबंध में जिम्मेदारी का स्पष्ट विभाजन शीघ्र से शीघ्र किया जाना चाहिए।

ड.–क्षेत्र में रेल संयोजकता में प्राथमिकता के आधार पर सुधार किया जाना चाहिए।

च– रिजर्व बैंक व अन्य वित्तीय संस्थानों की नीतियों में और ढील देकर तथा उन्हें संवेदी बनाकर बैंक शाखाएं व अन्य ऋण वितरण केन्द्रों की स्थापना करने के लिए अधिक प्रयास किए जाने की जरूरत है।

छ– पूर्वोत्तर में व्यावसायिक व उच्च शिक्षा के लिए उत्कृष्ट केन्द्र स्थापित करने की जरूरत है। इसके अलावा, तकनीकी शिक्षा के लिए आई टी आई जैसी सुविधाओं का बड़े पैमाने पर

विस्तार किया जाना चाहिए जिससे कि दक्ष कार्य बल का एक पूल कायम किया जा सके और उद्यमी क्षमता व साथ ही रोजगार का भी सृजन हो सके।

ज– प्रथागत न्यायिक पद्धति का एक गहन अध्ययन करने की जरूरत है जिससे कि विद्यमान मानदण्डों और प्रथाओं की बेहतर समझ और प्रसार हो सके।

झ– पूर्वोत्तर के लिए भू–अभिलेखों के अनुरक्षण की एक विश्वस्तीय पद्धति तैयार करने की जरूरत है।

13

संघर्ष प्रबंधन के लिए प्रचालनात्मक व्यवस्था

13.1 सिविल सोसायटी में संस्थानों के अलावा अनेक संवैधानिक, सांविधिक और कार्यपालक-संस्थान हैं, जिनमें विवाद निवारण और समाधान की भूमिका निभाने की क्षमता है। इनमें से अनेक संस्थान, उदाहरण के लिए पुलिस, संघर्षपूर्ण स्थितियों में सबसे पहले दखल देती है और इसलिए उनकी कार्रवाई अथवा कार्रवाई न करने से, वस्तुत: या तो संघर्ष रुक सकता है अथवा पैदा हो सकता है। इस अध्याय में चर्चा संघर्ष समाधान में राज्य की इन एजेन्सियों अथवा सिविल सोसायटी की पद्धतियों की भूमिका तक सीमित है।

13.2 कार्यपालिका तथा संघर्ष प्रबंधन – पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेसी

13.2.1 आयोग ने "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवीं रिपोर्ट में, व्यवस्था बनाए रखने तथा शान्ति भंग की घटनाओं को रोकने में पुलिस तथा मजिस्ट्रेसी की भूमिका पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है तथा सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए पुलिस और मजिस्ट्रेसी की कारगरता में वृद्धि करने के लिए व्यापक रूप से सिफारिशें की हैं। यहां, पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेसी में क्षमता निर्माण पर संक्षिप्त रूप से विचार करने का प्रस्ताव है जिससे ये एजेन्सियां संघर्ष समाधान में और अधिक प्रभावी बन सकें क्योंकि "संघर्षपूर्ण स्थितियों " में ये प्राय: सर्वप्रथम दखल देती हैं।

13.2.2 जैसाकि आयोग ने "स्थानीय शासन" पर अपनी छठी रिपोर्ट में बताया है, क्षमता निर्माण का अर्थ अलग-अलग कार्यकर्ताओं की क्षमता में उतनी ही वृद्धि करना है जितना कि उन संगठनों की क्षमताओं में वृद्धि करना जिनकी ऐसे कार्यकर्ता सेवा करते हैं। यद्यपि दोनों परस्पर रूप से जुड़े हैं, तथापि अलग-अलग क्षमताओं में वृद्धि करने से अनिवार्यत: इनकी संस्थागत क्षमता में वृद्धि नहीं होगी जब तक कि दोनों उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ठोस उपाय नहीं किए जाएं। आयोग को उम्मीद है कि पुलिस सुधारों के संबंध में उसकी सिफारिशों से पुलिस को एक बड़ी भूमिका निभाने में मदद मिलेगी जो अपराध रोकथाम और पता लगाने तथा सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के सामान्य पुलिस व्यवस्था कार्यों के अलावा संघर्ष रोकथाम में और अधिक कारगर भागीदारी निभाने तक हैं।

13.2.3 पुलिस प्रशिक्षण में पर्याप्त सुधारों और नवीनताओं के बावजूद, उभरते विवादों का पता लगाने और उनमें वृद्धि को अग्रिम रूप रोकने की "पुलिस भिन्न पद्धतियाँ विकसित करने में पुलिस कार्मिकों को

संवेदी बनाने के लिए काफी कुछ किया जाना शेष है। दूसरे शब्दों में, उनका प्रशिक्षण और अनुस्थापन इस प्रकार से किया जाना चाहिए जिससे पुलिस कार्मिकों के बीच सभी स्तरों पर एक जागरूकता पैदा हो कि उनकी जिम्मेदारियों के चार्टर में विवादों का निपटान एक स्पष्ट और महत्वपूर्ण घटक है।

13.2.4 कटिंग एज स्तर पर कार्यपालक मजिस्ट्रेसी, आपराधिक न्याय के प्रशासन की प्रक्रिया से अधिकाधिक अलग-थलग पड़ गई है। यद्यपि जिला मजिस्ट्रेट की समग्र समन्वयक भूमिका के कारण पद्धति में कुछ मात्रा में भागीदारी और जवाबदेही है तथापि "अधीनस्थ" कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की दण्ड प्रक्रिया संहिता की कुछ निवारक धाराओं के अन्तर्गत तथा "कानून व व्यवस्था" डयुटी पर पुलिस के साथ जाने में बहुत सीमित भूमिका है। ऐसा पूर्व जमींदारी क्षेत्रों से ही विशेष रूप से है जहाँ पुलिस और राजस्व दोनों ही श्रेणी के अधिकारियों द्वारा प्रभावी उप-प्रभागीय स्तर कानून और व्यवस्था प्रबंधन की बहुत थोड़ी परम्परा रही है। निवल परिणाम यह है कि प्रवेश स्तर और सेवाकालीन प्रशिक्षण के दौरान भी, स्थानीय विवादों में मध्यस्था करने में वार्ताकार के रूप में कार्य करने में कार्यपालक मजिस्ट्रेसी की भूमिका पर बल देने का अभाव है जो इस तथ्य के बावजूद है कि राजस्व अधिकारियों के रूप में कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की सार्वजनिक अन्योन्यक्रिया सक्रिय बनी हुई है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि राजस्व अधिकारियों के रूप में कार्य करते हुए, कार्यपालक मजिस्ट्रेटों को संघर्ष प्रबंधन, इसकी रोकथाम और विनियमन में अधिक सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इसके फलस्वरूप राज्य सरकारों को विवाद समाधान में एक नूतन संस्थागत दृष्टिकोण अर्थात "पुलिस-कानून और व्यवस्था " प्राचल से इतर दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत होगी। इस पहलू पर इस अध्याय के एक बाद के खण्ड में, संघर्ष प्रबंधन "दायरे" में पंचायतों को शामिल करने पर और आगे विचार किया गया है।

13.2.5 सिफारिशें

क– आयोग द्वारा "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवी रिपोर्ट (अध्याय 5 और 6) में सिफारिश किए गए पुलिस सुधारों से पुलिस की संघर्ष समाधान में और अधिक प्रभावी व सक्रिय भूमिका निभाने की संस्थागत क्षमता में वृद्धि होने की सम्भावना है। इसलिए आयोग इन सिफारिशों पर पुनः बल देता है।

ख– पुलिस अधिकारियों के दायित्व में, उनके ड्युटी चार्टर में संघर्ष समाधान को शामिल करने के लिए, विस्तार करते हुए, उपयुक्त प्रावधान शामिल करने के लिए पुलिस संहिताओं

को अद्यतन बनाया जाना चाहिए। इस विषय पर संगत इनपुटों की व्यवस्था करने के लिए प्रशिक्षण प्रारूप में भी उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए। समग्र निष्पादन का मूल्यांकन करते समय इस "शीर्ष" के अन्तर्गत उपलब्धियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

ग– राजस्व व अन्य क्षेत्र स्तर अधिकारियों के रूप में अपनी हैसियत से कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की जनता के साथ व्यापक अन्योन्यक्रिया होती है तथा उन्हें विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कीर्ति प्राप्त होती है। क्षेत्र की स्थितियों के बारे में उनकी जानकारी व उनके सामान्य सम्मान के वजह से वे स्थानीय विवादों में मध्यस्थता करने के लिए वार्ताकार के रूप में कार्य करने के लिए अच्छी स्थिति में होते हैं; राज्य सरकारों द्वारा इस संबंध में प्रक्रियाएं तथा संस्थागत प्रणाली कायम करने की जरूरत है।

13.3 न्यायिक देरियां तथा वैकल्पिक विवाद समाधान

13.3.1 किसी सभ्य समाज में, विवाद समाधान का सर्वोत्तम मंच न्यायपालिका है। कहा जा सकता है कि "विवाद" "संघर्ष" से भिन्न है क्योंकि संघर्ष के अन्तर्गत विरोधी दावे करने वाले बड़ी संख्या में "विरोधी" सम्मिलित हैं- अनेक संघर्ष प्राय: न्यायिक देरियों के कारण विवादों का निपटान न होने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं।

13.3.2 न्याय का प्रशासन केवल कानून के उत्तम ज्ञाताओं द्वारा ही सुचारू रूप से, शीघ्र और निष्पक्ष रूप से किया जा सकता है। न्यायिक परम्परा के सदा से इकटठे होते हुए बकाया मामले हमारे समाज में संघर्षों की विद्यमानता के प्रमुख कारक हैं। न्यायिक देरियों की इस सतत समस्या के ब्योरों पर विचार करना इस आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं है। तथापि, आयोग यह टिप्पणी करना चाहेगा कि न्यायिक अधिकारियों की अत्यंत कमी और न्यायिक कार्यवाहियों को शासित करने वाली कुछेक प्रक्रियाओं की विलम्बता प्रवृत्ति, न्यायपालिका के जरिए विवादों के धीमे समाधान के बुनियादी कारणों में शामिल हैं। तथापि यह नोट करना सुखद है कि उच्चतम न्यायालय के उत्तरोत्तर मुख्य न्यायाधीशों ने अनेक नूतनाओं के माध्यम से देरी की समस्या का समाधान करने के प्रयास किए हैं जैसे कि कतिपय श्रेणी के अपराधों के लिए तीव्रगामी न्यायालयों की स्थापना, निपटान की गति का मानीटरन करने के लिए आई टी तकनीकों का अनुप्रयोग और निचली अदालतों के कामकाज पर नजर रखने के लिए उच्च न्यायालयों की निरीक्षण मशीनरी को सुदृढ़ करना आदि। आयोग को उम्मीद है कि 13वाँ वित्त आयोग न्यायिक बकायों के मुद्दे को प्राथमिकता प्रदान करेगा तथा न्याय के प्रशासन के

लिए पर्याप्त संसाधन आवंटन पर विचार करेगा जिससे कि समस्या के आकार के अनुरूप पैमाने पर कार्मिकों और अवस्थापना का उन्नयन सम्भव हो सके।

13.3.3 लोक अदालतों की नूतनता केवल कुछ सीमा तक सफल हुई है। वैवाहिक विवादों, बीमा और दुर्घटना क्षतिपूर्तियों और दावों आदि के निपटान के मामलों को छोड़कर, पद्धति न्यायिक बकायों को कम करने में असफल रही है। बार के कुछ सदस्यों द्वारा लोक अदालतों का समर्थन न किया जाना इसकी सीमित सफलता का सम्भवत: एक कारण है। एक अन्य पहलू जो उल्लेखनीय है वह उच्च न्यायपालिका द्वारा सतत रूप से अपनाया जाने वाला यह रूख है कि विशिष्ट अर्ध-न्यायिक अधिकरण, संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालयों को पर्यवेक्षी अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं । इस रूख से विशिष्ट विधानों के तहत न्याय प्रशासित करने की एक बड़ी पहल को बाधित कर दिया गया है जिसे 1970 के दशक के दौरान बड़े पैमाने पर शुरू किया गया था। विडम्बना है कि इस न्यायिक व्याख्या ने हमारी अर्थव्यवस्था के बहुत से क्षेत्रों में विवाद समाधान को विपरीत रूप से प्रभावित किया है तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में बकायों के मामलों में अपार रूप से वृद्धि हुई है।

13.3.4 सिफारिशें

क– अधीनस्थ न्यायपालिका की अवस्थापना और कार्मिकों के उन्नयन के लिए संसाधनों के आवंटन में संघीय राजकोषीय अन्तरणों में उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

ख– लोक अदालतों की पद्धति द्वारा अपना आशातीत उद्देश्य पूरा करने और विशेष रूप से इस दृष्टिकोण को सफलता का एक अवसर प्रदान करने के लिए बार के सदस्यों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने पर अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

ग– विधि मंत्रालय को, अर्ध–न्यायिक प्राधिकरणों और निकायों के निर्णयों को "अधिक अन्तिम रूप देने" के साधनोपायों की खोज करने के लिए उच्च न्यायपालिका की बैंच और बार के साथ संवाद आरंभ करना चाहिए।

13.4 सिविल सोसायटी और संघर्ष समाधान

13.4.1 ऐसे संघर्ष जिनमें विवादास्पद पहचान पर बल न दिया जाए समाज द्वारा और सामाजिक हस्तक्षेप के लिए विशेष रूप से साध्य हैं। तमिलनाडु में कावेरी डेल्टा के किसानों द्वारा, डेल्टा क्षेत्रों के लिए

कर्नाटक में जलाश्यों से कावेरी जल के छोड़े जाने के संबंध में अपने "आप्रवाही" प्रतिपक्षियों के साथ एक समझौता करके की गई पहल एक उल्लेखनीय मामला है। इस पहल के वास्तविक परिणाम पर ध्यान दिए बिना किसानों की यह एक तात्कालिक प्रक्रिया थी।

13.4.2 सभी सोसायटियों में, कुछ तत्व संकीर्ण पक्षपातपूर्ण हितों से ऊपर उठने में समर्थ होते हैं। इनके उदाहरणों में, संघर्ष क्षेत्रों में लम्बी कार्यावधि वाले एन जी ओ, चर्च संगठन और सामाजिक कार्यकर्ता सम्मिलित हैं जो हमारे देश में विभिन्न विभागों में साम्प्रदायिक, जातिगत, मिलिटेंट और वंशानुगत विवादों वाले क्षेत्रों में प्रमुख रूप से विद्यमान और सक्रिय हैं। यह भी समझा जाना चाहिए कि जो समुदाय अपने मामलों पर नियंत्रण रखते हैं वे अधिक आत्म-विश्वासी और आन्तरिक समस्याओं को अपने आप हल करने की बेहतर स्थिति में होते हैं। यह सामाजिक पूंजी निर्माण का एक महत्वपूर्ण पहलू है और इस पर उस विषय संबंधी अपनी रिपोर्ट में आयोग द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया जाएगा।

13.4.3 बड़ी विवाद स्थितियों में "ट्रेक II" पहलों में भी "विवाद समाधान" के रूप में बड़ी क्षमता होती है। यद्यपि, प्रभावित लोगों के साथ खाइयों को पाटने की तकनीक समय पर खरी उतरी है तथापि हाल ही में अनौपचारिक मध्यस्थों को कठिन विवादास्पद स्थितियों में अधिकारिक वार्ताकारों के जरिए पूरक बनाने के भी प्रयास किए गए हैं। एन जी ओ को कब और कैसे शामिल किया जाए अथवा "ट्रैक II" उत्तम हितेषियों के सद्प्रयासों का कब और कैसे इस्तेमाल किया जाए इस संबंध में कोई खास नियम नहीं है, फिर भी इस मामले में एक सामान्य नीति मार्गनिर्देश तैयार किए जाने की जरूरत है । यह एन जी ओ के मामले में विशेष रूप से संगत है क्योंकि किसी खास विवाद स्थिति में विशिष्ट संगठनों को शामिल करने के बारे में कुछ विरोधी संकेत प्राप्त हुए थे।

13.4.4 सिविल सोसायटी संगठनों व अन्य गैर-सरकारी स्त्रोतों को शामिल करने के लिए एक उपयुक्त नीतिगत रूपरेखा तैयार करने की जरूरत है ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि उन्हें जब भी आवश्यक हो एक संधारणीय ढंग से तथा व्यवस्थित ढंग से शामिल किया जा सके न कि तदर्थ आधार पर, सुस्त तरीके से जब कोई संकट हो और उनकी सार्थक भागीदारी की योजना तैयार करने की बहुत कम गुंजाइश अथवा समय हो। स्थानीय विवादों की रोकथाम और समाधान में पंचायती राज संस्थानों को शामिल करने की जरूरत को मजबूती के साथ प्रोत्साहित किया जाना चाहिए क्योंकि पुलिस और कार्यपालक मजिस्ट्रेसी की समय पर खरी उतरने वाली भूमिकाओं को पूरक बनाने के लिए इन निकायों में अपार क्षमता विद्यमान है।

13.4.5 सिफारिशें

क- यद्यपि, सेवाएं प्रदान करने में सुधार करने और सामुदायिक आत्म-निर्भरता निर्मित करने के लिए सामाजिक पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित किए जाने की जरूरत है तथापि यह जरूरी है कि ऐसे प्रयासों के अन्तर्गत "इन-हाउस" विवाद समाधान करने में समुदायों को शामिल करने का भी प्रयास किया जाए।

ख- विवाद समाधान में, पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों और साथ ही राज्य की "पुलिस-भिन्न" संस्थाओं को भी शामिल करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा सामान्य नीति मार्गनिर्देश तैयार किए जाने की जरूरत है।

ग- केन्द्र प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक स्कीमों के मार्गनिर्देशों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि यह आवश्यक बनाया जा सके कि लाभार्थी क्षमता निर्माण के तहत स्थानीय विवाद प्रबंधन में आत्म निर्भरता विकसित करने पर भी बल दिया जाए।

14

संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था

14.1 प्रस्तावना

14.1.1 राज्य की रूपरेखा के अन्दर अनेक संस्थान और पद्धतियां हैं जिनका कार्य सम्भावित और वास्तविक संघर्ष स्थितियों से निपटना है। इनमें से कुछेक को संवैधानिक दर्जा प्राप्त है तथा अन्यों का गठन संविधियों अथवा कार्यकारी आदेशों के माध्यम से किया गया है। इन संस्थानों में वे सम्मिलित हैं जो संघर्ष स्थितियों में सामान्यत: सर्वप्रथम उत्तरदाता होते हैं और उनके बाद के प्रबंधन में भी भूमिका निभाते हैं। इस संबंध में उनकी भूमिका पर आयोग द्वारा "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवीं रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक और वर्तमान रिपोर्ट के तेरहवें अध्याय में चर्चा की गई है। इसी प्रकार स्थानीय स्व: शासन के प्रजातान्त्रिक संस्थानों की भूमिका पर भी, ग्रामीण क्षेत्रों सहित, आयोग की "स्थानीय शासन की छठी रिपोर्ट में चर्चा की गई है। इस अध्याय में, उन प्रमुख संस्थानों पर बल दिया जाएगा जो या तो विवादास्पद मुद्दों का समाधान करने के लिए उन्हें सौंपी गई भूमिका के कारण कार्यरत हैं अथवा जो अपनी मध्यस्था, चर्चाओं और विचार-विमर्श के जरिए विवादों को बढ़ने से रोकते हैं।

14.2 विवाद समाधान और भारत का संविधान

14.2.1 सभी राष्ट्रीय संविधानों में, उनके निर्माताओं द्वारा परिकल्पित शासन प्रतिमानों का निर्धारण किया गया है जो राष्ट्रीय सामन्जस्य और तालमेल प्रोत्साहित और अनुरक्षित रखने के लिए सर्वोत्तम रूप से उपयुक्त हैं और इस प्रकार विवाद समाधान के साधन हैं। भारत का संविधान तैयार करने की प्रक्रिया, प्रतिस्पर्धात्मक हितों में सफलतापूर्वक तालमेल कायम करने और सम्भाव्य विवादों के कारकों को प्रारंभ में ही दबाने की एक उदाहरण पेश करती है। एक उदाहरण, हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी को बनाए रखकर (अनुच्छेद 346), अपने -अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषाओं के महत्व को स्वीकारना (अनुच्छेद 345), ऐसे क्षेत्रों में अन्य भाषाओं के हित को संरक्षित रखते हुए (अनुच्छेद 347), "संघ की राजभाषा" के विवादास्पद मुद्दे पर मतैक्य का होना है। ऐसे समझौते करने की प्रक्रिया, भाषा के विषय में संविधान सभा संवाद में पर्याप्त रूप से दर्शाई गई है (खण्ड IX पृ. 1377-1515)। इसी प्रकार, अन्तर-राज्य व्यापार और वाणिज्य, केन्द्र और राज्यों की कराधान शक्तियों, धर्म की आजादी और नागरिकता आदि जैसे मुद्दों पर सभा में संवाद तथा मसौदा लेखन समिति के अन्दरूनी विचार-विमर्श से इस बात का पर्याप्त सबूत मिलता

है कि किस प्रकार संघर्षों से बचा गया और "लेने-देने" की प्रक्रिया के फलस्वरूप उन समस्याओं का स्थिर समाधान प्राप्त हुआ जो असमाधेय प्रतीत होती थी। भारतीय संविधान के कुछ महत्वपूर्ण प्रावधान जिनका उद्देश्य संघर्ष रोकथाम अथवा समाधान के लिए एक संस्थागत मंच प्रदान करना है, नीचे दिए गए हैं:

क- अनुच्छेद 131 संघ-राज्य(यों) और अन्तर-राज्य विवादों के समाधान के महत्व को स्वीकारता है जो एक संघीय राजतंत्र के सुचारू कार्यकरण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है तथा ऐसे विवादों से संबंधित मुकदमों पर विचारण करने के लिए उच्चतम न्यायालय को एकमात्र मूल क्षेत्राधिकार प्रदान करता है। यह एक स्पष्ट पद्धति है जिसका उद्देश्य कुल मिलाकर संघ की स्थिति के लिए सम्भावित नुकसानदेह स्थिति को प्राधिकृत रूप से तथा न्यायिक रूप से निर्धारित करना है।

ख- अनुच्छेद 262 संसद को विधान द्वारा, सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार को, उच्चतम न्यायालय सहित, विवाद के किसी संवेदनशील क्षेत्र, अर्थात अन्तर-राज्य नदी अथवा नदी घाटी जल विवादों को अलग रखने और ऐसे विवादों के अधिनिर्णयन हेतु व्यवस्था करने की शक्ति प्रदान करता है। इस दृष्टि से यह प्रावधान अनुच्छेद 131 का एक अपवाद है। इसके तहत भी मंशा ऐसे विवाद के साथ डील करने के लिए एक विशेष प्रक्रिया की व्यवस्था करना है जिसके संबंध में अनेक कारकों को ध्यान में रखते हुए समाधान की जरूरत हो।

ग- अनुच्छेद 263 के अन्तर्गत, विवादों के समाधान हेतु अन्तर राज्य परिषदों और संघ तथा राज्यों के परस्पर हित के मामलों और साथ ही उनके बीच समन्वय चाहने वाले मुददों के समाधान के लिए भी चर्चा करने की परिकल्पना की गई है। इस प्रावधान पर इस अध्याय में बाद में विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

घ- अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत, संघ और राज्यों के बीच कतिपय केन्द्रीय करों के विभाजन के मानदण्डों की सिफारिश करने तथा राज्यों का प्रशासन सुचारू ढंग से चलाने के लिए केन्द्रीय हस्तक्षेप की वित्तीय आवश्यकताओं का सामान्य रूप से आकलन करने के लिए, सामान्यत: पाँच वर्ष की अवधि के लिए एक अर्ध-न्यायिक वित्त आयोग स्थापित करने की व्यवस्था है। इस अनुच्छेद से राज्यों की "वित्तीय कठिनाइयों" के कारण उत्पन्न विवादों को रोकने की जरूरत का स्पष्टत: पता चलता है।

ड.- अनुच्छेद 307 के तहत अन्तर-राज्य व्यापार और वाणिज्य को सुकर बनाने के लिए एक प्राधिकरण की स्थापना करने का प्राधिकार दिया गया है।

उपरोक्त के अलावा, अन्य प्रावधान हैं जिनके तहत समाज के कुछ भेद्य वर्गों की कठिनाईयों की जाँच करने और उनका समाधान करने की पद्धति तय की गई है। इनमें अनुच्छेद 350 ख सम्मिलित है जिसके तहत भाषाई अल्पसंख्यकों के हितों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक विशेष अधिकारी की व्यवस्था की गई है तथा अनुच्छेद 338 और 338 क हैं जिनके तहत क्रमश: अनुसूचित जातियों और अनु. जनजातियों के हितों को संरक्षण प्रदान व प्रोत्साहित करने के लिए आयोगों की व्यवस्था है। ऐसे प्रावधानों का उद्देश्य कठिनाइयों की संघर्ष का रूप लेने की गुजांइश को कम करना है।

14.2.2 विभिन्न संवैधानिक संस्थानों, जैसे कि भारत का चुनाव आयोग और वित्त आयोग के वास्तविक कार्यकरण ने, एक सुचारू, कामकाजी प्रजातन्त्र संघीय-राजकोषीय व्यवस्था को प्रोत्साहित करने में एकसमान रूप से कार्य करने का अवसर प्रदान करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित कर दी है। इन संवैधानिक निकायों ने एक अत्यंत विविधीकृत और भिन्न राजतंत्र के अन्दर एकता बनाए रखने में उल्लेखनीय सेवा प्रदान की है। आयोग का प्रयास है कि उन मामलों के संबंध में जिनमें समाज के अन्दर द्वेष पैदा करने की क्षमता हो, मतैक्य कायम करने की प्रक्रिया में सुधार करने के लिए अन्य संस्थानों और प्रथाओं को उपयुक्त रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए, उपाय सुझाए जाएं।

14.3 महत्वपूर्ण अधिकारिक विवाद निवारण/समाधान एजेन्सियाँ

अनेक एजेन्सियां और संस्थान हैं जिनकी संघर्ष की रोकथाम और उसके समाधान में भूमिका है। ऐसे सभी कार्यकारी और विचार-विमर्श निकायों का उल्लेख करना व्यवहार्य नहीं है। आयोग का प्रस्ताव निम्नलिखित सामान्य श्रेणियों में उनमें से केवल कुछ को कवर करने का है:

क- संवैधानिक प्रावधानों के अन्तर्गत स्थापित संस्थान

ख- विधायी अधिनियमनों के अन्तर्गत संस्थान

ग- सरकार के कार्यपालक आदेशों के तहत जारी विचार-विमर्शी मंच अथवा संस्थान।

14.3.1 संविधान के तहत संस्थान

14.3.1.1 अन्तर-राज्य परिषद

14.3.1.1.1 संविधान का अनुच्छेद 263, जिसका संक्षेप में पहले उल्लेख किया जा चुका है, नीचे उद्धरित है :

"263 अन्तर-राज्य परिषद के संबंध में प्रावधान यदि किसी समय राष्ट्रपति को यह प्रतीत हो कि निम्नलिखित ड्युटी सौंपकर एक परिषद की स्थापना द्वारा सार्वजनिक हित की पूर्ति होगी:

(क) राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवादों के संबंध में जाँच करना तथा उनके संबंध में सलाह देना;

(ख) उन विषयों की जाँच-पड़ताल और चर्चा करना जिनमें कुछ अथवा सभी राज्यों का अथवा संघ अथवा एक अथवा अधिक राज्यों का सामान्य हित हो; अथवा

(ग) ऐसे किसी विषय पर सिफारिशें देना और विशेष रूप से विषय के संबंध में नीति और कार्रवाई के बेहतर समन्वयन हेतु सिफारिशें, राष्ट्रपति के लिए यह वैध होगा कि वह एक आदेश द्वारा ऐसी परिषद की स्थापना करें और उसके द्वारा निष्पादित की जाने वाली ड्यूटियों की प्रकृति तथा उनके गठन और प्रक्रिया की परिभाषा करें।"

14.3.1.1.2 अनुच्छेद 263 के प्रारम्भिक शब्द "यदि किसी समय..." यह स्पष्ट किया जाए कि संविधान के अन्तर्गत समय-समय पर और न कि अनिवार्य रूप से एक सतत, स्थायी व्यवस्था के रूप में, यह निकाय गठित करने की परिकल्पना की गई है। यह भी स्पष्ट है कि परिषद द्वारा निष्पादित किए जाने वाले कार्य, अस्तित्व में आ जाने पर, दोहरे हैं, यथा (i) अन्तर-राज्य विवादों की जाँच करना और सलाह देना; और (ii) सभी अथवा कुछ राज्यों अथवा संघ के हितों के विषयों पर, "नीति अथवा कार्रवाई के समन्वय" वाले विषयों के विशेष संदर्भ में, चर्चा और जाँच करना। यह नोट करने योग्य है कि विवादों के मामलों में परिषद की भूमिका "जाँच और सलाह" तक सीमित है।

14.3.1.1.3 काफी समय तक अनुच्छेद 263 का सहारा नहीं लिया गया। प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने, प्रारंभ में, और "प्रयोगात्मक आधार पर" दो वर्ष की अवधि के लिए, अन्तर-राज्य परिषद के गठन की सिफारिश की थी। इस सिफारिश को कार्यान्वित नहीं किया गया। केन्द्र-राज्य संबंधों पर आयोग (इसके बाद सरकारिया आयोग के रूप में वर्णित) ने भी मामले पर विचार किया था और सिफारिश की कि अनुच्छेद 263 के खण्ड (ख) और (ग) के अन्तर्गत कार्यों का निष्पादन करने के लिए अर्थात केन्द्र और राज्यों के हितों के मामलों पर, विशेष रूप से नीति और कार्रवाई के समन्वयन संबंधी मामलों की जाँच-पड़ताल, चर्चा और सिफारिशें करने के लिए, एक अन्तर-राज्य परिषद की स्थापना की जाए। दूसरे शब्दों में, सरकारिया आयोग ने, अनुच्छेद 263(क) के अन्तर्गत परिकल्पित परिषद के लिए विवाद समाधान की भूमिका की सिफारिश नहीं की। यद्यपि, आयोग ने इस चूक के लिए कोई विशिष्ट कारण नहीं बताया, तथापि यह नोट किया कि खण्ड (क) के तहत परिषद के लिए अधिनिर्णयन की कोई शक्ति प्रदान नहीं की गई। किसी भी मामले में, सिफारिश को स्वीकार कर लिया गया और सरकारिया आयोग द्वारा सिफारिश किए गए अधिदेश के साथ 28 मई 1999 को अन्तर-राज्य परिषद का गठन किया गया।

4.3.1.1.4 यह नोट करने योग्य है कि अन्तर-राज्य परिषद के गठन से ठीक पहले उच्चतम न्यायालय ने, डाबर इण्डिया लि. बनाम उत्तर प्रदेश राज्य कर विवाद का निपटान करते हुए 1990 (4)एस सी सी 113 में सुझाया था कि केन्द्रीय उत्पाद शुल्क और नमक अधिनियम 1944 और औषधीय तथा टायलेट निर्माण (अतिरिक्त उत्पाद शुल्क) अधिनियम 1955 के अन्तर्गत कतिपय मदों पर उत्पाद शुल्क आरोपित करने की शक्ति के संबंध में संघ और राज्यों के हितों में भिन्नता के कारण उत्पन्न विवादों को "संविधान के अनुच्छेद 263 के तहत शीघ्र गठित की जाने वाली परिषद" को सौंप दिया जाए। तथापि यह स्पष्ट है कि शीर्ष न्यायालय ने उम्मीद की थी कि एक बार स्थापित हो जाने पर अन्तर-राज्य परिषद का उपयोग अन्य बातों के साथ-साथ, संघ और राज्यों के विवादास्पद राजस्व हितों का समाधान करने के लिए एक मंच के रूप में किया जाना चाहिए।

14.3.1.1.5 अन्तर-राज्य परिषद की वर्तमान संरचना इस प्रकार है:

- *प्रधान मंत्री - अध्यक्ष*
- *सभी राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्य मंत्री*
  (राज्यों के राज्यपाल जहाँ अनुच्छेद 356 प्रचालन में है);
- *संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासक जहाँ विधान सभा नहीं है;*

  केन्द्रीय मंत्री परिषद में मंत्रिमंडल दर्जे के छः मंत्री, जिन्हें प्रधान मंत्री द्वारा मनोनीत किया जाएगा (केन्द्रीय सरकार के अन्य मंत्रियों को स्थायी आमंत्रितों के रूप में आमंत्रित किया जा सकता है, यदि परिषद के अध्यक्ष द्वारा मनोनीत किया जाए अथवा जब कभी भी उनके प्रभार के अन्तर्गत किसी विषय से संबंधित किसी मद पर चर्चा की जाती है)।

14.3.1.1.6 परिषद ने बाद में, उसे भेजे गए विषयों पर, विस्तार से विचार करने के लिए एक छोटी "स्थायी समिति" गठित करने का निर्णय लिया जिससे कि "पूर्ण परिषद" द्वारा एजेण्डे के प्रत्येक मुद्दे की जाँच करने की जरूरत नहीं पड़े। इस समिति में कुछ केन्द्रीय मंत्री और चुनिन्दा मुख्य मंत्री सम्मिलित हैं तथा इसकी अध्यक्षता गृह मंत्री द्वारा की जाती है। परिषद की स्थापना के बाद से इसकी दस बार बैठकें हुई हैं अथवा वर्ष में एक बार से भी कम तथा अन्तर-राज्य परिषद की कुछेक महत्वपूर्ण सिफारिशें और साथ ही उनके संबंध में सरकार का निर्णय निम्न प्रकार हैं:

छ- "शेष शक्तियों" का संघ से सम्वर्ती सूची में स्थानान्तरण (स्वीकार नहीं की गई)।

ज- *सूची-III के तहत विधानों के संबंध में राज्यों के साथ पूर्व परामर्श, तात्कालिकता के मामलों को छोड़कर (सिद्धान्ततः स्वीकृत)।*

झ- *राज्य सरकारों के मंत्रियों के आचरण से संबंधित मामलों में केन्द्रीय सरकार द्वारा सम्भावित दुरूपयोग से बचने के लिए जाँच आयोग अधिनियम, 1952 में समुचित सुरक्षोपाय (विचाराधीन)।*

ञ- *शहरी स्थानीय निकायों को केन्दीय सरकार की औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रकृति की सम्पत्तियों पर कर आरोपित करने की अनुमति देने के लिए केन्द्रीय विधान का अधिनियमन (विचाराधीन)।*

ट- *संविधान का अनुच्छेद 200 और 201 संशोधित किया जाए जिसमें विधेयक के संबंध में सम्मति प्रदान करने के लिए, क्रमशः राज्यपाल के लिए एक मास और राष्ट्रपति के लिए 4 मास की समयावधि निर्धारित की जाए, ऐसा न होने पर विधेयक को पारित समझा जाएगा (स्वीकार नहीं की गई) ।*

ठ- *अनुच्छेद 365 को बनाए रखना (संघ की कार्यकारी शक्तियों के अन्दर आने वाले मामलों में राज्यों को निदेश जारी करने की संघ की शक्तियों से संबंधित), उसके अपवादात्मक अनुप्रयोगों के अध्यधीन (स्वीकृत)*

ड- *राज्यपाल नियुक्त करने से पहले राज्यों के मुख्य मंत्रियों के साथ अनिवार्य परामर्श (स्वीकार नहीं की गई)।*

ण- *मुख्य मंत्री का चयन करते समय, विधान सभा में पूर्ण बहुमत वाली पार्टी के नेता को स्वतः मुख्य मंत्री बनने के लिए कहा जाए और यदि ऐसी कोई पार्टी न हो तो राज्यपाल द्वारा निम्नलिखित प्राथमिकता के क्रम में पार्टियों अथवा समूहों में से मुख्य मंत्री का चयन किया जाना चाहिए:*

- *पार्टियों का एक गठबंधन जो चुनावों से पहले गठित किया गया था।*
- *अन्यों की सहायता से, "आजादों" सहित, अपना दावा पेश करने वाली सबसे बड़ी अकेली पार्टी।*
- *पार्टियों का चुनाव पश्चात गठबंधन, जिसमें भागीदार सरकार में शामिल हों।*
- *पार्टियों का चुनाव-पश्चात गठबंधन जिसमें कुछ गठबंधन पार्टियाँ सरकार में शामिल हों तथा शेष पार्टियाँ "आजाद" सहित बाहर से सरकार का समर्थन करें (स्वीकृत)।*

त- अनुच्छेद 356 को उपयोग यदा-कदा किया जाना चाहिए। बोम्मई न्यायनिर्णय में उल्लिखित सुरक्षोपाय जो पहले ही भूमि का कानून बन गए हैं, उस अनुच्छेद के दुरूपयोग को रोकने के लिए पर्याप्त हैं (सिद्धान्ततः सहमत, किन्तु अनुच्छेद 141 को देखते हुए संविधान में कोई संशोधन आवश्यक नहीं समझा गया)।

थ- केन्द्रीय और राज्य सशस्त्र पुलिस बलों के बीच अधिकारियों का अन्तर-परिवर्तन, बशर्ते कि इसमें बड़े पैमाने पर स्थानान्तरण किया जाना शामिल नहीं हो (स्वीकृत)।

द- परिषद ने राज्यों को केन्द्रीय करों में हिस्से के अन्तरण की एक वैकल्पिक स्कीम अनुमोदित की (इस सिफारिश के अनुसरण में संविधान (अस्सीवां) संशोधन अधिनियम 2000 अधिनियमित किया गया)।

ध- कोयले के संबंध में रायल्टी दरों में शीघ्र संशोधन (कार्यान्वित)।

न- "नाबार्ड" के निदेशक बोर्ड में राज्यों के प्रतिनिधित्व में वृद्धि (स्वीकृत)।

14.3.1.1.7 उपरोक्त सूची को देखने से पता चलता है कि अन्तर-राज्य परिषद की स्थापना के बाद से इसकी दस बैठकों में अधिकांश चर्चा, सरकारिया आयोग की सिफारिशों पर चर्चा और उनकी समीक्षा करने तक सीमित थी। सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद, आयोग का मत है कि अन्तर-राज्य परिषद को उसके लिए संविधान के तहत प्रदत्त "पूर्ण" भूमिका प्रदान की जानी चाहिए अर्थात संघ और राज्यों के हित वाले मामलों में नीति और कार्रवाई के बेहतर समन्वयन और विवाद समाधान दोनों के संबंध में। विवादों के निपटान के संबंध में, चाहे अन्तर-राज्य अथवा संघ राज्य का हो, "जाँच करने और सलाह देने की" पद्धति, अधिनिर्णयन की शक्ति के बिना भी, अनुच्छेद 263 के खण्ड (क) द्वारा परिकल्पित, विवादों का निपटान करने की एक कारगर विधि हो सकती है, जैसाकि एक बार मूल्य वर्धित कर (वैट) अत्यंत विवादास्पद मुद्दे के विषय में मतैक्य कायम करने के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद द्वारा गठित राज्य वित्त मंत्रियों की समिति (अशीम दास गुप्ता समिति) की स्पष्ट रूप में सफलता द्वारा प्रदर्शित हुआ है।

14.3.1.1.8 सरकारिया आयोग ने भी उम्मीद की थी कि परिषद की बैठकों से नीतिगत मुद्दों पर चर्चा करने अथवा महत्वपूर्ण कार्यक्रमों की समीक्षा करने के लिए मुख्य मंत्रियों के प्रायः तदर्थ सम्मेलनों की जरूरत नहीं होगी। यह उम्मीद हासिल नहीं हुई है जैसाकि इस तथ्य से स्पष्ट है कि मात्र 2006 में मुख्य मंत्रियों की विभिन्न मुददों पर चर्चा करने के लिए कम से कम 9 बैठकें आयोजित हुई। दूसरे शब्दों में, आम हित के तथा केन्द्र और राज्यों के महत्व के मामलों की समान रूप से समीक्षा करने के रूप में अन्तर-राज्य परिषद का उपयोग एक मंच के रूप में करना व्यवहार्य नहीं पाया गया है।

14.3.1.1.9 अनुच्छेद 263 के प्रावधानों तथा उपरोक्त चर्चा को देखते हुए, आयोग का मत है कि अन्तर-राज्य परिषद का गठन जब भी जरूरत हो तब किया जाए तथा इसकी बने रहने की जरूरत नहीं है। आयोग का यह भी मत है कि अन्तर-राज्य परिषद अपना प्रयोजन इसके विचारार्थ विषयों के लिए उपयुक्त एक शिथिलनीय संरचना के साथ एक आवधिक निकाय के रूप में सर्वोत्तम ढंग से पूरा कर सकती है। वर्तमान परिषद को, तदर्थ परिषदों के निर्माण में भारत सरकार द्वारा पालन किए जाने वाले बुनियादी समान सिद्धान्तों के आधार पर निर्णय लेने के बाद, यदि जरूरत समझी जाए, भंग किया जा सकता है। इसका यह भी अर्थ है कि एक निश्चित समय पर प्रत्येक की भिन्न-भिन्न संरचना के साथ, भिन्न-भिन्न राज्यों और संघ के अन्य मामलों अथवा भिन्न-भिन्न विवादों पर विचार करने के लिए एक से अधिक परिषद के गठन पर कोई रोक अथवा अन्य बाधा नहीं है। इस पद्धति से, किसी मद में प्रत्यक्ष रुचि रखने वाले पक्षकारों द्वारा सार्थक, परिणामोन्मुखी चर्चाएं भी सुकर होंगी और समयबद्ध समाधान सुकर होंगे।

14.3.1.10 **सिफारिशें**

क– संविधान के अनुच्छेद 263 (क) के तहत अन्तर–राज्य परिषद के लिए परिकल्पित संघर्ष समाधान भूमिका का प्रभावी रूप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिससे कि राज्यों के बीच अथवा सभी अथवा कुछ राज्यों और संघ के बीच विवादों का समाधान खोजा जा सके।

ख– तथापि, अन्तर–राज्य परिषद कोई स्थायी निकाय नहीं होना चाहिए। जब भी विशिष्ट जरूरत हो, संघ अथवा सम्बद्ध राज्यों के हित के मामलों के संबंध में विवाद अथवा नीति अथवा कार्रवाई के समन्वय पर विचार करने के लिए परिषद का गठन और आयोजित करने के लिए एक उपयुक्त राष्ट्रपति आदेश जारी किया जा सकता है। जिस प्रयोजन के लिए निकाय का गठन किया गया है उसके पूरा हो जाने पर यह निकाय कार्य करना बन्द कर सकता है।

ग– अन्तर–राज्य परिषद की संरचना शिथिलनीय हो सकती है जो अनुच्छेद 263 के तहत संदर्भित मामले की जरूरतों के लिए उपयुक्त हो।

घ– यदि आवश्यक हो, एक समय पर भिन्न–भिन्न विचारार्थ विषयों और संरचना के साथ, जैसा कि प्रत्येक परिषद के लिए जरूरी हो, एक से अधिक अन्तर–राज्य परिषद विद्यमान रह सकती है।

14.3.1.2 राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग और राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग

14.3.1.2.1 संविधान के अनुच्छेद क्रमश: 338 और 338 (क) के तहत स्थापित इन आयोगों पर एक साथ चर्चा की जा सकती है। वस्तुत: 89वें संविधान संशोधन के पारित होने से पहले संविधान के 65वें संशोधन के बाद 1990 में स्थापित एक संयुक्त अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोग था। इन निकायों पर इकट्ठे विचार करने का एक कारण यह तथ्य है कि दोनों निकायों से संबंधित संवैधानिक प्रावधान और कार्यविधि एकजैसी है। दोनों निकायों के जिम्मेदारी के सामान्य क्षेत्र हैं:

क- संविधान अथवा अन्य कानूनों के तहत व्यवस्थित अनु. जाति/अनु. जनजाति के लिए सुरक्षोपायों के कार्यान्वयन की जाँच-पड़ताल और मानीटरन;

ख- इन समूहों के लिए व्यवस्थित सुरक्षोपायों के उल्लंघनों के विशिष्ट मामलों की जाँच;

ग- आयोजना और समाजार्थिक विकास में भागीदारी तथा संघ और राज्यों में ऐसे कार्यक्रमों के प्रभाव का मूल्यांकन;

घ- अनु. जाति/अनु. जनजाति के लिए सुरक्षोपायों के कामकाज के बारे में संसद को वार्षिक रिपोर्टे प्रस्तुत करना; और

ड.- सुरक्षोपायों के बेहतर कार्यान्वयन और संगत समूहों के समाजार्थिक विकास के लिए सिफारिशें करना।

14.3.1.2.2 आयोगों की रिपोर्टें प्रत्येक वर्ष, और उनमें दी गई सिफारिशों के संबंध में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाई के विवरण के साथ, संसद में प्रस्तुत की जानी हैं। ये रिपोर्टें सामान्यत: सरकार के लिए बाध्यकर हैं; जिन मामलों में सरकार आयोगों की कोई सिफारिश स्वीकार करने में असमर्थ रहती है, उनमें संसद के समक्ष अस्वीकृति के कारणों का उल्लेख किया जाना चाहिए। आयोगों को, अपने कार्यों के निपटान में सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त हैं। इन शक्तियों में गवाहों और दस्तावेजों की मांग करना, साक्ष्य रिकार्ड करना तथा मुराल-बाह्य जाँच के लिए सम्मन जारी करना शामिल है।

14.3.1.2.3 65वें संवैधानिक संशोधन के विषय में संसदीय बहस से पता चलता है कि इन आयोगों की स्थापना का उद्देश्य संबंधित वर्गों के लिए व्यवस्थित सुरक्षोपायों के कार्यान्वयन की स्थिति और कोटि का आकलन करने के लिए एक निगरानीकर्ता के रूप में कार्य करना है। इस प्रकार इन आयोगों का

उद्देश्य शिकायतों का पर्याप्त रूप से समाधान करना तथा ऐसे उपायों की सिफारिश करना है जिनसे कठिनाइयां न्यूनतम हो सकें। दूसरे शब्दों में, इन निकायों का अन्तर्निहित प्रयोजन उनके मूल कारण, अर्थात सुरक्षोपायों को कार्यान्वित न करने, को दूर करके संघर्षों को रोकना है।

14.3.1.2.4 अभी तक इन निकायों के कामकाज का स्वतन्त्र रूप से कोई आकलन नहीं किया गया है। स्पष्टत: उनकी रिपोर्टों पर भी कोई खास ध्यान नहीं दिया गया है। तथापि इन रिपोर्टों के अवलोकन से पता चलता है कि संगत श्रेणियों से संबंधित सरकारी और सरकारी क्षेत्रक कर्मचारियों की अलग-अलग शिकायतों और कठिनाईयों को दूर करने में काफी समय और प्रयास करना पड़ता है। यद्यपि अनु. जाति/अनु. जनजाति के लिए व्यवस्थित सुरक्षोपायों की समीक्षा करना इन आयोगों का एक महत्वपूर्ण कार्य है तथापि पदोन्नतियों, स्थानान्तरणों, तैनातियों आदि से संबंधित सामूहिक शिकायतों और वैयक्तिक दावों के बीच भेद करना जरूरी है। यह भी स्पष्ट है कि दोनों आयोगों के सचिवालयों को, अनु. जाति/अनु. जनजाति की समाजार्थिक स्थिति के संबंध में अन्य संस्थानों द्वारा आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों के मानीटरन और मूल्यांकन के लिए, "कार्रवाई अनुसंधान" के मानीटरन सहित, उपयुक्त क्षमता का निर्माण करना चाहिए। इन आयोगों के लिए जिम्मेदार प्रशासनिक मंत्रालयों को, आयोगों के साथ विचार-विमर्श करके, उन्हें अपने संवैधानिक दायित्वों के प्रभावी निपटान में समर्थ बनाने के लिए साधनोपायों पर सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए।

14.3.1.2.5 सिफारिशें

क– **राष्ट्रीय अनु. जाति और अनु. जनजाति आयोगों का एक महत्वपूर्ण कार्य विभिन्न क्षेत्रों में अनु. जातियों /अनु. जनजातियों के लिए उनकी सेवा शर्तों के मामले सहित व्यवस्थित, सुरक्षोपायों के कार्यान्वयन की समीक्षा, मानीटरन और मार्गदर्शन करना है। यह अनिवार्य है कि दोनों आयोगों द्वारा अलग–अलग प्रकृति के मामलों पर बल देने की बजाए, जिन पर प्रशासनिक मंत्रालयों/उपयुक्त मंच द्वारा गौर किया जा सकता है तथा आयोग एक क्रान्तिक निगरानी की भूमिका अदा कर सकते हैं, नीतिगत और कार्यान्वयन के बड़े मुद्दों पर ही मुख्य रूप से बल दिया जाए।**

ख– **दोनों आयोगों से जुड़े प्रशासनिक मंत्रालय एक प्रक्रिया आयोजित कर सकते हैं और इन निकायों के साथ परामर्श करके इस बारे में ब्यौरे तय कर सकते हैं कि किस प्रकार इन निकायों को अपने संवैधानिक अधिदेश का निपटान करने में बेहतर ढंग से समर्थ बनाया जा सकता है।**

14.3.2 सांविधिक निकाय

14.3.2.1 क्षेत्रीय परिषदे

14.3.2.1.1 "क्षेत्रीय आधार" पर अन्तर-राज्य परिषदें स्थापित करने की जरूरत प्रमुख रूप से, 1956 में भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन से उत्पन्न समस्याओं से निपटने के लिए, महसूस की गई । राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (1956 का अधिनियम संख्या 37) की धारा 15 से 22, चार क्षेत्रों (उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम) के कामकाज के विभिन्न पहलुओं से संबंधित है। इन परिषदों में एक केन्द्रीय मंत्री, जिसे राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है और जो अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है, क्षेत्र में राज्यों के मुख्य मंत्री और सदस्य-राज्यों से दो-दो मंत्री, जिन्हें राज्यपाल द्वारा सदस्यों के रूप में नामजद किया जाता है, सम्मिलित होते हैं। परिषद की अनेक "सलाहकारों" द्वारा सहायता की जाती है अर्थात मुख्य सचिव और सदस्य-राज्यों का एक-एक अधिकारी, तथा योजना आयोग द्वारा नामजद एक अधिकारी। अधिनियम के तहत अपेक्षित है कि केन्द्रीय सरकार द्वारा वित्त पोषित नियमित परिषद सचिवालय क्षेत्र के एक राज्य में स्थित हो तथा राज्यों के मुख्य सचिव, बारी -बारी से, इसके सचिव के रूप में कार्य करे। अधिनियम की धारा 21 की उप-धारा (2) के तहत परिषद के लिए निम्नलिखित ड्युटियां निर्धारित की गई हैं:

(क) आर्थिक और सामाजिक आयोजना के क्षेत्र में समान हित का कोई मामला;

(ख) सीमा विवाद, भाषाई अल्पसंख्यकों अथवा अन्तर - राज्य परिवहन से संबंधित कोई मामला; और

(ग) राज्यों के पुनर्गठन से उत्पन्न अथवा संबंधित कोई मामला।

14.3.2.1.2 राज्यों के पुनर्गठन के तत्काल बाद के वर्षों में, क्षेत्रीय परिषदें अत्यंत सक्रिय थी तथा इससे बहुत से मुद्दों को हल करने में मदद मिली। सरकारिया आयोग ने परिकलित किया कि 1959 और 1963 के बीच परिषदों की 33 बैठकें हुईं।

14.3.2.1.3 तथापि, पिछले समय के दौरान परिषदों की केवल कभी-कभी बैठकें हुईं। सचिवालयों के प्रचालन समाप्त हो गए हैं तथा राज्य मुख्य सचिवों द्वारा बारी -बारी से परिषदों के सचिवों के रूप में कार्य करने की प्रथा पर शायद की अमल किया गया है। ये निकाय, अन्तर-राज्य परिषद सचिवालय के माध्यम से गृह मंत्रालय की एक अनुषंगी जिम्मेदारी बन गई है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि क्षेत्रीय परिषदों ने राज्यों के पुनर्गठन से उत्पन्न समस्याओं से निपटने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, किन्तु इन समस्याओं का निपटान हो जाने पर, सदस्य राज्यों की ओर से रुचि में निश्चित रूप से गिरावट आई। उत्तर प्रदेश, बिहार और उत्तर प्रदेश के विभाजन के माध्यम से क्रमश: उत्तराखण्ड, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ की हाल

ही में स्थापना से उपयुक्त क्षेत्रीय परिषदें पुन: सक्रिय नहीं हुईं तथा आवश्यक समन्वयन संबंधित राज्य सरकारों द्वारा द्विपक्षीय रूप से किया गया। संक्षेप में, क्षेत्रीय परिषदें न केवल सुप्त हैं बल्कि प्रतीत होता है कि उन्हें पुन: सक्रिय करने में भी रुचि का अभाव है।

14.3.2.1.4. सिफारिश

क– क्षेत्रीय परिषदों की पद्धति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। एक ही क्षेत्र में राज्यों के बीच अन्तर–राज्य समन्वयन अथवा विवादों के महत्वपूर्ण मुद्दों को, जब कभी जरूरी हो, उपयुक्त संरचना और विचारार्थ विषयों के साथ अन्तर–राज्य परिषद को सौंपा जा सकता है जिससे कि किसी निश्चित मुददे पर गहराई से विचार किया जा सके।

14.3.2.2. राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग

14.3.2.2.1 आयोग की स्थापना, मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 के तहत 1994 में की गई थी तथा भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इसके अध्यक्ष और चार सदस्य हैं जिनमें से दो उच्चतम न्यायालय को पूर्व न्यायाधीश हैं। राष्ट्रीय अनु. जाति, अनु. जनजाति, अल्पसंख्यक और पिछड़ा वर्गों के आयोगों के अध्यक्ष पदेन सदस्य हैं जब सामान्य रूप से इनमें से किसी आयोग के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत आने वाले मामले पर राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा विचार किया जाता है। अधिनियम की धारा 2(घ) के अन्तर्गत यथा परिभाषित "मानवाधिकार" शब्द का कार्यक्षेत्र, संविधान में गारंटीशुदा मूलभूत अधिकारों की अपेक्षा काफी व्यापक है क्योंकि इसमें "संविधान द्वारा गारंटीशुदा अथवा अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों में सम्मिलित और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय व्यक्तियों के जीवन, आजादी, समानता और सम्मान से संबंधित अधिकार" सम्मिलित हैं। आयोग, कथित पीड़ितों से अथवा उनकी ओर से शिकायतें प्राप्त करने के अलावा मानवाधिकार के किसी कथित उल्लंघन का स्वमेव संज्ञान ले सकता है। यद्यपि, एन एच आर सी सामान्य रूप से राज्य पुलिस अधिकारियों की जाँच रिपोर्टों पर भरोसा करता है तथापि इसे अपने आप ऐसी जाँच-पड़ताल आयोजित कराने की शक्ति और अपेक्षित अवस्थापना उपलब्ध है। अधिनियम के अन्तर्गत एन एच आर सी की तरह ही राज्य स्तर मानावाधिकार आयोग स्थापित करने की भी व्यवस्था है जिनके अध्यक्ष उच्च न्यायालयों के पूर्व मुख्य न्यायाधीश हों।

14.3.2.2.2 पिछले वर्षों के दौरान, एन एच आर सी ने देश भर में विभिन्न किस्म के मानवाधिकार सम्बद्ध मुद्दों के विषय में एक स्पष्ट छाप छोड़ी है, जिनमें जम्मू और काशमीर, पूर्वोत्तर और पंजाब जैसे

संवेदनशील मुद्दे सम्मिलित हैं जबकि मिलिटेंसी इन क्षेत्रों में चरम पर थी। आयोग ने अनेक स्थितियों में मानवाधिकारों के उल्लंघन के पीड़ितों के हित को समर्थन प्रदान करने में अत्यंत सक्रिय रूप से भाग लिया है। "बेस्ट बेकरी केस" को गुजरात राज्य से बाहर स्थानान्तरित करने के लिए उच्चतम न्यायालय के साथ सफलतापूर्वक अनुरोध करना इस संबंध में अनेक मामलों में से एक मामला है।

14.3.2.2.3 यद्यपि, संघर्ष समाधान एन एच आर सी के एजेण्डे में औपचारिक रूप से सम्मिलित नहीं है, तथापि ऐसे संस्थानों की प्रमुख मानवाधिकारों के पीड़ितों के मन में से लाचारी और निराशा की भावना को दूर करने और ऐसे समूहों को हिंसा के मार्ग से दूर रखने में, एक बड़ी निवारक भूमिका है।

14.3.2.3 राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग और राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग

14.3.2.3.1 ये आयोग, राष्ट्रीय अनु. जाति/अनु. जनजाति आयोगों की तरह काम करते हैं, अन्तर इतना है कि ये अपनी शक्ति संसदीय विधानों से प्राप्त करते हैं, संवैधानिक प्रावधानों से नहीं। "संवैधानिक आयोगों" के संदर्भ में की गई टिप्पणियां इनके मामले में भी लागू होती हैं। पिछड़ा वर्ग आयोग इसे सौंपे गए कार्यों को अभी तक पूर्ण रूप से शुरू करने में समर्थ नहीं हो पाया है। राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शिक्षा आयोग जैसे निकायों की स्थापना से अल्पसंख्यक आयोग के क्षेत्राधिकार का एक भाग ले लिया गया है-प्रतीत होता है कि पुराने आयोग ने धार्मिक अल्पसंख्यकों की शिक्षा से जुड़ी समस्याओं का समाधान करने में पर्याप्त योग दिया। समाज के एक समान वर्गों से संबंधित मुददों से सम्बद्ध निकायों की संख्या बढ़ाने पर गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए।

14.3.3 कार्यकारी आदेशों के अन्तर्गत स्थापित संस्थान

14.3.3.1 *राष्ट्रीय एकता परिषद (एन आई सी)*

14.3.3.1.1 एन आई सी की स्थापना, तत्कालीन प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू द्वारा की गई पहल का परिणाम है जिन्होंने जबलपुर में तथा मध्य भारत में कतिपय अन्य स्थानों पर प्रमुख साम्प्रदायिक समूहों को देखते हुए, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता, भाषाई उन्माद और संकीर्णता आदि की बुराईयों से जूझने के लिए साधनोपाय खोजने के वास्ते सितम्बर 1961 में एक राष्ट्रीय एकता सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन बुलाने का प्रयोजन देश को अन्तर पार्टी मतैक्य कायम करके तथा उपयुक्त नीतिगत व अन्य पहलों के जरिए साम्प्रदायिक हिंसा व अन्य विभाजक तत्वों से बचाने के लिए सर्वसम्मति कायम करना था।

14.3.3.1.2 सम्मेलन से उभरने वाले महत्वपूर्ण निष्कर्षों में से एक निष्कर्ष, राष्ट्रीय एकता से संबंधित सभी मामलों की समीक्षा करने और उनके संबंध में सिफारिशें करने के लिए, राष्ट्रीय एकता परिषद (एन आई सी) की स्थापना करना था। तदनुसार, एन आई सी की स्थापना की गई और इसकी पहली बैठक 2 व 3 जून 1962[55] को आयोजित की गई। इसमें पर्याप्त रूप से राजनीतिक अभिमत और सदस्यों का प्रतिनिधित्व है, जिसमें प्रख्यात गांधावादी, अनुभवी पत्रकार और विख्यात शिक्षाविद सम्मिलित हैं। चीनी आक्रमण के फलस्वरूप, प्रमुख रूप से राष्ट्रीय एकता कायम करने पर बल दिया गया। बाहरी खतरों के प्रति भारतीय समाज के सभी वर्गो की तात्कालिक प्रक्रिया से एक सुदृढ़ राजतंत्र और सोसायटी की आवश्यकता को बढ़ावा मिला। प. बंगाल, बिहार और उड़ीसा में और बाद में गुजरात के भागों में साम्प्रदायिक हिंसा में बढ़ोत्तरी की वजह से साम्प्रदायिकता का मुद्दा आगे हो गया तथा अन्य विखण्डकारी प्रवृत्तियों के कुछ कम तात्कालिक मुद्दे पीछे रह गए। 1960 और 1970 के दशकों के दौरान परिषद की इस मुददे के प्रति चिन्ता इसकी संरचना में परिलक्षित हुई। यद्यपि, एन आई सी के योगदान और कारगरता का स्पष्ट रूप से आकलन करना कठिन है तथापि इस बात पर सामान्य सहमति है कि इसने साम्प्रदायिकता के घातक और विध्वंसक परिणामों के बारे में काफी संवेदनशीलता पैदा की। विशिष्ट नीतिगत उपाय, जैसे कि केन्द्रीय अर्ध-सैनिक बलों में भर्ती को व्यापक आधारित बनाना, साम्प्रदायिक हिंसा फैलाने से सख्ती से निपटने के लिए मार्गनिर्देश जारी करना और भारतीय दंड संहिता की धारा 153 क (धर्म आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शत्रुता को बढ़ावा देना) और 153 ख (राष्ट्रीय अखण्डता के संबंध में पक्षपातपूर्ण आरोप और दबाव), अन्य बातों के साथ-साथ, परिषद में कायम हुई सर्वसम्मति का परिणाम था। इस प्रकार, यद्यपि परिषद ने सोसायटी के वर्गों की कठिनाइयों को उजागर करने में एक उपयोगी मंच प्रदान किया है तथा साम्प्रदायिक हिंसा की समस्या की बेहतर समझबूझ कायम की है, तथापि इसकी संघर्ष समाधान भूमिका सीमित रही है।

14.3.3.1.3 परिषद का पिछली बार पुनर्गठन प्रधान मंत्री की अध्यक्षता में तथा 141 सदस्यों के साथ 2005 में, पन्द्रह वर्ष के बाद किया गया था। सदस्यों में मंत्रिमण्डल दर्जे के केन्द्रीय मंत्री, विधानमंडल वाले राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के मुख्य मंत्री, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के नेता, राष्ट्रीय आयोगों के अध्यक्ष, प्रख्यात मिडिया व्यक्ति, व्यापार और श्रमिकों के प्रतिनिधि, विख्यात सार्वजनिक व्यक्ति और महिलाओं के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं। पुनर्गठित एन आई सी की पहली बैठक 31 अगस्त 2005 को नई दिल्ली में आयोजित हुई थी। विचार विमर्श

[55] www.mha.gov.in/NICmaterial020707.pdf

के लिए निर्धारित एजेण्डा था, "सरकारी सामन्जस्य, शिक्षा और मिडिया के माध्यम से साम्प्रदायिक सामन्जस्य"। प्रधान मंत्री ने कार्यवाही का उद्घाटन करते हुए "साम्प्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रीयता और भाषावाद " को राष्ट्रीय एकता के शत्रु के रूप में, बताया - ऐसी बुराइयाँ जिनका विनिर्धारण इसी प्रकार, 1961 के सम्मेलन द्वारा किया गया था जिसके फलस्वरूप एन आई की स्थापना हुई।[56] चर्चाओं के संक्षिप्त रिकार्ड से पता चलता है कि यद्यपि प्रमुख राष्ट्रीय मूल्यों को एकसूत्र में पिरोने और अन्तर क्षेत्रीय विषमताओं पर तीव्र आर्थिक विकास के प्रभाव और देश की एकता जैसे मुद्दों को विचार-विमर्श के अन्तर्गत शामिल करने की इच्छा व्यक्त की गई तथापि साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा पर बल दिया जाता रहा।

14.3.3.1.4 साम्प्रदायिकता एक बड़ा विभाजक कारक है तथा देश में पहचान राजनीति के एक प्रमुख घटक के रूप में परिभाषा जारी है। अन्य समूह पहचानों पर बल दिया जाना भी उभर रहा है। इनके भी राष्ट्रीय एकीकरण के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण निहितार्थ हैं और इसलिए इन पर अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है। "समूह विशिष्ट" हितों और शिकायतों पर ध्यान देने के लिए एजेन्सियों (केन्द्रीय और राज्य स्तर आयोग और अनु.जाति, अनु. जनजाति, अ. पि. वर्ग और अल्पसंख्यक आदि जैसे "विनिश्चित सदस्यों" के साथ निगम) की संख्या में वृद्धि होने से, एक वृहद स्थिति पर नजर डालने तथा कमजोर वर्गों और अल्पसंख्यकों के हितों को प्रोत्साहित करने के वैध हितों में तालमेल कायम करने के प्रयास और एक शीर्ष राष्ट्रीय पहचान को बढ़ावा देने की इतनी ही महत्वपूर्ण जरूरत के लिए एक मंच की निश्चित ही जरूरत है। ये लक्ष्य परस्पर रूप से एकमात्र अथवा विरोधाभासी नहीं हैं किन्तु उन पर सम्वर्ती रूप से नजर रखने के लिए काफी प्रयासों की जरूरत है। एन आई सी एक उपयुक्त मंच उपलब्ध कराती है जहाँ महत्वपूर्ण राष्ट्र निर्माण की पूर्ति की जा सकती है।

14.3.3.1.5 यद्यपि एन आई सी के विविध और समावेशी अधिदेश वाले निकाय की सदस्यता अनिवार्य रूप से अधिक होगी, तथापि वांछनीय है कि इसकी संरचना के संबध में एक मानकीय आधार हो। इसलिए उन क्षेत्रों का पता लगाने के प्रयास किए जाने चाहिए जिन्हें एन आई सी में प्रतिनिधित्व दिए जाने की जरूरत है तथा एक संकेतात्मक "पृष्ठ क्षेत्र" निश्चित किया जा सकता है जहाँ से इसमें सदस्य शामिल किए जा सकते हैं। ऐसा करने से विशिष्ट हित समूहों को प्रतिनिधित्व न दिए जाने के लिए आलोचना अथवा असंतोष से बचा जा सकता है।

[56] http://pmindia.nic.in/speech/content.asp?id=174

14.3.3.1.6 सरकारिया आयोग द्वारा एन डी सी द्वारा सामान्य भाषण देने की बजाए, विशिष्ट एजेण्डा मदों पर चर्चा करने पर दिया गया बल भी इस निकाय के लिए संगत है। राष्ट्रीय और सामाजिक सामान्जस्य के महत्वपूर्ण मुद्दों पर मतों और बोधों में विविधता होना अनिवार्य है। एन आई सी द्वारा विचारार्थ राष्ट्रीय तालमेल और सामन्जस्य के मुद्दों पर विचारों के पद्धतिबद्ध आदान-प्रदान के माध्यम से सर्वोत्तम ढंग से चर्चा की जा सकती है। एन आई सी विविधतापूर्ण संरचना जैसे निकाय में सदभाव और धैर्य बनाए रखने के लिए पारस्परिक समझ-बूझ और सहयोग कर विकास विशेष रूप से जरूरी है। यह उद्देश्य पर्याप्त रूप से सुकर हो सकता है यदि एन आई सी का पर्याप्त मूल कार्य छोटी, विषय विशिष्ट समितियों के जरिए किया जाए जहाँ पूर्ण एन आई सी में सामान्य रूप से चर्चा किए जाने से पहले और अधिक गहनतापूर्वक विचार किया जा सकता है। इसी प्रकार, एन आई सी में विचार-विमर्श अपने आप में अन्त नहीं है-यह आवश्यक है कि इसके मंच पर निकाले गए निष्कर्ष का उपयोग व्यापक सहमति कायम करने के लिए किया जाए। एन आई सी चर्चा और उनके निष्कर्ष को संसद में प्रस्तुत किया जाना इस दिशा में एक कदम प्रतीत होता है।

14.3.3.1.7 राष्ट्र की एकता और भावात्मक अखण्डता से संबंधित मुद्दों पर बहु-विषयक दृष्टि से शिक्षाविदों द्वारा भी विचार किए जाने की जरूरत है-इस दृष्टिकोण से, विविधताओं की विद्यमानता के बावजूद एक सामाजिक रूप से एकीकृत राष्ट्र के उद्‌भव में अन्तर्निहित कारकों की अनेक पद्धतियों को समझने में मदद मिल सकती है। इतिहासकारों, राजनीतिक विज्ञानियों, समाजशास्त्रियों और अर्थशास्त्रियों द्वारा इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान किया गया है। इन प्रयासों के लिए एक सामान्य मंच के जरिए कहीं अधिक बल दिए जाने की जरूरत है जिससे कि कार्य के बौद्धिक महत्व को सही ढंग से समझा जा सके और उसे मजबूत नीतियों और प्रक्रियाओं में बदला जा सके। इसलिए एक ऐसा मंच या तो विद्यमान पद्धति में अथवा एक नया स्वायत्त संगठन कायम करके निर्मित किया जा सकता है जहाँ अनुसंधान आयोजित किया जाए तथा जो राष्ट्रीय एकीकरण के प्रोत्साहन के लिए प्रेरक मामलों के संबंध में एक "चिन्तन कोश" के रूप में कार्य करें। भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई सी एस एस आर) और योजना आयोग इस संबंध में पहल कर सकते हैं।

14.3.3.1.8 **सिफारिशें**

क– राष्ट्रीय एकता परिषद (एन आई सी) के अधिदेश में अपेक्षित है कि राष्ट्रीय सामान्जस्य को प्रभावित करने वाले सभी कारकों पर और न कि केवल साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा पर विचार किया जाए। एन आई सी के एजेण्डे को विविधीकृत बनाए जाने की जरूरत है।

ख– परिषद के समक्ष मूल मुद्दों पर छोटी, विषय–विशिष्ट समितियों द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया जा सकता है।

ग– एन आई सी की संरचना को युक्तिसंगत बनाया जाए ताकि विविध किस्म के मुद्दों पर विचार किया जा सके। गृह मंत्रालय द्वारा हित समूहों तथा उन विशेषज्ञता समूहों का पता लगाने के लिए सामान्य रूपरेखा तय की जा सकती है जिन्हें एन आई सी में प्रतिनिधित्व दिए जाने की जरूरत है।

घ– परिषद की वर्ष में एक बार बैठक आयोजित की जा सकती है जबकि उप–समितियों की बैठक, जब भी आवश्यक हो, सौंपे गए कार्य को एक समयबद्ध तरीके से पूरा करने के लिए, आयोजित की जा सकती है।

ड– एन आई सी की कार्यवाही का सारांश संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

च– भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई सी एस एस आर) और योजना आयोग, राष्ट्रीय एकता से संबंधित मुद्दों पर या तो विद्यमान संस्थान में अथवा एक नए संस्थान को प्रोत्साहित करके अथवा एक नेटवर्क के रूप में चर्चा करने के लिए एक बहु–विषयक अनुसंधान और नीति विश्लेषण मंच स्थापित करने के मामले में पहल कर सकते हैं।

14.3.3.2 राष्ट्रीय विकास परिषद (एन डी सी)

14.3.3.2.1 प्रधान मंत्री की अध्यक्षता और सदस्यों के रूप में राज्यों के मुख्य मंत्रियों तथा महत्वपूर्ण केन्द्रीय मंत्रियों के साथ एक शीर्ष निकाय (एन डी सी) के रूप में 1952 में स्थापित इसका मूल उद्देश्य "राष्ट्र को पंचवर्षीय योजनाओं के समर्थन में अभिप्रेरित करने तथा संतुलित और तीव्र विकास के लिए आर्थिक नीतियां प्रोन्नत करना था"। इस कार्य को बाद में और संरचित रूप दे दिया गया तथा एन डी सी पंचवर्षीय योजनाओं और महत्वपूर्ण विकास पहलों (मूलतः नई स्कीमों) के संबंध में मंजूरी प्रदान करने वाला प्राधिकरण बन गया। एन डी सी, प्रायः अपनी समितियों के माध्यम से विवादास्पद नीतिगत मुद्दों के संबंध में मतैक्य कायम करने में सफल रही है, और प्रारम्भिक वर्षों में एन डी सी की खुद की चर्चाएं सारवान थी। अव्यवस्थित चर्चाओं की सीमाओं और "कामकाज को संचालन" की मुख्यतः तैयारशुदा भाषणों के जरिए, जैसाकि एन आई सी और अन्तर-राज्य परिषद के मामले में नोट किया गया था, एन डी सी पर भी लागू होती हैं। एन डी सी, आर्थिक विकास जैसे मुद्दों पर, संसाधनों के आवंटन और संतुलित, संधारणीय विकास को सुकर बनाने सहित, क्षेत्रीय विषमताओं जैसे मुद्दों का समाधान करते हुए, गम्भीर मतभेदों से बचने के लिए, सर्वसम्मति कायम करने में और अधिक प्रभावी भूमिका निभा सकती है।

14.3.3.3 केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड (सी ए बी ई)

14.3.3.3.1 यद्यपि केन्द्र और राज्य सरकारों के परस्पर हित के विविध मामलों से संबंधित अनेक "सलाहकार" निकाय हैं, तथापि सी ए बी ई इस समूह में अनूठा है, न केवल इसलिए कि यह अपनी किस्म का एक प्राचीनतम निकाय है जिसकी स्थापना 1921 में की गई थी, बल्कि इसलिए भी कि इसने गम्भीर विवादों के समाधान में तथा शिक्षा से संबंधित, विशेष रूप से 1976 से पहले की अवधि के दौरान, जब "शिक्षा" एकमात्र रूप से राज्यों के क्षेत्राधिकार के तहत थी, मुद्दों पर राष्ट्रीय सहमति कायम करने में एक बड़ी भूमिका निभाई थी। अत्यंत जटिल और भावात्मक मुद्दे, जैसे कि "त्रि-भाषा सूत्र", राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति का समाधान भी सी ए बी ई के माध्यम से कर लिया गया। दुर्भाग्यवश, इस महत्वपूर्ण सहमति कायम करने वाले मंच को 1990 के दशक के दौरान निष्क्रिय रहने दिया गया: 2004 से इसका पुनरुज्जीवन एक उत्तम संकेत है। यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षा व सम्बद्ध क्षेत्रों में प्रमुख नीतिगत पहलों के संबंध में राज्यों की प्रतिक्रियाओं का पता लगाने के लिए सी ए बी ई ने अपनी पिछली सक्रियतापूर्ण भूमिका पुनः संभाल ली है।

14.3.3.3.2 **सिफारिश**

क- राष्ट्रीय विकास परिषद और अन्य शीर्ष स्तर निकायों के संबंध में क्रियाविधि संबंधी विशिष्ट नियम तैयार किए जाने चाहिए ताकि संकेन्द्रित विचार-विमर्श सुनिश्चित हो सके।

14.4 अन्य संस्थागत नूतनताएं

14.4.1 यद्यपि विवादों में कमी लाने और उनके समाधान के लिए विद्यमान संस्थानों और मंचों को व्यापक आधारित मजबूत और प्रभावशाली बनाने की जरूरत है, तथापि कुछेक संस्थानों की विद्यमान रूपरेखा का विस्तार करने की भी जरूरत है ताकि बातचीत और विचार-विमर्श की कतिपय सिद्ध पद्धतियों का व्यापक रूप से इस्तेमाल किया जा सके, विशेष रूप से निम्नलिखित की ओर ध्यान आकर्षित किया जा सकता है:

14.4.1.1 राज्य-विशिष्ट संघर्ष स्थितियों पर चर्चा करने के लिए, सम्भाव्य विवादों सहित राज्य स्तर एकता परिषदों की स्थापना तथा ऐसी परिषदों की एन आई सी के साथ नेटवर्किंग की एक पद्धति की व्यवस्था करना। यह नेटवर्किंग, राज्य स्तर निकाय में चर्चित कुछेक महत्वपूर्ण मुद्दों को इसकी सलाह व आवश्यक होने पर ऐसे मुद्दों पर राष्ट्रीय मतैक्य के लिए एन आई सी में लाकर प्राप्त की जा सकती है

(उनके संबंध में की गई सिफारिशों के साथ)। इसी प्रकार, एन आई सी की संरचना के बारे में निर्णय लेने के लिए मार्गनिर्देश तैयार करते समय, केन्द्रीय सरकार राज्य स्तर निकायों को कुछ प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकती है। राज्य एकता परिषदों से संयोजनों के साथ जिला स्तर के लिए भी ऐसे ही निकायों की परिकल्पना की जा सकती है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ सतत रूप से विवाद-प्रधान जिलों में "शान्ति समितियों" की एक पद्धति प्रचलन में थी (जिला स्तर शान्ति समिति पर इस रिपोर्ट के अध्याय 9 में चर्चा की गई है)। विवादग्रस्त पक्षकारों को जल्द बातचीत के लिए राजी करने में ऐसी समितियां अत्यंत प्रभावी सिद्ध हुई थी। इस पद्धति को बहाल किया जाना चाहिए तथा इसे एक सामान्य "शान्ति समय" कार्यकलाप बनाकर भी उसे कम तदर्थ बनाया जाना चाहिए।

14.4.1.2 राज्यों, एक ही राज्य के भागों अथवा विशिष्ट शिकायतों को दूर करने अथवा मांगों को पूरा करने के लिए आन्दोलन कर रहे लोगों की एक बडी मांग वाले विवादों को उन व्यक्तियों की मध्यस्था के जरिए निपटाया जा सकता है जिन्हें समुदाय के अन्दर सम्मान और स्वीकार्यता प्राप्त हो। ये उपाय, कतिपय संघर्षों में, विशेष रूप से धार्मिक जुलूसों के मार्ग, धार्मिक समारोहों के समय की समस्या को और प्रमुख शिक्षा संस्थानों से संबंधित मुद्दों को, प्रतिष्ठित नागरिकों के "ट्रेक II" प्रयासों के जरिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं। व्यापक रूप से अपनी निष्पक्षता और विवेक के संबंध में जनता का व्यापक रूप से भरोसा और विश्वास प्राप्त करने वाले जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से चुने गए विख्यात व्यक्तियों को शामिल करके "शान्ति समितियाँ" गठित करके इस दृष्टिकोण को संस्थागत रूप दिया जा सकता है। ऐसी समितियां, केन्द्रीय और राज्य सरकारों द्वारा, उनकी जिम्मेदारियों और कार्यों को पर्याप्त रूप से नया रूप देकर, स्थायी समितियों के रूप में स्थापित की जा सकती हैं जिससे कि संकट के समय प्रक्रिया तथा अन्य क्रियाविधि तय करने में बहुमूल्य समय न गँवाया जाए। इन निकायों को, जब भी स्थितिवश जरूरी हो, अल्प नोटिस पर सक्रिय बनाया जा सकता है। उनकी "सलाह" पर अमल करने का आधार कानूनी प्रवर्तनीयता न होकर नैतिक प्राधिकार होगा।

14.1 ग्राम स्तर पर विवाद समाधान

गाँवों में जाति, श्रेणी और धर्म के आधार पर विवादों को कम करने के लिए, जो उनके विकास को अवरूद्ध कर रहे हैं, महाराष्ट्र सरकार ने "तांता मुक्ता" अभियान शुरू किया है।

प्रथम चरण में, सभी निलम्बित पड़े न्यायालय मामलों की सूची तैयार की जाएगी। ग्राम सभा एक "तांता मुक्ता" समिति का चयन करेगी, जिसमें समाज के सभी वर्गों के प्रतिनिधि सम्मिलित होंगे। यह समिति विवादों का समाधान करने की दिशा में कार्य करेगी। तथापि, समिति, "अत्याचार अधिनियम" के अन्तर्गत किए गए अपराधों पर विचार नहीं करेगी। यदि समिति विवाद का निपटान कर देती है तो विवादग्रस्त पक्षकार मामलों को वापस ले लेंगे।

स्त्रोत: "दि हिन्दू: बिजनिस लाइन," 2 नवम्बर 2007

14.4.2 सिफारिशें

क– राज्य स्तर विवाद स्थितियों का जायजा लेने के लिए राज्य एकता परिषदें गठित की जा सकती हैं जिनका एन आई सी के साथ उपयुक्त तालमेल हो। महत्वपूर्ण मामलों में, राज्य स्तर निकायों की रिपोर्ट को भी एन आई सी के विचारार्थ सलाह और सिफारिशों हेतु लाया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता परिषद की सदस्यता के बारे में निर्णय लेने के वास्ते मार्गनिर्देशों में राष्ट्रीय निकाय में राज्य एकता परिषदों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए समुचित प्राथमिकता प्रदान की जा सकती है।

ख– राज्य परिषदों के साथ उपयुक्त संयोजनों के साथ जिला स्तर एकता परिषदें (जिला शान्ति समितियां) स्थापित करने पर भी विचार किया जा सकता है, विशेष रूप से उन जिलों के लिए जहाँ हिंसक, विभाजक संघर्ष हुए हैं। इनमें प्रख्यात व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है जिन्हें समाज के सभी वर्गों का विश्वास प्राप्त हो। ये निकाय संघर्षपूर्ण स्थितियों में मध्यस्थ और सलाहकार की भूमिका निभा सकते हैं।

निष्कर्ष

कहा जाता है कि शान्ति का होना संघर्ष का अभाव नहीं है बल्कि विवाद के प्रत्युत्तर हेतु रचनात्मक विकल्पों की विद्यमानता, निष्क्रिय अथवा आक्रामक प्रतिक्रियाओं का विकल्प, हिंसा का विकल्प है।

"संघर्ष प्रबंधन हेतु क्षमता निर्माण" पर इस रिपोर्ट में प्रशासनिक सुधार आयोग (ए आर सी) ने उन उपायों की रूपरेखा देने का प्रयास किया है जिसे सभी प्रकार के संघर्षों का प्रबंध और समाधान करने के लिए देश की संस्थागत क्षमता को सुधारने के लिए किया जा सकता है। आज यह सर्वविदित है कि भारतीय संविधान में विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच संघर्षों का समाधान करने, क्षेत्रों के बीच विभाजक प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने की पर्याप्त गुंजाइश है और भारत जिस विविध स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है, उसका एक भाग रहते हुए, हमारे समाज के असुविधाप्राप्त वर्गों के लिए उम्मीद प्रदान करता है।

आजादी के बाद के हमारे इतिहास के दौरान हमारे सामने बहुत सी किस्म के संघर्ष पैदा हुए हैं, जिनमें से कुछेक का समाधान सफलतापूर्वक किया गया जबकि कुछ अभी भी सुलग रहे हैं। राजनीतिक उदारवाद, मजबूत शासन प्रणालियों और अपने संवैधानिक मानदण्डों के पालन करने पर दृढ़तापूर्वक बल दिए जाने से भारत अपने पड़ोस में राजनीतिक उथल-पुथल से अलग रहा है और अपने प्रजातन्त्र को एक ऐसे स्थान तक पहुँचाने में सफल रहा है कि यह एक परिपक्व और सम्मानित उदीयमान शक्ति बन गया है। एक ऐसा संस्थागत संदर्भ कायम करना, जिसमें संघर्ष प्रबंधन, अल्पावधिक अग्निशमन उपायों का मार्ग अपनाकर अपनाने की बजाए, समाज के सभी वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए, एक प्रजातान्त्रिक ढंग से किया जाए, इसी बात पर रिपोर्ट में बल दिया गया है।

यह मुद्दा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि हमारे देश में यह एक बढता क्षुब्धकर भ्रम है कि हिंसक आन्दोलन का मार्ग अपनाना पीड़ित समूहों के लिए अपनी शिकायतें प्रस्तुत करने की एक पसंदीदा कार्यनीति है बजाए इसके कि प्रजातांत्रिक आन्दोलन और विसम्मति की संवैधानिक विधियों को अपनाया जाए। विडम्बना यह है कि भारतीय राष्ट्र के निर्माता महात्मा गांधी, अन्याय के खिलाफ आन्दोलनों की अहिंसक और शान्तिपूर्ण पद्धतियों के मानवता के पथ प्रदर्शक थे। किसी हित के लिए लोगों को राजनीतिक रूप से अभिप्रेरित करने के क्षेत्र में सत्याग्रह, नागरिक अवज्ञा, शान्तिपूर्ण अ-सहयोग सभी उनके योगदानों में थे।

भारत को आज ऐसे राजनीतिक आन्दोलनों के प्राचलों की जरूरत है जो शान्तिपूर्ण रहें, एक ऐसी राजनीतिक गतिविधि जो सभ्य और मानवीय हो, एक ऐसी राजनीति जो परस्पर गुंजाइश और सम्मान

पर कायम हो, आक्रामकता के बगैर प्रजातान्त्रिक सौदेबाजी के लेने और देने पर आधारित हो तथा ऐसे संघर्ष, जो छड़ों और पत्थरों की बजाए विचारों और चिन्तन पर आधारित हों। इस रिपोर्ट में यह कायम करने में मदद देने के वास्ते संस्थागत पद्धतियों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है। उममीद है कि एक शानतिपूर्ण और समृद्ध भारत की भागीदारीपूर्ण कल्पाना से, हमारे राष्ट्र निर्माण प्रक्रिया के भाग के रूप में हमारे मतभेदों को शान्तिपूर्ण ढंग से दूर करने के इस सामूहिक प्रयास में सभी पणधारी इकट्ठे हो सकेंगे।

सिफारिशों का सांराश

1. (पैरा 3.8) वाम उग्रवाद

क– केन्द्रीय सरकार द्वारा संबंधित राज्य सरकारों के साथ परामर्श करके, संसद में घोषित "14 सूत्री कार्यनीति" के आधार पर कार्रवाई का एक दीर्घावधिक (10 वर्ष) और अल्पावधि (5 वर्ष) कार्यक्रम तैयार किया जा सकता है जिससे कि "कार्यनीति" को कार्यान्वित करने के लिए राज्य विशिष्ट कार्रवाई विनिश्चित की जा सके।

ख– "14 सूत्री कार्यनीति" की भावना से सहमत होते हुए उग्रवादी दलों के साथ बातचीत विवाद निपटान की एक महत्त्वपूर्ण विधि होनी चाहिए।

ग– प्रशासनिक मानीटरन और पर्यवेक्षण के मामले में "बुनियादी सिद्धान्तों का पालन करने " का एक मजबूत मामला है। समय–समय पर अधिकारिक निरीक्षण और संगठनात्मक निष्पादनों की समीक्षा करने की पद्धति पुनरूज्जीवित की जानी चाहिए। यह समझा जाना चाहिए कि "अशान्त क्षेत्रों" में ऐसी प्रथाओं को त्याग दिए जाने का मुख्य कारण वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा दौरे के समय उनकी वैयक्तिक सुरक्षा की आशंका का होना है। इसलिए सलाह है कि दौरे के समय वरिष्ठ प्रशासनिक और तकनीकी अधिकारियों की उपयुक्त सुरक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए और इस प्रकार गम्भीर हिंसा से प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस बलों का आकलन करते समय इसे ध्यान में रखा जाना चाहिए।

घ– कारगर और पक्की तौर पर, किन्तु संवैधानिक सीमाओं के अन्दर कार्य करने के लिए सुरक्षा बलों की क्षमता में वृद्धि करने की जरूरत है; यह आवश्यक है कि मानक प्रचालनात्मक प्रक्रियाएं और प्रोटोकोल विशिष्ट रूप से और विस्तापूर्वक निर्धारित की जानी चाहिए।

ड.– गड़बड़ियों के मूल कारणों के संबंध में, जिन्हें उन्हें खत्म करना है, पुलिस और अर्ध–सैनिक कार्मिकों को संवेदीकृत बनाने सहित उनका प्रशिक्षण और अनुस्थापन किया जाना आवश्यक है।

च– आन्ध्र प्रदेश में "ग्रेहाउण्डस" की पद्धति पर प्रशिक्षित विशेष कार्य बलों का गठन, वाम उग्रवाद का समाधान करने के लिए पुलिस तंत्र में क्षमता निर्माण करने की कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए।

छ– उग्रवादी प्रभावित इलाकों में स्थानीय रूप से भर्ती किए गए पर्याप्त स्टाफ के साथ स्थानीय स्तर के पुलिस स्टेशनों की स्थापना और सुदृढ़ीकरण वाम उग्रवाद का समाधान करने की पुलिस प्रणाली कार्यनीति का एक महत्वपूर्ण घटक होना चाहिए।

ज– अनुसूचित जनजाति व अन्य पारम्परिक वन वासी (अधिकारों की मान्यता) अधिनियम 2006 के प्रभावी कार्यान्वयन के वास्ते बहु–विषयक निगरानी समितियां गठित की जा सकती हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि इस समाधानकारी विधान पर अमल करने से स्थानीय पारि–पद्धतियों पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

झ– हिंसक वाम उग्रवाद के प्रचार के झांसे में आने वाले वर्गों के बीच असंतोष को नियंत्रित करने के लिए संवैधानिक सुरक्षोपायों, विकास स्कीमों और भू–सुधार पहलों के कार्यान्वयन का मानीटरन करने के लिए विशेष प्रयासों की जरूरत है।

ञ – स्थानीय रूप से संगत विकास को सुकर बनाने के वास्ते प्रभावित क्षेत्रों में केन्द्र प्रायोजित व अन्य स्कीमों के संबंध में कार्यान्वयन एजेन्सियों को पर्याप्त ढील दी जानी चाहिए जिससे कि वे स्थानीय आवश्यकताओं पर आधारित उपयुक्त परिवर्तन लागू कर सकें।

ट– राज्यों द्वारा अपने पंचायती राज अधिनियमों व अन्य विनियमों को पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम 1996 (पेसा) के प्रावधानों के अनुरूप बनाने के लिए संशोधित करने और इन प्रावधानों के कार्यान्वयन का केन्द्रीय पंचायती राज मंत्रालय द्वारा मानीटरन और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

ठ– गैर–कानूनी खनन/वन ठेकेदारों और परिवहनकर्ताओं और उग्रवादियों के बीच गठजोड़ को समाप्त किया जाना चाहिए जिससे उग्रवादी आन्दोलन के लिए वित्तीय सहायता प्राप्त होती है। इसकी प्राप्ति हेतु विशेष जबरन वसूली रोधी व धन की हेराफेरी रोधी प्रकोष्ठ राज्य पुलिस/ राज्य सरकार द्वारा स्थापित किए जाने चाहिए।

ड– बड़ी अवस्थापना परियोजनाओं को, विशेष रूप से सड़क नेटवर्क को कार्यान्वित करने के लिए, जिनका उग्रवादियों द्वारा अत्यंत विरोध किया जाता है अथवा जिनका उपयोग स्थानीय ठेकेदारों से धन वसूलने के लिए किया जाता है, ठेकेदारों के स्थान पर सीमा सड़क संगठन जैसी विशेष सरकारी एजेन्सियों का उपयोग करने पर, एक अस्थाई उपाय के रूप में, विचार किया जा सकता है।

2. (पैरा 4.9) भू–सम्बद्ध मुद्दे ।

क– कृषि क्षेत्रक में कठिनाई को दूर करने के लिए निम्निलिखित उपाय किए जाने चाहिए;

(i) कृषि के अनुरक्षण और संधारणीयता को प्रोत्साहित करने के लिए अधिशेष भूमि के पुनर्वितरण, काश्तकारों को शीर्षक सौंपना, और भू–जोतों की चकबंदी को आगे जारी रखने आदि जैसे भू–सुधार उपायों पर फिर से बल दिया जाना चाहिए।

(ii) किसानों को पर्याप्त और समय पर सुविधाएं प्रदान करने के उद्देश्य से, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग पद्धति को सुदृढ़ करने और उन्हें किसानों की जरूरतों के प्रति और अधिक प्रतिक्रियाशील बनाने की जरूरत है।

(iii) निर्धनता उपशमन कार्यक्रमों की पुनर्संरचना की जानी चाहिए ताकि उन्हें छोटे और सीमान्तिक किसानों की जरूरतों के प्रति और अधिक संवेदी बनाया जाए।

(iv) सरकारी निवेश में वृद्धि की जानी चाहिए ताकि ग्रामीण क्षेत्रों के अन्दर गरीब किसानों के लिए वैकल्पिक रोजगार अवसर प्रदान करने के लिए गैर–कृषि व कृषि से भिन्न कार्यकलापों का विस्तार किया जा सके।

(v) असुविधा–प्राप्त लोगों के लिए ऋण तथा विपणन की सुलभता में सुधार करने व सशक्त बनाने के लिए "स्वयं सेवी समूहों" के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए उपाय प्रारंभ करना।

(vi) मौसम बीमा स्कीमें और कीमत समर्थन पद्धतियां जैसे जोखिम कवरेज उपायों का विविधीकरण।

ख– भू–अधिग्रहण के संबंध में एक नया विधान अधियमित करने की जरूरत है जिसमें संशोधित राष्ट्रीय पुनर्वास नीति में निर्धारित सिद्धान्तों को शामिल किया जाए। परियोजना प्रभावित लोगों के पुनर्वास के संबंध में हाल ही में घोषित राष्ट्रीय नीति को सभी चल रही परियोजनाओं और साथ ही विचाराधीन परियोजनाओं के संबंध में भी तुरंत कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

ग– एस ई जेड के संबंध में वर्तमान दृष्टिकोण को निम्नलिखित के अनुसार बदलने की जरूरत है:

(i) एस ई जेड स्थापित करने में प्रमुख कृषि भूमि के उपयोग से बचा जाना चाहिए।

(ii) एस ई जेड की संख्या सीमित होनी चाहिए, बड़े न्यूनतम आकार के साथ और सम्भवतः पिछड़े क्षेत्रों में स्थापना के साथ, जिससे कि वे आर्थिक विकास के लिए आधार का कार्य कर सकें।

(iii) स्वयं किसानों द्वारा प्रवर्तित एस ई जेड को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(iv) विस्थापित व्यक्तियों की आजीविका का मुद्दा एस ई जेड नीति का प्रमुख मुद्दा होना चाहिए।

(v) एस ई जेड विनियमों मे पुनर्वास की सामाजिक जिम्मेदारी एस ई जेड की स्थापना करने के इच्छुक उद्यमियों पर स्पष्ट रूप से सौंपी जानी चाहिए। इसमें पानी, सफाई, स्वास्थ्य सुविधाओं और व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की व्यवस्था करना सम्मिलित होना चाहिए ।

(vi) एस ई जेड के प्रवर्तकों द्वारा गैर–प्रसंस्करण कार्यकलापों के लिए उपयोग करने के लिए अनुमत्य भूमि के भाग को न्यूनतम रखा जाना चाहिए तथा इसे उनकी योजनाएं अनुमोदित करने के समय ही सुनिश्चित किया जाना चाहिए। प्रसंस्करण और गैर–प्रसंस्करण कार्यकलापों के बीच विद्यमान अनुपात की फिर से जाँच की जानी चाहिए ताकि उत्पादक उपयोगार्थ प्रयुक्त की जाने वाली भूमि के अनुपात को अधिकतम किया जा सके। इसके साथ ही पर्यावरणीय विनियमों का कठोरतः अनुपालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

(vii) व्यापक रूप से सार्वजनिक विचार–विमर्श के बाद ही विस्तृत भू–उपयोग योजनाएं तैयार और उन्हें अन्तिम रूप दिया जाना चाहिए। एस ई जेड में औद्योगिक कार्यकलाप उन्हीं क्षेत्रों में आयोजित किए जाने चाहिए जो भू–उपयोग योजनाओं में उस प्रयोजनार्थ विनिश्चित हों।

(viii) निर्यात इकाइयों और विकासकर्ताओं दोनों के लिए व्यवस्थित अत्यंत उदार कर छूटों पर फिर से विचार किए जाने की जरूरत है।

3. (पैरा 5.5) जल सम्बद्ध मुद्दे

क– अन्तर–राज्य नदी विवादों के मामले में केन्द्रीय सरकार को और अधिक सक्रिय व निश्चयात्मक बनना चाहिए तथा ऐसे विवादों की मांग के अनुसार तत्परता व सतत रूप से ध्यान के साथ कार्य किया जाना चाहिए।

ख– क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 262 में यह व्यवस्था है कि न तो उच्चतम न्यायालय का और न ही कोई अन्य न्यायालय का अन्तर–राज्य नदी विवादों के संबंध में कोई क्षेत्राधिकार होगा इसलिए यह आवश्यक है कि इस प्रावधान की भावना को पूरी तरह से समझा जाना चाहिए।

ग– नदी बोर्ड अधिनियम, 1956 के स्थान पर एक विधान अधिनियमित करके, प्रत्येक अन्तर –राज्य नदी के संबंध में नदी बेसिन संगठन (आर बी ओ) कायम किया जाना चाहिए जैसा कि राष्ट्रीय एकीकृत जल संसाधन विकास आयोग, 1999 की रिपोर्ट में सुझाया गया है।

घ– सभी नदी बेसिन संगठनों के अध्यक्षों को, जब भी उनका गठन किया जाए, राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद का सदस्य बनाया जाना चाहिए।

ड.– राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद और आर बी ओ को और अधिक सकारात्मक भूमिका निभानी चाहिए। परिषद और इसके सचिवालय को और अधिक सक्रिय होना चाहिए, इसे विस्तारपूर्वक, संस्थागत व विधायी सुधार सुझाने चाहिए, अन्तर–राज्य जल विवादों के लिए प्रक्रियाएं तैयार करनी चाहिए और लोगों के इष्टतम विकास को ध्यान में रखते हुए तथा लोगों के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हुए विभिन्न लाभभोगियों द्वारा संसाधनों के उपयोग के संबंध में प्रक्रियाएं, प्रशासनिक व्यवस्था व विनियम सुझाने चाहिए।

च– एक ऐसी रूपरेखा के आधार पर, जिसमें दीर्घावधिक संदर्श को शामिल किया जाए, जल का विकास, संरक्षण, उपयोग और प्रबंध करने के उद्देश्य से एक राष्ट्रीय जल कानून अधिनियमित किया जाना चाहिए जैसा कि ऊपर पैराग्राफ 5.4.3 में सुझाया गया है।

4. (पैरा 6.11) अनु. जातियों से सम्बद्ध मुद्दे

क – सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए एक बहु–आयामीय प्रशासनिक कार्यनीति अपनानी चाहिए कि अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव को समाप्त करने के लिए किए गए संवैधानिक, कानूनी और प्रशासनिक प्रावधानों को सच्ची भावना के साथ कार्यान्वित किया जाए।

ख – अधीनस्थ न्यायालयों में लम्बित भेदभाव के मामलों का शीघ्र निपटान सुनिश्चित करने के लिए ऐसे मामलों की समीक्षा करने के वास्ते, उच्च न्यायालय के प्रशासनिक न्यायाधीश के नियंत्रणाधीन एक आन्तरिक प्रणाली कायम की जानी चाहिए।

ग – सामाजिक और साम्प्रदायिक सामन्जस्य प्रोत्साहित करने तथा अनु. जातियों और अनु.

जनजातियों के विरूद्ध भेदभाव को रोकने के लिए सार्वजनिक प्राधिकारियों को सकारात्मक डयुटी सौंपे जाने की जरूरत है।

घ– सामाजिक भेदभाव के मामलों का पता लगाने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण आयोजित करने के लिए स्वतंत्र एजेन्सियों की सेवाएं प्राप्त करने की जरूरत है।

ड.– भेदभाव और अत्याचारों के लिए दण्डित करने संबंधी कानूनों और उपायों के बारे में जागरूकता का प्रसार करने की जरूरत है। उन क्षेत्रों में जहाँ जागरूकता स्तर निम्न है, एक सु–लक्षित जागरूकता अभियान आयोजित करना आवश्यक है। "भेद्य क्षेत्रों" का पता लगाने के लिए जिला प्रशासन को स्वतन्त्र सर्वेक्षण आयोजित करने चाहिए।

च– प्रशासन तथा पुलिस को, अनु. जातियों और अनु. जनजातियों की विशेष समस्याओं के संबंध में, संवेदी बनाया जाना चाहिए। उन्हें, कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराधों का पता लगाने और जाँच में और अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। संवेदी बनाने की प्रक्रिया में उपयुक्त प्रशिक्षण कार्यक्रमों से मदद मिल सकती है।

छ– प्रवर्तन एजेन्सियों को स्पष्ट शब्दों में यह बता दिया जाना चाहिए कि कमजोर वर्गों के अधिकारों के प्रवर्तन को और गड़बडी होने अथवा बदले के भय के कारण कम महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

ज– प्रशासन को पीड़ितों के पुनर्वास पर बल देना चाहिए तथा उन्हें परामर्श देने सहित सभी अपेक्षित सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

झ– जहाँ तक सम्भव हो, पर्याप्त संख्या में अनु. जाति और अनु. जनजाति आबादी वाले पुलिस स्टेशनों में पुलिस कार्मिकों की तैनाती ऐसे समुदायों की आबादी के अनुपात में की जानी चाहिए। उन स्थानों के मामलों में भी यही सिद्धान्त अपनाया जाना चाहिए जहाँ भाषाई और धार्मिक अल्पसंख्यकों का अनुपात काफी हो।

ञ– समानता को प्रोत्साहित करने तथा सामाजिक भेदभाव को सक्रियता के साथ चैक करने के लिए सभी सार्वजनिक प्राधिकारियों को सांविधिक डयुटी सौंपी जानी चाहिए।

ट– प्रोत्साहनों की एक पद्धति प्रारंभ करना वांछनीय होगा जिसके अन्तर्गत अधिकारियों द्वारा अनु. जातियों के विरूद्ध भेदभाव/अत्याचारों का पता लगाने और उनके सफलतापूर्वक अभियोजन के लिए उन्हें उपयुक्त रूप से सम्मानित किया जाना चाहिए।

ठ – कानून प्रवर्तन एजेन्सियों को अनु. जातियों की समस्याओं के प्रति उपुक्त रूप से संवेदी बनाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रायोजित करने तथा कानूनों का सख्ती के साथ प्रवर्तन करने की जरूरत है।

ड – स्थानीय शासनों को नगरपालिकाओं और पंचायतों को विभिन्न सामाजिक विधानों के प्रभावी प्रवर्तन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों में सक्रियतापूर्वक सम्मिलित किया जाना चाहिए।

ढ – अनु. जातियों के विकास के लिए सरकार के प्रयासों को पूरक बनाने में कम्पनी क्षेत्रक तथा एन जी ओ को शामिल किए जाने की जरूरत है। ऐसी स्वैच्छिक कार्रवाई न केवल अनु. जातियों के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकरण की दिशा में बल्कि उन्हें अत्याचारों, भेदभाव व शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की दिशा में भी की जानी चाहिए।

5. (पैरा 7.10) अनु. जनजातियों से सम्बद्ध मुद्दे

क– यद्यपि पाँचवीं अनुसूची में सभी राज्यों ने "पेसा" की दृष्टि से अनुपालन विधान अधिनियमित किए हैं, तथापि ग्राम सभा से अन्य निकायों को उनकी शक्तियां प्रदान करके, उनके प्रावधानों को शिथिल कर दिया गया है। विषय मामला कानूनों और साहूकारी से संबंधित नियमों, वन, खनन और उत्पाद शुल्क के संबंध में भी संशोधन नहीं किए गए हैं। यह किया जाना चाहिए। चूक के मामले में, भारत सरकार द्वारा, उल्लंघनों की जाँच करने तथा सुधारात्मक उपाय अपनाने के लिए केन्द्रीय स्तर पर एक मंच स्थापित करने के वास्ते, पाँचवी अनुसूची के भाग "क" के उपबंध 3 के तहत विशिष्ट निर्देश जारी किए जाने की जरूरत है। आयोग संविधान की पाँचवी अनुसूची के अन्तर्गत राज्यपालों की वार्षिक रिपोर्टों के महत्व पर पुनः बल देना चाहेगा।

ख– जागरूकता अभियान आयोजित किए जाने चाहिए, जिससे कि जनजातीय लोगों को "पेसा" के प्रावधानों और संविधान के 73वें संशोधन से अवगत कराया जा सके, जिससे कि उन मामलों में जवाबदेही की मांग की जा सके जिनमें लिए गए अन्तिम निर्णय ग्राम सभा अथवा पंचायत के निर्णयों के विपरीत हों।

ग– भू–जोतों के बारे में जानकारी की मुक्त सुलभता के साथ विद्यमान भू–अभिलेखों में आमूल रूप से परिवर्तन अथवा व्यवस्थित ढंग से उनका पुनर्गठन किया जाना चाहिए।

घ– जनजातीय क्षेत्रों में कार्यान्वित की जा रही सरकारी नीतियों और विभिन्न विधानों को "पेसा" के प्रावधानों के साथ सामन्जस्यपूर्ण बनाए जाने की जरूरत है। जिन कानूनों में तालमेल बिठाए जाने की जरूरत है वे हैं : भू–अधिग्रहण अधिनियम 1894, खान और खनिज (विकास तथा विनियमन) अधिनियम, 1957, भारतीय वन अधिनियम, 1927, वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और भारतीय पंजीकरण अधिनियम। राष्ट्रीय नीतियों जैसे कि राष्ट्रीय जल नीति, 2002 राष्ट्रीय खनिज नीति, 2003, राष्ट्रीय वन नीति 1988, वन्य जीवन संरक्षण कार्यनीति, 2002 और राष्ट्रीय पर्यावरण नीति 2004 के मसौदे का "पेसा" के साथ तालमेल बिठाया जाना जरूरी है।

ङ. अनु. जनजातीय क्षेत्रों के लिए लागू होने वाले कानूनों का निर्माण संविधान की पाँचवी और छठी अनुसूचियों के सिद्धान्तों के अनुरूप किया जाना चाहिए।

च– सरकार को ऐसे पुलिस, राजस्व और वन अधिकारियों का चयन करना चाहिए जो प्रशिक्षित हों और जो जिन लोगों की उन्हें सेवा करनी है उन्हें समझें तथा उनके प्रति सहानुभूति बरते।

छ– जनजातियों के कल्याण के लिए एक मार्गदशी चित्र के रूप में कार्य करने के लिए व्यापक विकास हेतु एक राष्ट्रीय कार्रवाई योजना तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए।

ज– जनजातीय क्षेत्रों में विनियामक और विकास कार्यक्रमों का अभिसरण किया जाना चाहिए। इस प्रयोजनार्थ, विवादों के समाधान और समायोजनों के लिए उपयुक्त तंत्र के साथ एक दशकीय विकास योजना तैयार और कार्यान्वित की जानी चाहिए।

झ– अनु. जनजातियों की सूची में जनजातियों को शामिल करने और उनके निष्कासन के निर्धारण में लगे प्राधिकारियों को, बड़ी अनु. जाति के लोगों की आबादी वाले राज्यों के साथ, स्पष्ट रूप से परिभाषित प्राचलों के साथ एक व्यापक प्रक्रिया के आधार पर, परामर्श करने की एक पद्धति अपनानी चाहिए।

6. (पैरा 8.6) अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बद्ध मुद्दे

क– सरकार, एक सर्वेक्षण की क्रियाविधि तय कर सकती है और अन्य पिछड़े वर्गों का राज्य–वार समाजार्थिक सर्वेक्षण आयोजित कर सकती है जो उनकी स्थिति सुधारने के लिए नीतियों और कार्यक्रमों का एक आधार बन सकता है।

ख– सरकार द्वारा अ. पि. वर्गों के क्षमता निर्माण के लिए एक व्यापक स्कीम तैयार और कार्यान्वित करने की जरूरत है जिससे वे शेष समाज के बराबर आ सकेंगे।

7. (पैरा 9.6) धार्मिक संघर्ष

क– सामुदायिक पुलिस व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आयोग द्वारा "सार्वजनिक व्यवस्था" पर उसकी रिपोर्ट के पैराग्राफ 5.15.5 में निर्धारित सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए।

ख– जिला शान्ति समितियों/एकता परिषदों को साम्प्रदायिक असामन्जस्य पैदा करने की सम्भावना वाले मुद्दों का समाधान करने के कारगर साधन बनाए जाए। पुलिस आयुक्त वाली प्रणाली में इन समितियों की स्थापना पुलिस आयुक्त द्वारा पुलिस आयुक्त के साथ परामर्श करके की जा सकती है। ये समितियां स्थायी किस्म की होनी चाहिए। इन समितियों को साम्प्रदायिक संघर्षों के रूप में बदलने की क्षमता वाली स्थानीय समस्याओं का पता लगाना चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र उनसे निपटने के लिए साधन सुझाने चाहिए। इसके अलावा, इसी प्रकार से मोहल्ला समितियां भी गठित की जानी चाहिए।

ग– संघर्ष प्रधान क्षेत्रों में, पुलिस को ऐसे कार्यक्रम तैयार करने चाहिए जिनमें लक्ष्य आबादी वाले सदस्यों को, विश्वास निर्माण पद्धति के रूप में पुलिस के साथ विचार–विमर्श करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए।

घ– साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के लिए एक पृथक कानून की जरूरत नहीं है, भारतीय दण्ड संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता के विद्यमान प्रावधानों को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए। यह निम्नलिखित की व्यवस्था करके प्राप्त किया जा सकता है:

(i) साम्प्रदायिक अपराधों के लिए वर्धित दण्ड।

(ii) साम्प्रदायिक हिंसा से सम्बद्ध मामलों के शीघ्र विचारण के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना।

(iii) साम्प्रदायिक अपराधों के मामलों में कार्यकारी मजिस्ट्रेटों को रिमांड की शक्तियां प्रदान करना।

(iv) राहत और पुनर्वास के मानदण्डों का निर्धारण।

उपरोक्त के अलावा, जैसी कि आयोग की "सार्वजनिक व्यवस्था" पर रिपोर्ट के पैरा 6.1.7.9 में सिफारिश की गई है, इसके साथ ही द. प्र. सं. की धारा 196 में दिए गए प्रावधानों को समाप्त किया जाना चाहिए जिनके तहत भा. द. सं. की धारा 153 क, 153 ख, 295 क और धारा 505 की उप–धारा (1) (ग), (2) और (3) के अन्तर्गत अपराधों के लिए अभियोजन शुरू करने के लिए केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार अथवा जिला मजिस्ट्रेट की पूर्व–अनुमति आवश्यक है।

ङ.– साम्प्रदायिक हिंसा के पीड़ितों के पुनर्वास और राहत प्रदान करने के लिए जिला प्रबंधन अधिनियम 2005 के अन्तर्गत व्यवस्थित प्रणाली का कारगर ढंग से प्रयोग किया जाना चाहिए।

8. (पैरा 10.3) नीतियां और विवाद

क– राजनीतिक दलों को हमारी प्रजातान्त्रिक पद्धति में अनुमत्य विसम्मति के स्वरूपों के संबंध में एक आचरण संहिता तैयार करनी चाहिए। इसे एक कानून में शामिल किया जा सकता है जो सभी राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं पर लागू होगी। कानून को लागू करने का काम चुनाव आयोग को सौंपा जा सकता है। कानून के अन्तर्गत, राजनीतिक दलों और उनके कार्यकर्ताओं के विरूद्ध आपराधिक मामले फाइल करने और रोधक के रूप में जुर्माना आरोपित करने की व्यवस्था करके, प्रजातान्त्रिक विसम्मति के निर्धारित स्वरूपों का उल्लंघन करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्रवाई भी निर्धारित की जा सकती है।

ख– इस बात पर आम सहमति होनी चाहिए कि पहचान की राजनीति प्रजातन्त्र द्वारा प्रदत्त रूपरेखा के अन्दर की जाएगी और इसे असाध्य संघर्ष का रूप नहीं दिया जाएगा जिसकी वजह से हिंसा पैदा हो। राजनीतिक दलों को ऐसी आम सहमति कायम करने के लिए क्षमता निर्मित करने की जरूरत है।

9. (पैरा 11.6) क्षेत्रीय विषमताएं

क– मानव विकास के संकेतकों के आधार पर निर्धनता, साक्षरता और शिशु मृत्यु दरों सहित, सामाजिक और आर्थिक अवस्थापना के सूचकों के साथ–साथ, पिछड़े क्षेत्रों का विनिर्धारण करने के लिए (एक यूनिट के रूप में ब्लाक के साथ) एक मिश्रित मापदण्ड योजना आयोग द्वारा 12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए तैयार किया जाना चाहिए।

ख– केन्द्रीय और राज्य सरकारों को अधिक पिछड़े क्षेत्रों को लक्षित करते हुए निधियों के ब्लाक–वार अन्तरण हेतु एक सूत्र अपनाना चाहिए।

ग– राज्य के अन्दर अधिक पिछड़े क्षेत्रों को विशेष रूप से सुदृढ़ करने के लिए अधिशासन जरूरतों को सुदृढ़ किया जाना चाहिए। "विशेष प्रयोजन वाहनों," जैसे कि पिछड़ा क्षेत्र विकास बोर्ड और प्राधिकरणों की आन्तर–राज्य विषमताओं को कम करने में, भूमिका की समीक्षा करने की जरूरत है। स्थानीय शासनों को सुदृढ़ बनाने और उन्हें उत्तरदायी तथा जवाबदेह बनाना परामर्श योग्य है।

घ– आन्तर–राज्य विषमताओं में पर्याप्त रूप से कमी प्राप्त करने वाले राज्यों को (विकसित राज्यों सहित) पुरस्कृत करने की एक पद्धति लागू की जानी चाहिए।

ड.– कम विकसित राज्यों और ऐसे राज्यों में पिछड़े क्षेत्रों में अन्तर–जिला स्तर पर प्रमुख अवस्थापना का निर्माण करने के लिए अतिरिक्त निधियां उपलब्ध कराए जाने की जरूरत है। सहायता की मात्रा ऐसे क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या के अनुपात में होनी चाहिए।

च– ऐसे सभी निधियन के लिए दृष्टिकोण परिणामोन्मुखी होना चाहिए। कार्यनीति, मानव और स्थापना विकास के स्वीकार्य न्यूनतम मानदण्डों की परिभाषा इस प्रकार से करने की होनी चाहिए जिसे देश में प्रत्येक ब्लाक द्वारा प्राप्त किया जाए तथा नीतियां, पहल और वित्त पोषण के ढंग अन्तरों को पाटने तथा इस प्रकार परिभाषित मानक प्राप्त करने के विचार द्वारा मार्गदर्शित होनी चाहिए।

10. (पैरा 12.6.1.4) पूर्वोत्तर में पुलिस में क्षमता निर्माण

क– क्षेत्र में सेवारत अधिकारियों को, विविध कार्य स्थितियों का और अधिक अनुभव प्राप्त करने के लिए पूर्वोत्तर से बाहर सेवा करने के लिए और अधिक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। राज्य के स्थानीय और तकनीकी अधिकारियों को बड़े राज्यों में सेवा करने और देश–विदेश में प्रशिक्षण के माध्यम से अपनी व्यावसायिक अर्हताएं सुधारने के लिए भी अवसर प्रदान किया जाना चाहिए।

ख– पूर्वोत्तर में कार्यरत अधिकारियों के लिए उपलब्ध प्रोत्साहनों में वृद्धि की जानी चाहिए।

ग– प्रशासन की विभिन्न शाखाओं के लिए, तकनीकी सेवाओं सहित, पूर्वोत्तर परिषद द्वारा क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान प्रचालित किए जा सकते हैं।

घ– एन ई सी को, राज्यों के तहत तकनीकी तथा विशेषज्ञ विभागों में वरिष्ठ पदों के लिए क्षेत्रीय संवर्गों के विधिक फलितार्थों और व्यवहार्य की जाँच करने के लिए राज्यों के साथ चर्चाएं आयोजित करनी चाहिए।

ड. एन ई सी तथा गृह मंत्रालय, राज्यों के सहयोग से, क्षेत्र के संबंध में प्रशासनिक सुधारों के लिए एक एजेन्डा तैयार कर सकते हैं जिसके कार्यान्वयन का व्यवस्थित ढंग से मानीटरन किया जाना चाहिए। इस चार्टर पर संतोषजनक ढंग से अमल करने वाले राज्य अतिरिक्त धन के लिए, विशेष आर्थिक पैकेल सहित, पात्र हो सकते हैं।

11. (पैरा 12.6.2.4) पूर्वोत्तर में पुलिस में क्षमता निर्माण

क– पूर्वोत्तर पुलिस अकादमी (नेपा) के आधारिक ढाँचे और स्टाफ में बडे पैमाने पर उन्नयन किए जाने की जरूरत है जिससे कि शुरूआती स्तर पर बड़ी संख्या में अधिकारियों की जरूरतें पूरी हो सकें। "नेपा" का विकास बगावत से निपटने के लिए अन्य क्षेत्रों से सिविल पुलिस अधिकारियों को प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए भी किया जा सकता है। केन्द्रीय पुलिस संगठनों और सिविल पुलिस से, विशेष रूप से बगावत–रोधी प्रचालनों में उत्तम सेवा रिकार्ड वालों को, अकादमी में आकर्षित और वहाँ बनाए रखने के लिए वित्तीय व अन्य प्रोत्साहन आवश्यक हैं।

ख– क्षेत्र से पुलिस कार्मिकों को केन्द्रीय पुलिस संगठनों में तैनात करने की एक स्कीम लागू करने और बाहर के क्षेत्र से पूर्वोत्तर राज्यों में पुलिस अधिकारियों की प्रतिनियुक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए ठोस उपाय अपनाए जाने की जरूरत है।

12. (पैरा 12.6.3.1.7) पूर्वात्तर में स्थानीय शासन संस्थानों में क्षमता निर्माण छठी अनुसूची परिषदें

क– कुछ दृष्टि में "अनुसूचित क्षेत्रों" के साथ कम अनुकूल व्यवहार की शिकायतों से बचने के लिए संविधान की छठी अनुसूची में उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए जिससे कि स्वायत्त परिषदें राज्य वित्त आयोगों और राज्य चुनाव आयोगों की सिफारिशों से लाभान्वित हो सकें जिसकी व्यवस्था भारत के संविधान के क्रमश: अनुच्छेद 243 आई और 243 के में की गई है।

ख– केन्द्रीय सरकार, मेघालय सरकार और उस राज्य में स्वायत्त परिषदें, राज्य सरकार और परिषदों के बीच विवादों का समाधान करने के लिए एक संतोषजनक प्रणाली विकसित करने के लिए परिषदों और राज्य सरकारों के बीच संबंध की विद्यमान पद्धति की समीक्षा की जा सकती है।

ग- गृह मंत्रालय, संबंधित राज्य सरकारों और स्वायत्त परिषदों के साथ परामर्श करके, छठी अनुसूची के अन्तर्गत उन शक्तियों का विनिर्धारण कर सकता है जिन्हें राज्यपाल द्वारा मंत्रिपरिषद की "सहायता और सलाह" पर कार्रवाई करने की बजाए इस्तेमाल किया जा सके, जैसा कि संविधान के अनुच्छेद 163 (1) में परिकल्पित है।

घ- छठी अनुसूची के पैराग्राफ 14 में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जा सकता है जिससे कि केन्द्रीय सरकार सभी स्वायत्त जिलों के प्रशासन की स्थिति का आकलन करने और उस पैराग्राफ में परिकल्पित अन्य सिफारिशें करने के लिए उनके संबंध में एक सामान्य आयोग नियुक्त कर सके। आयोग के लिए समय के अन्तराल की भी व्यवस्था की जा सकती है।

ङ.- असम सरकार को "मूल" स्वायत्त परिषदों के लिए बजटीय आवंटन निर्धारित करने तथा धन जारी करने की विद्यमान व्यवस्था की समीक्षा करनी चाहिए जिससे कि जहाँ तक व्यवहार्य हो, उन्हें बोडोलेण्ड क्षेत्रीय परिषद के संबध में व्यवस्थाओं के समान बनाया जा सके।

13. (पैरा 12.6.3.2.4) स्थानीय शासन संस्थानों में क्षमता निर्माण जनजातीय पूर्वोतिर में ग्राम स्तर स्वःशासन

(क) यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए कि सभी स्वायत्त परिषदें, सु-परिभाषित शक्तियों और संसाधनों के आवंटन की एक पारदर्शी पद्धति के साथ ग्राम स्तर निकाय स्थापित करने के लिए उपयुक्त विधान पारित करें।

(ख) स्वायत्त परिषदों के लिए अनुदान जारी करने से संबंधित नियमों में इस संबंध में निर्धारण किए जाने चाहिए कि निर्वाचित ग्राम स्तर निकायों के लिए उपयुक्त विधान पारित करने और उसे लागू करने पर ही परिषदें अतिरिक्त निधियन की पात्र होंगी।

(ग) स्वायत्त परिषदों को अपने दायित्व संतोषजनक ढंग से निपटाने में समर्थ बनाने के लिए यह जरूरी है कि इन निकायों के लिए धन की आवश्यकता, प्रदान की जाने वाली सेवा के न्यूनतम मानकों और स्थानीय संसाधन जुटाने की क्षमता के संदर्भ में, मानकीय रूप से तय की जाए। यह कार्य राज्य वित्त आयोग द्वारा किया जा सकता है।

(घ) विकेन्द्रीकृत ग्राम स्वः शासन के प्रतिमान की दिशा में नागालेण्ड ने सराहनीय कार्य किया है जिसने निर्वाचित तत्वों को पारम्परिक शक्ति केन्द्रों के साथ मिला दिया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय को, विभिन्न विकास तथा निर्धनता उपशमन पहुओं को कार्यान्वित करने के लिए इस व्यवस्था को औपचारिक रूप से मान्यता देनी चाहिए।

(ड.) मेघालय सरकार, राष्ट्रीय रोजगार गारंटी अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए गारो पहाड़ियों में निर्वाचित ग्राम समितियों के प्रयोग का, सभी ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के लिए राज्य भर में विस्तार करने के लिए उपाय कर सकती है।

(च) जरूरी है कि उन सभी राज्यों में जहाँ ग्राम निकाय छठी अनुसूची अथवा अन्य कानूनों के नाते, प्रथागत कानूनों के तहत न्याय प्रशासित करते हैं, ऐसे कानूनों को यथापूर्वक संहिताबद्ध किया जाए।

14. (पैरा 12.6.3.4.3) पूर्वोत्तर में स्थानीय शासन सस्थानों में क्षमत निर्माण–असम में जनजाति–विशिष्ट परिषदें तथा अन्य मुद्दे

क– असम सरकार, जनजाति विशिष्ट परिषदों/ग्राम परिषदों और पंचायती राज संस्थानों के बीच कार्यों का इस प्रकार से विभाजन कर सकती है कि अलग–अलग जनजातीय लाभार्थियों वाली स्कीमों को जनजाति विशिष्ट परिषदों को सौंपा जा सकता है, तथा क्षेत्र विकास स्कीमें पंचायती राज संस्थानों को सौंपी जा सकती हैं।

ख– राज्य सरकारें, एक ऐसी पद्धति शुरू कर सकती हैं जिससे कम से कम परिषदों की स्थापना लागतें जनजातीय उप–योजना से इतर स्त्रोतों से पूरी की जा सकें तथा इन आवश्यकताओं को अगले वित्त आयोग के पूर्वानुमानों में शामिल किया जा सके।

ग– राज्य सरकारें उन नूतन उपायों का पता लगाने के लिए उपाय करें जिन्हें क्षेत्र विकास हितों को प्रभावित किए बगैर जनजाति विशिष्ट परिषदों को सौंपा जा सके।

घ– जनजाति विशिष्ट परिषदों और पंचायती राज संस्थानों के संयुक्त प्रयासों के माध्यम से संगत क्षेत्रों में जिला तथा उप–जिला योजनाएं तैयार करने के लिए उपयुक्त मार्गनिर्देश तैयार किए जा सकते हैं।

ड.– यद्यपि, पर्वतीय जिला परिषदों के पुररूद्धार के बारे में मणिपुर में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सर्वसम्मति कायम करने के लिए सतत रूप से व कठोर प्रयास करने की जरूरत है, तथापि उस राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम स्तर निकाय कायम करने के लिए उपयुक्त विधान तैयार करने के लिए तत्काल उपाय किए जाने चाहिए।

15. (पैरा 12.6.4.3) पूर्वोत्तर में क्षेत्रीय संस्थानों में क्षमता निर्माण–एन ई सी और डी ओ एन ई आर

क– मूल "विवाद निपटान प्रावधान" को बहाल करने के लिए, एन ई सी अधिनियम, 1991 में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाए जिससे कि परिषद के लिए "क्षेत्र में दो अथवा अधिक राज्यों के परस्पर हित के मुद्दों पर चर्चा करना और उनके संबंध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना" आवश्यक हो।

ग– परिषद को, क्षेत्र में सुरक्षा के अनुरक्षण के लिए सदस्य राज्यों द्वारा किए गए उपायों की समीक्षा करने की अपनी जिम्मेदारी का प्रभावी ढंग से निपटान करने में मदद देने के लिए समर्थ बनाने के वास्ते, गृह मंत्रालय को परिषद सचिवालय को नियमित रूप से अपने "सुरक्षा समन्वय दायरे" के अन्दर रखना चाहिए। परिषद सचिवालय को, सुरक्षा समन्वयन में प्रभावी ढंग से सहायता देने के लिए उपयुक्त रूप से सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए।

घ– योजना आयोग को, प्राथमिकताओं के साथ और न कि एन ई सी द्वारा स्कीमों के आवंटन के साथ, एकीकृत क्षेत्रीय योजनाएं तैयार करने के लिए एक रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए। क्षेत्रीय योजना के अन्तर्गत, आन्तर–क्षेत्रीय, अन्तर–राज्य प्राथमिकताओं वाले क्षेत्रों पर बल देते हुए, जिनमें विवादों से बचने और क्षेत्रीय एकीकरण को प्रोत्साहित करने की क्षमता हो, क्षेत्रों पर बल दिया जाना चाहिए।

ड.– योजना आयोग को, अपने मार्गनिर्देशों में उपयुक्त रूप से संशोधन करके, राज्य योजना निर्माण प्रक्रिया में एन ई सी की भागीदारी सुनिश्चित करनी चाहिए।

च– "अ–व्यपगत योग्य संसाधनों के केन्द्रीय पूल (एन एल सी पी आर) से निधियां मंजूर करने की जिम्मेदारी पूर्वोत्तर परिषद (एन ई सी) को सौंपी जानी चाहिए। एन ई सी को, "पूल" से वित्त पोषण के लिए प्रस्तावों की जाँच–पड़ताल करने के लिए और उनके वित्त–पोषण के संबंध में संबंधित मंत्रालयों के साथ समन्वय से, पद्धतियाँ तैयार करनी चाहिए।

छ– यह वांछनीय है कि मानव संसाधनों और अवस्थापना के विकास जैसे क्षेत्रों को शामिल करते हुए पूरे क्षेत्र के लिए एक दस वर्षीय भावी योजना तैयार की जाए। शासन सुधार एजेण्डा भी इस योजना का एक भाग होना चाहिए। इस व्यापक योजना पर जल्द अनुवर्ती कार्रवाई करने के वास्ते, प्रधान मंत्री द्वारा नियमित रूप से मुख्य मंत्रियों के साथ समीक्षा की जानी चाहिए।

ज– पूर्वोत्तर क्षेत्र विकास मंत्रालय (डी ओ एन ई आर) को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा क्षेत्र के विकास की जिम्मेदारी, अवस्थापना क्षेत्रकों और अ–व्यपगत योग्य निधियों के उपयोग सहित, विषय सम्बद्ध मंत्रालयों को बहाल की जानी चाहिए तथा गृह मंत्रालय को नोडल मंत्रालय के रूप में कार्य करना चाहिए।

16. (पैरा12.6.5.2) पूर्वोत्तर में अन्य क्षेत्रीय संस्थानों में क्षमता निर्माण

क– एन ई सी, पूरे क्षेत्र के लिए एकसमान विविध मुद्दों का समाधान करने के लिए विज्ञानों, समाज विज्ञानों और मानविकियों में उच्च अध्ययन के एक केन्द्र के रूप में "नेहू" का विकास करने के लिए एक विस्तृत योजना तैयार कर सकती है। एन ई सी, एन ई आई जी आर आई एच एम एस को तृतीयक स्वास्थ्य उपचार के लिए विशेष रूप से क्षेत्र में निम्न आय वर्गों के लिए, एक केन्द्र के रूप में विकसित करने के लिए राज्य सरकारों के साथ व्यवस्था को भी सक्रिय रूप से समन्वित कर सकती है।

17. (पैरा12.6.6.3) भारतीय नागरिकों का राष्ट्रीय रजिस्टर

क– एम एन आई सी परियोजना को प्राथमिकता के आधार पर कार्यान्वित किया जाना चाहिए क्योंकि अनेक केन्द्रीय और राज्य सरकार एजेन्सियाँ ऐसी ही पहचान पत्र जारी करती हैं इसलिए ऐसी सभी पद्धतियों के बीच तालमेल कायम करना आवश्यक होगा जिससे कि एम एन आई सी किसी व्यक्ति की पहचान के लिए एक बुनियादी प्रलेख बन सके और उसे एक बहु–प्रयोजन वैयक्तिक कार्ड के रूप में उपयोग में लाया जा सके। इस परियोजना के कार्यान्वयन में, अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं वाले क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

18. (पैरा 12.6.7.2) पूर्वोत्तर में क्षमता निर्माण –विविध मुद्दे

क– उच्च स्तरीय आयोग की "ट्रांसफोर्मिंग दि नार्थ–ईस्ट" नामक अपनी रिपोर्ट में की गई सिफारिशों और पूर्वोत्तर परिषद द्वारा तैयार "विकास पहलों के संबंध में कार्य बल" की रिपोर्ट को क्षेत्र में आधारभूत ढाँचे में अन्तरालों को पूरा करने के लिए कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

ख– क्षेत्र को एक प्राथमिकतापूर्ण निवेश स्थल के रूप में प्रोत्साहित करने के लिए एक व्यापक रूपरेखा तैयार किए जाने की जरूरत है।

ग– महत्वपूर्ण सड़क गलियारों के निर्माण के वित्त पोषण के लिए एक परिवहन विकास निधि कायम की जानी चाहिए।

घ– "पूर्व की ओर देखने" की नीति को व्यापक रूप से कार्यान्वित करना यद्यपि पूरे देश के लिए संगत है, तथापि यह पूर्वोत्तर के दीर्घावधिक विकास के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, इसे कार्यान्वित करने के लिए एजेण्डा राज्य सरकारों के सक्रिय सहयोग से तैयार किया जाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों के बीच नीति के कार्यान्वयन और आयोजना के संबंध में जिम्मेदारी का स्पष्ट विभाजन शीघ्र से शीघ्र किया जाना चाहिए।

ड. क्षेत्र में रेल संयोजकता में प्राथमिकता के आधार पर सुधार किया जाना चाहिए।

च– रिजर्व बैंक व अन्य वित्तीय संस्थानों की नीतियों में और ढील देकर तथा उन्हें संवेदी बनाकर बैंक शाखाएं व अन्य ऋण वितरण केन्द्रों की स्थापना करने के लिए अधिक प्रयास किए जाने की जरूरत है।

छ– पूर्वोत्तर में व्यावसायिक व उच्च शिक्षा के लिए उत्कृष्ट केन्द्र स्थापित करने की जरूरत है। इसके अलावा, तकनीकी शिक्षा के लिए आई टी आई जैसी सुविधाओं का बड़े पैमाने पर विस्तार किया जाना चाहिए जिससे कि दक्ष कार्य बल का एक पूल कायम किया जा सके और उद्यमी क्षमता व साथ ही रोजगार का भी सृजन हो सके।

ज– प्रथागत न्यायिक पद्धति का एक गहन अध्ययन करने की जरूरत है जिससे कि विद्यमान मानदण्डों और प्रथाओं की बेहतर समझ और प्रसार हो सके।

झ– पूर्वोत्तर के लिए भू–अभिलेखों के अनुरक्षण की एक विश्वस्तीय पद्धति तैयार करने की जरूरत है।

19. (पैरा 13.2.5) कार्यकारी और संघर्ष प्रबंधन – पुलिस तथा कार्यकारी मजिस्ट्रेसी

क– आयोग द्वारा "सार्वजनिक व्यवस्था" पर अपनी पाँचवी रिपोर्ट (अध्याय 5 और 6) में सिफारिश किए गए पुलिस सुधारों से पुलिस की संघर्ष समाधान में और अधिक प्रभावी व सक्रिय भूमिका निभाने की संस्थागत क्षमता में वृद्धि होने की सम्भावना है। इसलिए आयोग इन सिफारिशों पर पुनः बल देता है।

ख– पुलिस अधिकारियों के दायित्व में, उनके ड्युटी चार्टर में संघर्ष समाधान को शामिल करने के लिए, विस्तार करते हुए, उपयुक्त प्रावधान शामिल करने के लिए पुलिस संहिताओं को अद्यतन बनाया जाना चाहिए। इस विषय पर संगत इनपुटों की व्यवस्था करने के लिए प्रशिक्षण प्रारूप में भी उपयुक्त संशोधन किए जाने चाहिए। समग्र निष्पादन का मूल्यांकन करते समय इस "शीर्ष" के अन्तर्गत उपलब्धियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

ग– राजस्व व अन्य क्षेत्र स्तर अधिकारियों के रूप में अपनी हैसियत से कार्यपालक मजिस्ट्रेटों की जनता के साथ व्यापक अन्योन्यक्रिया होती है तथा उन्हें विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में काफी कीर्ति प्राप्त होती है। क्षेत्र की स्थितियों के बारे में उनकी जानकारी व उनके सामान्य सम्मान के वजह से वे स्थानीय विवादों में मध्यस्थता करने के लिए वार्ताकार के रूप में कार्य करने के लिए अच्छी स्थिति में होते हैं; राज्य सरकारों द्वारा इस संबंध में प्रक्रियाएं तथा संस्थागत प्रणाली कायम करने की जरूरत है।

20. (पैरा 13.3.4) न्यायिक देरियां तथा वैकल्पिक विवाद समाधान

क– अधीनस्थ न्यायपालिका की अवस्थापना और कार्मिकों के उन्नयन के लिए संसाधनों के आवंटन में संघीय राजकोषीय अन्तरणों में उच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

ख– लोक अदालतों की पद्धति द्वारा अपना आशातीत उद्देश्य पूरा करने और विशेष रूप से इस दृष्टिकोण को सफलता का एक अवसर प्रदान करने के लिए बार के सदस्यों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने पर अधिक ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

ग– विधि मंत्रालय को, अर्ध–न्यायिक प्राधिकरणों और निकायों के निर्णयों को "अधिक अन्तिम रूप देने" के साधनोपायों की खोज करने के लिए उच्च न्यायपालिका की बैंच और बार के साथ संवाद आरंभ करना चाहिए।

21. (पैरा 13.4.5) सिविल सोसायटी तथा संघर्ष समाधान

क– यद्यपि, सेवाएं प्रदान करने में सुधार करने और सामुदायिक आत्म–निर्भरता निर्मित करने के लिए सामाजिक पूंजी निर्माण को प्रोत्साहित किए जाने की जरूरत है तथापि यह जरूरी है कि ऐसे प्रयासों के अन्तर्गत "इन–हाउस" विवाद समाधान करने में समुदायों को शामिल करने का भी प्रयास किया जाए।

ख– विवाद समाधान में, पंचायतों और शहरी स्थानीय निकायों और साथ ही राज्य की "पुलिस–भिन्न" संस्थाओं को भी शामिल करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा सामान्य नीति मार्गनिर्देश तैयार किए जाने की जरूरत है।

ग– केन्द्र प्रायोजित और केन्द्रीय क्षेत्रक स्कीमों के मार्गनिर्देशों में उपयुक्त रूप से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि यह आवश्यक बनाया जा सके कि लाभार्थी क्षमता निर्माण के तहत स्थानीय विवाद प्रबंधन में आत्म निर्भरता विकसित करने पर भी बल दिया जाए।

22. (पैरा 14.3.1.1.10) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था – अन्तर – राज्य परिषद

क– संविधान के अनुच्छेद 263 (क) के तहत अन्तर–राज्य परिषद के लिए परिकल्पित संघर्ष समाधान भूमिका का प्रभावी रूप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिससे कि राज्यों के बीच अथवा सभी अथवा कुछ राज्यों और संघ के बीच विवादों का समाधान खोजा जा सके।

ख– तथापि, अन्तर–राज्य परिषद कोई स्थायी निकाय नहीं होना चाहिए। जब भी विशिष्ट जरूरत हो, संघ अथवा सम्बद्ध राज्यों के हित के मामलों के संबंध में विवाद अथवा नीति अथवा कार्रवाई के समन्वय पर विचार करने के लिए परिषद का गठन और आयोजित करने के लिए एक उपयुक्त राष्ट्रपति आदेश जारी किया जा सकता है। जिस प्रयोजन के लिए निकाय का गठन किया गया है उसके पूरा हो जाने पर यह निकाय कार्य करना बन्द कर सकता है।

ग– अन्तर–राज्य परिषद की संरचना शिथिलनीय हो सकती है जो अनुच्छेद 263 के तहत संदर्भित मामले की जरूरतों के लिए उपयुक्त हो।

घ– यदि आवश्यक हो, एक समय पर भिन्न–भिन्न विचारार्थ विषयों और संरचना के साथ, जैसा कि प्रत्येक परिषद के लिए जरूरी हो, एक से अधिक अन्तर–राज्य परिषद विद्यमान रह सकती है।

23. (पैरा 14.3.1.2.5) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था–राष्ट्रीय अनु. जाति आयोग और राष्ट्रीय अनु. जनजाति आयोग

क– संविधान के अनुच्छेद 263 (क) के तहत अन्तर–राज्य परिषद के लिए परिकल्पित संघर्ष समाधान भूमिका का प्रभावी रूप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए जिससे कि राज्यों के बीच अथवा सभी अथवा कुछ राज्यों और संघ के बीच विवादों का समाधान खोजा जा सके।

ख– तथापि, अन्तर–राज्य परिषद कोई स्थायी निकाय नहीं होना चाहिए। जब भी विशिष्ट जरूरत हो, संघ अथवा सम्बद्ध राज्यों के हित के मामलों के संबंध में विवाद अथवा नीति अथवा कार्रवाई के समन्वय पर विचार करने के लिए परिषद का गठन और आयोजित करने के लिए एक उपयुक्त राष्ट्रपति आदेश जारी किया जा सकता है। जिस प्रयोजन के लिए निकाय का गठन किया गया है उसके पूरा हो जाने पर यह निकाय कार्य करना बन्द कर सकता है।

ग– अन्तर–राज्य परिषद की संरचना शिथिलनीय हो सकती है जो अनुच्छेद 263 के तहत संदर्भित मामले की जरूरतों के लिए उपयुक्त हो।

घ– यदि आवश्यक हो, एक समय पर भिन्न–भिन्न विचारार्थ विषयों और संरचना के साथ, जैसा कि प्रत्येक परिषद के लिए जरूरी हो, एक से अधिक अन्तर–राज्य परिषद विद्यमान रह सकती है।

24. (पैरा 14.3.2.1.4) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था–क्षेत्रीय परिषदें

क– क्षेत्रीय परिषदों की पद्धति को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। एक ही क्षेत्र में राज्यों के बीच अन्तर–राज्य समन्वयन अथवा विवादों के महत्वपूर्ण मुद्दों को, जब कभी जरूरी हो, उपयुक्त संरचना और विचारार्थ विषयों के साथ अन्तर–राज्य परिषद को सौंपा जा सकता है जिससे कि किसी निश्चित मुददे पर गहराई से विचार किया जा सके।

25. (पैरा 14.3.3.1.8) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था– राष्ट्रीय एकता परिषद

क – राष्ट्रीय एकता परिषद (एन आई सी) के अधिदेश में अपेक्षित है कि राष्ट्रीय सामान्जस्य को प्रभावित करने वाले सभी कारकों पर और न कि केवल साम्प्रदायिकता और साम्प्रदायिक हिंसा पर विचार किया जाए। एन आई सी के एजेण्डे को विविधीकृत बनाए जाने की जरूरत है।

ख– परिषद के समक्ष मूल मुद्दों पर छोटी, विषय–विशिष्ट समितियों द्वारा विस्तारपूर्वक विचार किया जा सकता है।

ग– एन आई सी की संरचना को युक्तिसंगत बनाया जाए ताकि विविध किस्म के मुद्दों पर विचार किया जा सके। गृह मंत्रालय द्वारा हित समूहों तथा उन विशेषज्ञता समूहों का पता लगाने के लिए सामान्य रूपरेखा तय की जा सकती है जिन्हें एन आई सी में प्रतिनिधित्व दिए जाने की जरूरत है।

घ– परिषद की वर्ष में एक बार बैठक आयोजित की जा सकती है जबकि उप–समितियों की बैठक, जब भी आवश्यक हो, सौंपे गए कार्य को एक समयबद्ध तरीके से पूरा करने के लिए, आयोजित की जा सकती है।

ड – एन आई सी की कार्यवाही का सारांश संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

च– भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद (आई सी एस एस आर) और योजना आयोग, राष्ट्रीय एकता से संबंधित मुद्दों पर या तो विद्यमान संस्थान में अथवा एक नए संस्थान को प्रोत्साहित करके अथवा एक नेटवर्क के रूप में चर्चा करने के लिए एक बहु–विषयक अनुसंधान और नीति विश्लेषण मंच स्थापित करने के मामले में पहल कर सकते हैं।

26. (पैरा 14.3.3.3.2) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था–राष्ट्रीय विकास परिषद व अन्य शीर्ष स्तर निकाय

क– राष्ट्रीय विकास परिषद और अन्य शीर्ष स्तर निकायों के संबंध में क्रियाविधि संबंधी विशिष्ट नियम तैयार किए जाने चाहिए ताकि संकेन्द्रित विचार–विमर्श सुनिश्चित हो सके।

27. (पैरा 14.4.2) संघर्ष प्रबंधन के लिए संस्थागत व्यवस्था–अन्य संस्थागत नूतनताएं

क– राज्य स्तर विवाद स्थितियों का जायजा लेने के लिए राज्य एकता परिषदें गठित की जा सकती हैं जिनका एन आई सी के साथ उपयुक्त तालमेल हो। महत्वपूर्ण मामलों में, राज्य स्तर निकायों की रिपोर्ट को भी एन आई सी के विचारार्थ सलाह और सिफारिशों हेतु लाया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता परिषद की सदस्यता के बारे में निर्णय लेने के वास्ते मार्गनिर्देशों में राष्ट्रीय निकाय में राज्य एकता परिषदों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए समुचित प्राथमिकता प्रदान की जा सकती है।

ख– राज्य परिषदों के साथ उपयुक्त संयोजनों के साथ जिला स्तर एकता परिषदें (जिला शान्ति समितियां) स्थापित करने पर भी विचार किया जा सकता है, विशेष रूप से उन जिलों के लिए जहाँ हिंसक, विभाजक संघर्ष हुए हैं। इनमें प्रख्यात व्यक्तियों को शामिल किया जा सकता है जिन्हें समाज के सभी वर्गों का विश्वास प्राप्त हो। ये निकाय संघर्षपूर्ण स्थितियों में मध्यस्थ और सलाहकार की भूमिका निभा सकते हैं।

संलग्नक-I(1)

संघर्ष प्रबंधन पर राष्ट्रीय कार्यशाला

नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली
में
4–5 फरवरी 2006 को आयोजित
अध्यक्ष, प्र. सु. आ. द्वारा भाषण

"कानून का शासन लागू करना तथा सार्वजनिक व्यवस्था कायम रखना दोनों को अलग नहीं किया जा सकता तथा वे एक सभ्य समाज और मजबूत उदार प्रजातन्त्र के आधारस्तम्भ हैं "

एक प्रजातान्त्रिक राजतंत्र में, जो कानून के शासन पर आधारित है, शान्ति तथा व्यवस्था बनाए रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक व्यवस्था, शान्ति, सुरक्षा और समुदाय की स्थिरता की पर्यायवाची है। सार्वजनिक व्यवस्था का अनुरक्षण शासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है। भारतीय संविधान में, नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को एक अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए, सार्वजनिक व्यवस्था के हित में उचित प्रतिबंध लगाते हुए विधान की व्यवस्था करके, सार्वजनिक व्यवस्था के महत्व को स्वीकारा गया है। भारत के संविधान के तहत संघ तथा संघीय इकाइयाँ, अर्थात राज्यों के दायित्वों के क्षेत्र सु-परिभाषित हैं। "सार्वजनिक व्यवस्था" और "पुलिस" अनिवार्यतः राज्य सरकारों की जिम्मेदारी है। तथापि, केन्द्रीय सरकार उन्हें, जब भी जरूरी होता है, केन्द्रीय अर्ध-सैनिक बल (सी पी एम एफ) उपलब्ध कराकर सहायता प्रदान करती है ।

प्रशासनिक सुधार आयोग , "सार्वजनिक व्यवस्था " पर गौर कर रहा है जिससे कि सामाजिक सामन्जस्य और आर्थिक विकास के लिए प्रेरक सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने और संघर्ष समाधान के लिए क्षमता निर्माण के लिए भी प्रशासनिक तंत्र को मजबूत बनाने के लिए एक रूपरेखा सुझाई जा सके। प्र. सु. आ. इस विषय के सभी पहलुओं की जाँच कर रहा है, इसलिए सार्वजनिक अव्यवस्था के कारणों का अध्ययन करने, किस प्रकार अव्यवस्था के प्रारम्भिक लक्षणों का पता लगाया जाए और समय रहते उन्हें दूर किया जाए, सार्वजनिक व्यवस्था के अनुरक्षण में विभिन्न पणधारियों की क्या भूमिका होनी चाहिए, किस प्रकार से प्रवर्तन तंत्र को सार्वजनिक अव्यवस्था से निपटने के लिए और अधिक प्रभावी बनाया जाए, इन विषयों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहा है। आयोग, इसके संघटकों पर ध्यान केन्द्रित करके इस विषय की जॉच कर रहा है, अर्थात विवादों के कारण और उनका समाधान, दूसरे, नागरिक प्रशासन, मिडिया, सोसायटी, न्यायपालिका और एन जी ओ की सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में भूमिका और तीसरे पुलिस की

भूमिका तथा सुधारों की जरूरत । तदनुसार, इनमें से प्रत्येक पर तीन अलग-अलग कार्यशालाओं में विस्तारपूर्वक चर्चा की जा रही है। पहली कार्यशाला में, जिसे नीति अनुसंधान केन्द्र (सी पी आर) के साथ संयुक्त रूप से आयोजित किया जा रहा है, नागरिक प्रशासन व अन्य पणधारियों की भूमिका की चर्चा की जाएगी, दूसरी कार्यशाला में, जिसे सी पी आर और कन्नड विश्वविद्यालय, हाम्पी के साथ संयुक्त रूप से आयोजित किया जा रहा है, भारतीय समाज में विभिन्न किस्मों के विवादों पर चर्चा की जाएगी तथा तीसरी कार्यशाला में, जिसे राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के साथ संयुक्त रूप से आयोजित किया जा रहा है, पुलिस की भूमिका पर चर्चा की जाएगी।

सार्वजनिक व्यवस्था पर पहली कार्यशाला का उद्देश्य उन महत्वपूर्ण अनुभवों का पता लगाना है जो हम सार्वजनिक व्यवस्था से निपटने के अनेक अनुभवों से सीखते हैं। कार्यशाला से, प्र. सु. आ. को चार एजेन्सियों यथा नागरिक प्रशासन, न्यायिक उपायों, सिविल सोसायटी और मिडिया की भूमिका के जरिए सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए प्रस्तुत कुछेक चुनौतियों के जरिए विचार करने में मदद मिलेगी। इन एजेन्सियों को किस प्रकार सुदृढ़ किया जाए जिससे कि ये और अधिक मानवीय सार्वजनिक व्यवस्था को प्रोत्साहक बना सकें। वे कुछेक कठिनाइयाँ क्या हैं जो इन विभिन्न स्थितियों में कार्य करने वालों को पेश आती हैं ? इन एजेन्सियों की आमतौर पर किस प्रकार आलोचाना की जाती है ? क्या इन आलोचनाओं के संबंध में किसी प्रशासनिक अथवा विधिक प्रतिक्रिया की जरूरत है। कुछ अवसरों पर इन एजेन्सियों की सफलता और असफलता के क्या कारण हैं ? यद्यपि इस कार्यशाला में मुख्य रूप से उन सुधारों पर बल दिया जाएगा जिन्हें कार्यान्वित किया जा सकता है तथापि कार्यशाला में उन मुद्दों पर सबसे ज्यादा सम्भावित परिप्रेक्ष्य में चर्चा की जा सकती है जिससे कि नए तथा नूतन विचारों का सुझाव दिया जा सके। कार्यशाला का मुख्य कार्य इन क्षेत्रों में समस्याओं और चुनौतियों का विनिर्धारण करना तथा सम्भावित समाधानों की सिफारिश करना है।

दूसरी कार्यशाला का उद्देश्य, अर्थात निम्नलिखित के संबंध में "संघर्ष समाधान" है: (क) भारत में विवादों के कारणों के बारे में मुक्त रूप से चर्चा करना; (ख) इन विवादों के उदभव और जारी रहने में विभिन्न जातिगत कारकों की भूमिका और महत्व के बारे में किसी निष्कर्ष पर पहुंचना, जिससे कि (ग) सार्वजनिक व्यवस्था के संधारणीय अनुरक्षण हेतु गम्भीर कारणों का समाधान करने के लिए मूलभूत समाधानों का सुझाव दिया जा सके। प्रशासनिक सुधार से संबंधित विशिष्ट सिफारिशें करने पर बल दिया जाएगा।

इसी प्रकार, तीसरी कार्यशाला में, जिसे राष्ट्रीय पुलिस अकादमी के साथ संयुक्त रूप आयोजित किया जा रहा है, पुलिस की भूमिका और पुलिस सुधारों पर बल दिया जाएगा।

संलग्नक-I(1)जारी..

विभिन्न पणधारियों की भूमिका पर चर्चा करने से पहले मैं "सार्वनजिक व्यवस्था" शब्द का अर्थ स्पष्ट करना चाहूँगा। कानून का कोई भी उल्लंघन, कानून और व्यवस्था की समस्या है। किन्तु ऐसा प्रत्येक उल्लंघन सार्वजनिक व्यवस्था के भंग होने का मामला नहीं होता। "सार्वजनिक व्यवस्था" और कानून और व्यवस्था के बीच विभाजक रेखा बहुत बारीक है। शीर्ष न्यायालय ने सार्वजनिक व्यवस्था की अवधारणा की व्याख्या की है। यह समुदाय के जीवन की गति को भी अव्यवस्थित करने के किसी कार्य की सम्भाव्यता है जो इसे "सार्वजनिक व्यवस्था" के अनुरक्षण के लिए हानिकर" बनाती है। यदि प्रभाव की दृष्टि से उल्लघंन केवल उसमें सीधे ही शामिल केवल कुछेक लोगों तक सीमित रहता है, जनता के व्यापक क्षेत्र से भिन्न, तो इससे केवल "कानून और व्यवस्था" की समस्या उत्पन्न होगी।

सार्वनजिक व्यवस्था बनाए रखने का महत्व

आज भारत अर्थव्यवस्था और चहुंमुखी आर्थिक विकास की अपनी ऊँची दर के साथ एक विश्व आर्थिक शक्ति के रूप में उभरने के कगार पर है। आर्थिक विकास की अपनी वैध आकांक्षाओं की प्राप्ति हेतु यह अनिवार्य है कि शान्ति और व्यवस्था की समस्याओं का प्रबंधन देश में सुचारू रूप से किया जाए। असुरक्षा और अव्यवस्था के परिवेश में कोई विकास कार्यकलाप सम्भव नहीं है। धर्म, जाति, वंश, क्षेत्रीय अथवा किसी अन्य विवाद पर आधारित हिंसक संघर्ष से उत्पन्न विविध समस्याओं का प्रबंध करने में असफलता के कारण अस्थिर अथवा अव्यवस्थित स्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। ऐसी स्थितियां न केवल हमारे आर्थिक लक्ष्य को प्राप्त करने में हमारी उत्तरजीविता को ही खतरे में डाल सकती है। हमें सार्वजनिक व्यव्स्था प्रबंधन की समस्या और इस संबंध में कानून प्रवर्तन की भूमिका पर विचार करना है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी सार्वजनिक अव्यवस्था में कमजोर वर्ग ही अधिक पीड़ित होते हैं।

सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखना किसकी जिम्मेदारी है – नागरिक प्रशासन की भूमिका

निःसन्देह, सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए प्रमुख कानून प्रवर्तन एजेन्सी के रूप में, पुलिस की ही भूमिका है। सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में मजिस्ट्रेसी और न्यायपालिका की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। किन्तु सरकारी पद्धति के अन्दर अन्य एजेन्सियां हैं जिन्हें सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने में अपना योग देना होता है। पुलिस को, कानून के उल्लंघनों की मार और उत्पन्न हिंसा का भी सामना करना पड़ता है। किन्तु अधिकांश मामलों में, मूल कारणों का समाधान करना उनके क्षेत्राधिकार से परे है। दिल्ली में हाल ही में तोड़-फोड़ एक उदाहरण है, मुख्य कारण उन अधिकारियों द्वारा इमारतों संबंधी विनियमों का पालन न किया जाना था, "उल्हासनगर की तोड़-फोड़" है।

यदि कोई सार्वजनिक अव्यवस्था के कारणों की जाँच करे तो इसके बहुत से कारण हैं। मैं यहाँ इनके ब्योरों पर विचार नहीं करुंगा किन्तु मैं यह कहना चाहूँगा कि बड़ी संख्या में सार्वजनिक अव्यवस्थाओं का मूल कारण प्रशासनिक वजह होती है। इसलिए, हमें अपने सोच के तरीके में बदलाव लाना होगा। सार्वजनिक अव्यवस्था के संबंध में हमारी प्रतिक्रिया प्रारम्भिक स्तर से ही शुरू होनी चाहिए और यही वह स्तर है जबकि पूरे नागरिक प्रशासन की भूमिका, विनियामक और विकास एजेन्सियों सहित, महत्वपूर्ण है।

आजादी के बाद की अवधि में, शिक्षा के प्रसार में अपार वृद्धि हुई है और साथ ही लोगों के बीच जागरूकता में और साथ ही आकांक्षाओं में भी वृद्धि हुई है। और जब ये आकाक्षांए पूरी नहीं होती तो समाज के अन्दर तनाव उत्पन्न होता है, जिसका यदि समाधान नहीं किया गया तो सार्वजनिक अव्यवस्था की समस्या उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। अधिकाधिक, और ठीक ही, प्रशासन को शासक वर्ग के रूप में नहीं समझा जाता। लोग समझने लग गए हैं कि वे सेवा प्रदाता हैं। प्रशासन को इस भूमिका को भी समझना चाहिए। प्रशासन के गलत कार्यों को, जिन्हें विगत में चुपचाप स्वीकार कर लिया जाता था, अब सिविल समाज द्वारा बर्दाश्त नहीं किया जाता है। हमें एक ऐसे प्रशासन की व्यवस्था करनी है जो निष्पक्ष, उद्देश्यपरक और पारदर्शी हो। यह कैसे प्राप्त किया जाए यह हमारे लिए एक चुनौती है।

न्यायपालिका की भूमिका

न्याय की सुलभता "कानून के शासन" के लिए मूलभूत है। यदि नागरिक यह अनुभव करें कि गलत काम करने वालों को केवल कुछ मामलों में ही दण्ड दिया जाता है तो उनमें न्यायिक प्रक्रिया से अपने आपको अलग रखना और शिकायतों गवाह अथवा एक पंच के रूप में रुचि न लेने की प्रवृत्ति पैदा होती है।

कभी-कभी, जमींदार अडियल काश्तकार के बेदखल करने, काश्तकार किसी प्रपंची जमीदार से संरक्षण प्राप्त करने, सम्पत्ति विवादों में फंसे परिवार, यह सोचना शुरू कर देते हैं कि गुण्डा लोग उनकी समस्याओं को हल कर सकते हैं जबकि न्यायालय ऐसा करने में सदियों लेगें। यदि यह एक आम बात हो जाए तो अपराध प्रवृत्ति "कानून के शासन" का स्थान ले लेगी। हमें यह सुनिश्चित करना है कि हम ऐसी खतरनाक स्थिति तक न पहुंचे। अपराधकर्ताओं को, शेक्सपीयर के कथनानुसार "कानून के दृढ़ शासन" के जरिए डराया जाना चाहिए अन्यथा वे अपने आप में कानून बन सकते हैं। विभिन्न विधि आयोगों ने आपराधिक और सिविल न्याय प्रशासन पद्धति में सुधारों का सुझाव दिया है जिनपर कार्रवाई करने की जरूरत है।

संलग्नक-I(1)जारी..

मिडिया की भूमिका

एक मजबूत प्रजातन्त्र के लिए मुक्त प्रैस के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि यह एक प्रकार का चैक और संतुलन है जो एक ओर प्राधिकारियों को सावधान करता है तथा दूसरी ओर एक प्रकार का दर्पण है जिससे प्रशासन में बैठे लोगों को सतत रूप से वास्तविक चैक का पता चलता है । यह, वाणिज्यिकरण के बढ़ते दबावों के बावजूद, मिडिया के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका बनी हुई है। यह तथ्य कि प्रजातंत्र के रूप में भारत अकालों से बच सका, अमृतया सेन ने सुझाव दिया है कि यह पूर्ण रूप से मिडिया की भूमिका के कारण हुआ जिसने प्राधिकारियों को राहत प्रदान करने की तात्कालिकता के प्रति संवेदी बनाया। यह हमारी सर्वोत्तम चेतावनी प्रणाली है।

परन्तु अनिवार्य यह है कि मिडिया को एक जिम्मेदारीपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। देखा गया है कि कभी-कभी आंशिक रूप से मिडिया अपनी रिपोर्टिंग में काफी उद्देश्यपरक नहीं रहा है। कभी-कभी मिडिया भी द्वेष फैलाने की भूमिका निभाता है क्योंकि वह, कहने की जरूरत नहीं है, विवेकपूर्ण रचनात्मक समाचारों की बजाए उत्तेजनापूर्ण समाचारों में रूचि लेते हैं। हम इस बात पर विचार-विमर्श कर सकते हैं कि सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने में हम किस प्रकार मिडिया की क्षमता का उपयोग कर सकते हैं।

सोसायटी, एन जी ओ की भूमिका

यदि हर बात केवल राज्य पर अथवा सांविधिक निकायों पर भी छोड़ दी जाए तो प्रजातान्त्रिक सोसायटी उचित रूप से कार्य नहीं कर सकती। सोसायटियों की बढ़ती जटिलताओं के कारण सभी बातों की देखभाल सरकारी संस्थानों द्वारा नहीं की जा सकती। इस अन्तर को सिविल सोसायटी द्वारा पाटा जाना है। सरकारी उपाय भी व्यर्थ हो जाएंगे यदि उनका स्वैच्छिक कार्रवाई द्वारा समर्थन नहीं किया जाए। इसके अलावा, सिविल सोसायटी के जरिए राजनीतिक शक्ति के उपयोग से वास्तविक दृष्टि से प्रजातंत्र का मार्ग खुलता है। सिविल सोसायटी के अन्तर्गत खुले और सेक्युलर संस्थान सम्मिलित हैं जो नागरिकों और राज्य के बीच मध्यस्था करते हैं। सिविल सोसायटी के अभाव में राज्य तन्त्र और सिविल सेवक प्रभावशाली और शक्ति के एकमात्र संग्रह स्थल बन जाते हैं। सिविल सरकार के आधुनिक विचार के लिए सिविल सोसायटी के उदभव की जरूरत होती है जो लोगों को राज्य संस्थानों पर निर्भर करने की बजाए, आत्मनिर्भर बनाती है। सिविल सोसायटी की भागीदारी से नागरिक कल्याण के मात्र निष्क्रिय प्राप्तकर्ताओं की बजाए, सक्रिय एजेन्ट बन जाते हैं।

हमें, विशेष रूप से जो सरकार में हैं, यह समझने की जरूरत है कि एक मुक्त प्रजातान्त्रिक सोसायटी में उत्तम विकास माडल में सरकार केवल एक भागीदार होती है। सरकार, सोसायटी की सेवा में एक सेवा प्रदाता के रूप में होती है। वास्तव में, मात्र सरकार की जागरूकता से न तो सोसायटी की सभी समस्याएं हल हो सकती हैं और न ही सोसायटी की प्रमुख समस्याओं के समाधान में एकमात्र महत्वपूर्ण कार्यकर्ता हैं, इसी बात से सरकार से भी आगे देखने की जरूरत महसूस हुई। परस्पर निर्भरता और सोसायटी की समस्याओं का समाधान खोजने की जरूरत को देखते हुए सरकार और सिविल सोसायटी के बीच अधिक सहयोग की जरूरत है।

बड़ी संख्या में गैर-सरकारी संगठन (एन जी ओ) विकास क्षेत्रों में कार्यरत हैं। किन्तु सार्वजनिक व्यवस्था को बनाए रखने के प्रति समर्पित एन जी ओ की संख्या सीमित है। हम सम्भवतः इनमें से कुछ एन जी ओ के अनुभवों से सीख ले सकते हैं और उनकी अधिक भागीदारी के लिए मार्ग खोलने के लिए उपायों की सिफारिश करते हैं।

पुलिस की भूमिका

मुझे पुलिस की भूमिका का पहले उल्लेख करना चाहिए क्योंकि वह इस प्रक्रिया में मुख्यकर्ता है। किन्तु जैसा कि मैंने कहा कि हम इस विषय पर तीसरी कार्यशाला में विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे जिसका आयोजन हम राष्ट्रीय पुलिस अकादमी में कर रहे हैं। किन्तु मेरा सुझाव है कि पुलिस प्रशासन के उन पहलुओं पर जिनके संबंध में अन्य सरकारी एजेन्सियों और पणधारियों के साथ अन्योन्यक्रिया करने की जरूरत है, इस कार्यशाला में चर्चा की जा सकती है।

निष्कर्ष

विकास और सुरक्षा वस्तुतः परस्पर अन्तर- सम्बद्ध हैं। इसलिए, हमें, सभी मूलभूत मानवीय आजादी का सम्मान करने के लिए प्रतिबद्ध और साथ ही कानून के शासन एक प्रजातान्त्रिक राजतंत्र की रूपरेखा के अन्दर के प्रति भी प्रतिबद्ध विकास और सुरक्षा की दोनों चुनौतियों के साथ एक साथ ही निपटना है। भागीदारीपूर्ण प्रजातन्त्र की सफलता, राष्ट्रीय एकता और सामन्जस्य को सुदृढ़ बनाने और अपनी सुरक्षा और क्षेत्रीय अखण्डता के किसी बाहरी खतरे का सामना करने के लिए राष्ट्रीयता के संकल्प और क्षमता के मजबूत बनाने के लिए आन्तरिक संघर्ष प्रबंधन महत्वपूर्ण है। इस महत्वपूर्ण क्षेत्र में कमियों को न्यायिक और पुलिस सुधारों, शासन में बेहतर नागरिक भागीदारी, पारदर्शिता तथा सार्वजनिक व्यवस्था अनुरक्षण के प्रति और अधिक प्रभावी व एकीकृत दृष्टिकोण के जरिए, पाटने की जरूरत है।

संलग्नक-I(1)

सार्वजनिक व्यवस्था के उल्लघंनों के संबंध में, इसके समाजार्थिक राजनीतिक और प्रशासनिक कारणों को देखते हुए, सिविल प्रशासन के विभिन्न स्कन्धों की ओर से एक ठोस प्रतिक्रिया की जरूरत है। प्रारम्भिक स्तर पर ऐसा हो जाने पर छोटी-मोटी असहमतियों को बड़ी सार्वजनिक अव्यवस्था में बदले जाने से रोका जा सकता है। चुनौती एक पद्धति को संस्थागत बनाने की है जिससे कि सिविल प्रशासन के सभी स्कंध और साथ ही अन्य पणधारी भी एक समन्वित ढंग से कार्य करें। मुझे उम्मीद है कि ये दो कार्यशालाएं सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने के लिए एक रूपरेखा और मार्गदर्शी चित्र के संबंध में सारवान सिफारिशें करने में समर्थ होंगी।

संघर्ष प्रबंधन के संबंध में राष्ट्रीय कार्यशाला
नीति अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली में
4–5 फरवरी 2006 को आयोजित

पैनलकारों/प्रतिभागियों की सूची

क– पैनलकार

1. डा. डी बन्दोपाध्याय, आई ए एस (सेवानिवृत्त), पूर्व सचिव, भारत सरकार, कोलकाता।
2. डा. नन्दिनी सुन्दर, दिल्ली अर्थशास्त्र स्कूल, दिल्ली विश्वविद्यालय
3. प्रोफेसर राधा कुमार, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
4. प्रोफेसर आबुसालेह शरीफ, प्रधान अर्थशास्त्री, राष्ट्रीय अनुप्रयुक्त आर्थिक अनुसंधान परिषद (एन सी ए ई आर)
5. डा. रणबीर समद्दर, निदेशक, कलकत्ता अनुसंधान समूह, कोलकाता
6. डा. समीर कुमार दास, रीडर, राजनीतिक विज्ञान, कलकत्ता विश्वविद्यालय
7. प्रोफेसर सुरिन्दर एस. जोधका, सामाजिक पद्धति अध्ययन केन्द्र, ज. ने. वि.
8. डा. डी. श्याम बाबू, फैलो, राजीव गांधी समकालीन अध्ययन संस्थान
9. प्रोफेसर बी.ए. विवेका राय, कुलपति, कनन्ड विश्वविद्यालय, हाम्पी
10. प्रोफेसर टी.पी. विजय, इतिहास अध्ययन विभाग, कनन्ड विश्वविद्यालय, हाम्पी
11. प्रोफेसर एच.सी. बोरालिंगैय्या, जनजातीय अध्ययन विभाग, कनन्ड विश्वविद्यालय, हाम्पी
12. प्रोफेसर टी.आर. चन्द्रशेखर, विकास अध्ययन विभाग, कनन्ड विश्वविद्यालय, हाम्पी

ख– प्रतिभागी

13. डा. प्रताप भानु मेहता, प्रधान और मुख्य कार्यकारी, सी पी आर
14. श्री जस्टिस रजिन्द्रर सच्चर
15. ले. जन. वी.के. नैय्यर (सेवा निवृत्त) अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर

संलग्नक I (2)

16. श्री वेद मरवाह, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
17. डा. अजीत मजुमदार, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
18. श्री संजय हजारिका, अवै. भ्रमणकारी प्रोफेसर, सी पी आर
19. श्री रामास्वामी आर. अय्यर, अवै. अनुसंधान प्रोफेसर, सी पी आर
20. प्रोफेसर पार्थो मुखोपाध्याय, वरिष्ठ अनुसंधान फैलो, सी पी आर
21. डा. ए. के. सामन्त, आई पी एस (सेवानिवृत्त), कोलकाता
22. श्री के.एस. ढिल्लों, आई पी एस (सेवानिवृत्त), भोपाल
23. प्रोफेसर सुषमा यादव, डा. अम्बेडकर सामाजिक न्यायपीठ, आई आई पी ए
24. श्री सुरेश खोपाडे, पुलिस आयुक्त, रेलवे, मुम्बई
25. श्री चन्द्र भान प्रसाद, पत्रकार
26. सुश्री प्रिया पार्कर
27. श्री सिद्धार्थ मल्लावारापु, अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन स्कूल, ज. ने. वि.
28. श्री वाई.एस. राव, परामर्शदाता, प्र. सु. आ.
29. श्री आर. विश्वनाथन, परामर्शदाता, प्र. सु. आ.

ग– प्रशासनिक सुधार आयोग

30. श्री एम. वीरप्पा मोइली, अध्यक्ष, प्र. सु. आ.
31. श्री वी. रामचन्द्रन, सदस्य, प्र. सु. आ.
32. डा. ए. पी. मुखर्जी, सदस्य, प्र. सु. आ.
33. सुश्री विनीता राय, सदस्य-सचिव, प्र. सु. आ.

राष्ट्रीय कार्यशाला में की गई सिफारिशें का सारांश

I. जनजातियों की आबादी से संबंधित मुद्दे

1. भारतीय वन अधिनियम, वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम, वन संरक्षण अधिनियम आदि जैसे विधानों के अन्तर्गत जनजातीय आबादी की जरूरतों और संवेदनशीलताओं को ध्यान में नहीं रखा गया है और इनसे बड़े पैमाने पर नाराजगी और असंतोष हुआ है। राज्य के राजस्व में वृद्धि करने तथा राज्य सम्पत्ति के संरक्षण के उद्देश्य से तैयार किए गए इन विधानों के फलस्वरूप जनजातियों के लिए वनों से अपनी आजीविका कमाना अवैध बन गया है; एक ऐसा कार्यकलाप जिसमें ये एक सांकेतिक और सामन्जस्यपूर्ण ढंग से, पीढ़ियों से लगे थे। एक गुस्ताख और निष्ठुर अफसरशाही ने उनके लिए एकमात्र रूप से उपलब्ध संसाधनों से वंचित कर दिया जिसके फलस्वरूप गरीबी में वृद्धि हो गई और सीमान्तीकरण ने नक्सली गतिविधि में अधिक जनजातीय भागीदारी में एक बड़ी भूमिका निभाई है।

2. "पेसा" की दृष्टि से पाँचवीं और छठी अनुसूचियों द्वारा राज्यपाल में विहित शक्तियों की पुनः जाँच की जानी चाहिए। पंचायत (अनुसूचित क्षेत्रों तक विस्तार) अधिनियम के तहत अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम द्वारा संरक्षित क्षेत्रों पर राजय के राज्यपाल की शक्ति को, अनेक प्रकार से, पंचायतों को हस्तान्तरित कर दिया गया है और पंचायत व राज्यपाल के प्राधिकार के बीच नियंत्रण और प्राधिकार संबंधित कुछ संवेदनशील विषय रह गए हैं।

3. ग्राम सभा स्तरों पर न्याय पंचायतों की तरह, इस तर्क के आधार पर कि स्थानीय स्तर पर स्थानीय समस्याओं के अधिनिर्णयन से न्याय की अधिक व्यावहारिक व उपयोगी पद्धति कायम होगी, शिकायतों को दूर करने के लिए एक आधार स्तर पद्धति कायम की जानी चाहिए।

4. (क) केन्द्रीय अधिनियमों और स्थानीय भू-कानूनों के बीच, (ख) वन और राजस्व अभिलेखों के बीच, और (ग) न्यायालयों के न्यायनिर्णयों व अन्य कानूनों के बीच, "कानूनों का सामन्जस्यीकरण" कायम किया जाना चाहिए।

संलग्नक I(3)

II. विवादास्पद क्षेत्रों से संबंधित मुद्दे

1. शान्ति प्रक्रिया ' राजनीतिक प्रक्रिया' से अलग होनी चाहिए, जिसमें संवाद की उद्देश्यपरकता और व्यावसायीकरण पर बल दिया जाए।
2. विभिन्न कानून प्रवर्तन एजेन्सियों के बीच अधिक समन्वय कायम किया जाना चाहिए। कार्यावधि की लम्बी अवधि को देखते हुए ऐसी पद्धतियाँ कायम किए जाने की जरूरत है।
3. सशस्त्र बलों की उपस्थिति को सिविल प्रशासन और राज्य-भिन्न एजेन्सियों की सक्रिय भूमिका द्वारा पूरक बनाया जाना चाहिए।
4. शान्ति प्रक्रिया समावेशी होनी चाहिए जिसमें सभी स्तरों पर प्रतिभागियों को शामिल किया जाए। शान्ति प्रक्रिया में केन्द्रीय भागीदारी की इच्छा के अनुरूप स्थानीय सहायता प्रदान की जानी चाहिए।

III. पूर्वोत्तर से संबंधित मुद्दे

1. मात्र क्षेत्र के आधार पर समाधानों से पूर्वोत्तर में हल निकलने की सम्भावना नहीं है। प्रतिनिधित्व की पद्धतियाँ क्षेत्रीयता के साथ निर्धारण से दूर किए जाने की जरूरत है; जिससे विभिन्न प्रतिस्पर्धी हितों को ध्यान मे रखना सहज हो सके।
2. बंगलादेश से उत्प्रवास को प्रबंधित करने के लिए रचनात्मक ढंग से सोचने का समय है। मुद्दे से संबंध में एक पद्धतिबद्ध, सतत और सुविज्ञ दृषटिकोण अपनाया जाना चाहिए।
3. सशस्त्र सेना (विशेष शक्तियां) अधिनियम को रद्द किया जाना चाहिए।

IV. धर्म से सबंधित मुददे

1. अल्पसंख्यकों के लिए शिक्षा के अवसरों में वृद्धि की जानी चाहिए तथा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अल्पसंख्यकों के लिए सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने में वृद्धि हो।

V. जाति से संबधित मुद्दे

1. अभी की स्थिति के अनुसार दो अधिनियमों को नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 और अनु. जाति तथा अनु. जनजाति (अत्याचारों की रोकथाम) अधिनियम 1989 - अत्याचार

वाले मामलों में लागू किया जाता है। एक समस्या से निपटने के लिए दो अधिनियमों की जरूरत नहीं है तथा कठोर दण्डात्मक उपाय अपनाकर मानव और नागरिक अधिकारों के उल्लघंनों का समाधान करने के लिए एकसमान विधान तैयार करना उपयोगी होगा।

2. अनु. जातियों और अनु. जनजातियों के लिए दो राष्ट्रीय आयोगों की पुनर्संरचना की जानी चाहिए ताकि इन्हें अधिक कारगर बनाया जा सके।

VI. विवाद निपटान में आवर्ती विषय

1. प्रशासन को लोगों तक पहुंचने के लिए "गौणता" के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए।
2. कानूनों में तालमेल बिठाने तथा यह सुनिश्चित करने के लिए कि ये स्पष्ट और पारदर्शी हैं एक तात्कालिक जरूरत है जिससे कि कानून के शासन में सामान्य विश्वास बहाल हो सके।
3. सरकार में जवाबदेही में वृद्धि की जानी चाहिए।